वर्ष : त्रयोदश अंक : प्रथम जुलाई 1995

भारतीय आधुनिक शिक्षा



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

भारतीय आधुनिक f ... । शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको, शैक्षिक प्रशासको तथा शोधकर्त्ताओ को एक मच प्रदान करना; शिक्षा के विभिन्न आयामो, जैसे–शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याये, पाठ्यक्रम एवं प्राविधि सम्बन्धी नवीन विकास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों मे शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार और विकास को बढावा देना।

इस पत्रिका की विषय-सामग्री मे विख्यात शिक्षाशास्त्रियो द्वारा लिखे गये लेख, चुनौतीपूर्ण वाद-विवाद, शैक्षिक समस्याओ की आलोचनात्मक विवेचना, शिक्षाशास्त्रियो से भेटवार्ता, नवाचार, पाठको के पत्र तथा पुस्तक-समीक्षा आदि शामिल है।

लेखको से निवेदन है कि रचनाए डबल स्पेस मे टाईप की हुई हो तथा रचनाओ की दो हस्ताक्षरित प्रतिया भेजे। साथ ही यह अवश्य सूचित करे कि प्रेषित रचना अप्रकाशित/अप्रसारित है।

पुस्तक-समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतिया भेजना आवश्यक है। लेखको के द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं तथा ये किसी भी प्रकार परिषद् की नीतियो को प्रस्तुत नहीं करते। पत्रिका मे प्रकाशित पाडुलिपि का कापीराइट परिषद् के अधीन रहेगा और परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना कोई भी अश पुन प्रकाशित नहीं किया जा सकेगा।

रचनाए कृपया इस पते पर भेजे–अकादमिक सपादक, **भारतीय आधुनिक शिक्षा**, शैक्षिक अनुसधान और नवाचार समिति (एरिक), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016

मूल्य एक प्रति 8.50 रुपये; वार्षिक · 34.00 रुपये

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष : त्रयोदश | अंक · प्रथम | जुलाई 1995

विषय सूची

पाठकों के पत्र

भारतीय आधुनिक शिक्षा में छपे लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाएं आमंत्रित हैं। यथास्थान इन्हें प्रकाशित करने का प्रयास किया जाएगा।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित शिक्षा–जगत् का वस्तुस्थितिपरक विश्लेषण

नीरा नारंग
हिन्दी शिक्षिका
मॉडर्न स्कूल, बाराखम्भा रोड
नई दिल्ली

साहित्य, समाज और शिक्षा तीनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। साहित्य समाज का दर्पण है और शिक्षा एक सामाजिक संस्था है। साहित्यकार द्वारा अनुभूत शैक्षिक यथार्थ की सामाजिक यथार्थ से निकटता के अध्ययन के लिए लेखिका ने शिक्षा-जगत पर आधारित कुछ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियों में चित्रित शिक्षा-संस्थानों के स्वरूप, शिक्षण-सुविधाओं और शिक्षा-पद्धति का वस्तुपरक विश्लेषण करने का प्रयास किया है। इस विश्लेषण-विवेचन से जो तस्वीर उभरकर आई है उसके अनुसार अधिकांश शिक्षण-सस्थाएँ व्यापारिक बनकर रह गई हैं। इन संस्थानों में स्वार्थ साधन और क्षुद्र राजनीति प्रमुख हो गई है और शिक्षा गौण। इनमें शिक्षा की बुनियादी सुविधाओं का अभाव है और शिक्षा-पद्धति ऐसी है जो नवयुवकों में मानवीय गुणों का विकास करना तो दूर, उन्हें न तो भावी जीवन में जीविकोपार्जन के लिए तैयार कर पाती है और न ही देश के लिए उपयोगी नागरिकों का निर्माण कर पाती है।

शिक्षा एक सामाजिक सस्था है। दुर्खीम के अनुसार 'शिक्षा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति का एक सामाजिक साधन है– ऐसा साधन जिससे समाज अपने ही अस्तित्व को सुनिश्चित करता है।' शिक्षा के माध्यम से समाज अपनी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को साकार करने का प्रयत्न करता है।

साहित्य भी एक सामाजिक संस्था है। साहित्य की आधारभूमि समाज है। वह समाज से रूप ग्रहण करता है, सामाजिक जीवन का समग्र चित्र उकेरता है, समाज के विभिन्न पक्षों का प्रतिबिम्बन और अंकन करता है। इसी कारण साहित्य में सामाजिक जीवन की प्राथमिक इकाइयो, सामाजिक सबधों, व्यक्तित्व-समूह, समुदायों, विभिन्न संगठनों का चित्रण रहता है। वस्तुत सामाजिक यथार्थ का चित्र साहित्य में रूपायित होकर और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

साहित्य के समान शिक्षा के भी सामाजिक सस्था होने के कारण शैक्षिक यथार्थ को सामाजिक यथार्थ से पृथक नहीं किया जा सकता। समाज, साहित्य और शिक्षा की इस अभिन्नता के कारण किसी साहित्यकार के लिए न तो यह सभव है कि वह समकालीन सामाजिक परिस्थितियों की उपेक्षा करके, उनसे विमुख होकर साहित्य-सृजन कर सके और न ही यह संभव है कि वह अपने समय की शैक्षिक समस्याओं को नकार सके या उन पर कलम उठाए बिना रह सके। जीवन अपनी समग्रता में साहित्य का विषय होता है। साहित्यकार जब प्रत्येक समस्या को साहित्य में उभारता है तो शिक्षा जैसी मूलभूत समस्या उसके सस्पर्श से कैसे अछूती रह सकती है।

इस सन्दर्भ में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य पर विहगम दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं का वर्ण्य विषय शिक्षा को बनाया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरात शिक्षा के सबध में हमारी आवश्यकताएँ बदलीं और उन बदली आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के लक्ष्य निर्धारित किए गए। राष्ट्रीय विकास में उसके महत्त्व को स्वीकारते हुए उसके प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक प्रयास किए गए हैं। शिक्षा की गुणात्मकता बढाने के लिए अनेक चर्चाएँ आयोजित की गई और इस दृष्टि से शिक्षा में विविध घटकों के योगदान पर बल दिया गया।

आइये देखें, शिक्षा-जगत् का यह यथार्थ साहित्यकार के अनुभूत यथार्थ से कितना मेल खाता है। इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ उपन्यासों और कहानियों का वस्तुस्थितिपरक विश्लेषण - विवेचन उपयोगी होगा। इस वस्तुस्थितिपरक विश्लेषण के अन्तर्गत हम शिक्षा-जगत के निम्नलिखित घटकों पर दृष्टिपात कर रहे हैं–

(क) शिक्षा-सस्थानों का स्वरूप ;

(ख) शिक्षण- सुविधाएँ,

(ग) शिक्षण- पद्धति।

इस विचार से चुने गए उपन्यासों और कहानियो के अनुशीलन से हम पाते है कि स्वतत्रता प्राप्ति के उपरात शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ विद्यालयों-महाविद्यालयो की स्थापना तो हुई, उनके लिए महान लक्ष्य भी निर्धारित किए गए पर वे केवल कागज़ो तक ही सीमित रह गए। शिक्षा द्वारा जिन महान आदर्शों की पूर्ति का स्वप्न देखा गया था, वह केवल स्वप्न मात्र ही रह गया।

'हडताल हरिकथा' उपन्यास के लेखक द्वारा उठाया गया यह प्रश्न कि शिक्षा-सस्थानो पर आस्थावान नागरिक बनाने का पूरा दायित्व है लेकिन क्या अपना कर्त्तव्य निभा पा रही है ये ? वर्तमान शिक्षा-सस्थाओ के स्वरूप पर लगाया गया एक बडा प्रश्नचिह्न है जिससे शिक्षण-सस्थानो की विद्रूपता उजागर होती है।

'रागदरबारी' के लेखक को कॉलेज की स्थापना के विषय में की गई यह व्यग्योक्ति भी इसी स्थिति का समर्थन करती प्रतीत होती है– "छगामल इण्टर कॉलेज की स्थापना देश के सब नागरिकों को महान आदर्शों की ओर प्रेरित करने एव उत्तम शिक्षा देकर राष्ट्र का उत्थान करने हेतु हुई थी। कॉलेज का चमकीले नारगी कागज पर छपा हुआ सविधान एव नियमावली पढ़कर यथार्थ की गंदगी में लिपटा हुआ मन कुछ वैसा ही निर्मल और पवित्र हो जाता था जैसे भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का अध्याय पढकर।"

लेखक यह स्थिति केवल छगामल इण्टर कॉलेज मे ही नहीं पाता। उसकी दृष्टि मे विश्वविद्यालय की स्थिति तो इससे भी बदतर है, तभी वह प्रिंसिपल के मुख से कहलवाता है– "सच पूछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरर न होने का कोई गम नहीं है। वहाँ तो और भी नरक है पूरा कुम्भीपाक है।"

'सॉड' उपन्यास के अध्यापक हरिशंकर शर्मा का साहू बाल जूनियर विद्यालय के विषय में यह कहना कि "कभी लगता कि स्कूल मत्री सत्यप्रकाश अग्रवाल की एक दूसरी दुकान है आय देने वाली, कभी लगता कि वह मंत्री की काम-पिपासा पूर्ति का एक अड्डा है, कभी लगता कि वह एक ऐसी जगह है जहॉ कुछ पाने की नीयत से भिखमगे और अपाहिज नियम से इकट्ठे हो जाते हैं, कभी लगता कि वह मानसिक रोगों का अस्पताल है . लेकिन वह विद्या का मन्दिर है या देश की भावी पीढी को सुशिक्षित-सुसस्कृत बनाने की पुण्यस्थली या गुरुकुल ऋषि आश्रम का एक बदला हुआ रूप है, ऐसी प्रतीति उसे नहीं होती थी।"

'तलाश' कहानी के लेखक की भी यही राय है कि "अधिकाश शिक्षण-संस्थाएँ व्यापारिक संस्थाएँ बन गई है। जगह-जगह पर सेठो व जातियो के नाम पर स्कूल खुल रहे है जिनमे दी जाने वाली सुविधाओ और महगी फीसो के नाम पर गला काट प्रतियोगिताएँ होने लगी है। इन विद्यालयों में पढाई कम, दिखावा अधिक होता है। सेठ-साहूकार वर्ग व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थो के लिए शिक्षा का क्रय-विक्रय करते हैं।"

'ज़हर चॉद का' उपन्यास का लेखक स्वीकारता है– "शिक्षा के इन केन्द्रो मे स्वार्थसाधन और क्षुद्र राजनीति प्रमुख हो गई, शिक्षा गौण। फलस्वरूप इन विद्यालयो, विश्वविद्यालयों से ऐसे छात्र निकलने लगे जो डिग्रीहोल्डर तो होते थे परन्तु शिक्षित अथवा विद्या के धनी नहीं होते थे, जो इस देश के पुराने मूल्यो से अपरिचित होते थे।"

रामदरश मिश्र की कहानी 'मिसफिट' भी ऐसे ही विद्यालय का अकन करती है जो अपने तथाकथित मूल उद्देश्य से भटक गया है। जब विद्यालय खोला गया तो आदर्श शिक्षा प्रदान करने का प्रचार किया गया लेकिन धीरे-धीरे वह विद्यालय 'धनप्राप्ति का आदर्श स्थान' बनकर रह गया। इस दृष्टि से लेखक का यह कथन द्रष्टव्य है– "यह एक प्राइवेट नर्सरी स्कूल था– आइडियल एजुकेशन स्कूल, जो तीन-चार वर्ष पूर्व शुरू हुआ था और देखते-देखते इसने अच्छी-खासी बिल्डिग खडी कर ली थी। प्रिंसिपल नेता हो गया था। देखते-देखते शिक्षा के नाम पर पास की ही एक जमीन भी हडप ली और धीरे-धीरे अन्य जमे-जमाये स्कूलो की तरह अब यह भी पढाई की गहराई से निकलकर फैशन की सतह पर शोर करता हुआ बहने लगा।" इससे स्पष्ट है कि विद्यालय ज्ञान का प्रकाश फैलाने के उद्देश्य से नहीं अपितु प्रबंधकों के घर भरने व शिक्षा के नाम पर व्यापार करने के लिए खोले गए थे जिनमें राजनीति के सिक्के चलते थे।

इसी व्यापारिक-राजनीतिक उद्देश्य को लेकर विद्यालयों-महाविद्यालयों के खोले जाने की पुष्टि 'रागदरबारी'

का लेखक भी करता है। लेखक स्थानीय कॉलेजों का वर्णन करते हुए कहता है– "ये कॉलेज प्राय किसी स्थानीय जननायक की प्रेरणा से शिक्षा-प्रचार के लिए और वास्तव मे उसके लिए विधान सभा या लोकसभा के चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते थे और उनका मुख्य कार्य कुछ मास्टरो और सरकारी अनुदानों का शोषण करना था।"

इससे स्पष्ट है कि कॉलेजों का उद्देश्य छात्रों को शिक्षित करना, अपने अधिकारों और कर्त्तव्यो के प्रति उन्हे सजग करना तथा जागरूक सदस्यों के नाते देश की उन्नति मे उन्हे सहयोग के लिए तैयार करना नहीं था अपितु छात्रो मे यह भ्रम बनाए रखकर कि उन्हे शिक्षित किया जा रहा है, उनका शोषण करना था। 'रागदरबारी' के लेखक के अनुसार-- "ये कॉलेज सिर्फ जमाने के फैशन के हिसाब से बिना आगा-पीछा सोचे हुए चलाए जा रहे थे और निश्चित था कि वहाँ पढने वाले लडके अपनी रियाया वाली हैसियत भूलकर कभी ऊपर जाने की कोशिश नहीं करेगे और ऊँची नौकरियॉ और व्यवसाय जिनके हाथ मे है, उनके एकाधिकार को इन कॉलेजो की ओर से कोई खलरा पैदा नहीं होगा।"

'छोटे-छोटे सवाल' उपन्यास की शिक्षा सस्था का भी कुछ ऐसा ही व्यक्तित्व उभरकर आता है जिसके कारण अध्यापक जयप्रकाश कह उठता है– "मैं तो मरते समय अपनी औलाद के नाम वसीयत कर जाऊँगा कि मेरी कोई भी सन्तान इस मास्टरी के धधे मे न पडे और मास्टरी भी करे तो प्राइवेट स्कूल-कॉलेज में न करे और प्राइवेट कॉलेज मे भी करे तो राजपुर के इस हिन्दू कॉलेज मे न आए"। अध्यापक जयप्रकाश इस तथ्य को भी स्वीकारता है कि यह दशा केवल राजपुर के इण्टर कॉलेज की ही नहीं सभी शिक्षण-संस्थानों की है– "....जहॉ तक वातावरण का प्रश्न है, मैं आपको बता दूॅ कि सब जगह और सब स्कूलो मे कमोबेश यही वातावरण आपको मिलेगा।"

ऐसी ही स्थितियो के कारण 'अपुरुष' उपन्यास के नायक अध्यापक को अपना विद्यालय 'अनाथालय' प्रतीत होता है। 'विद्याव्रत मर गया' कहानी के अध्यापक विद्याव्रत को विद्यालय 'काले नाग पैदा करने का कारखाना' या 'काजल की कोठरी' जिसमे देश के भविष्य को बद किया जा रहा है, 'मिसफिट' कहानी के पात्र अभिभावक अमित को 'अभिभावकों व छात्रो का खून चूसने वाली जोक', 'रागदरबारी' के छात्र रुप्पन को 'लुच्चो व शोहदों का अड्डा', तो 'दुकानबद' कहानी की अध्यापिकाओ को 'दुकाने'। 'हस अकेला' कहानी का नायक सभी विद्यालयों की स्थिति एक-सी अनुभव करता है 'चाहे वे शहर के हों या गॉव के, प्राथमिक विद्यालय हो या माध्यमिक'।

शिक्षा की इन 'दुकानो' में विद्यार्थियो की सख्या तो बहुत है परन्तु उनके अनुपात मे शिक्षण-सुविधाएँ कितनी हैं इसका पता 'जहर चाँद का' उपन्यास के विद्यामंदिर इण्टर कॉलेज के इस वर्णन से लग जाता है– "भवन बारह कमरों का था। फलस्वरूप, तिहाई से ज्यादा लड़को के बैठने की व्यवस्था 'शांतिनिकेतन' स्टाइल पर होती थी। वर्षा या तेज़ धूप में यह विचार करके कि जान है तो जहान है– छात्रो को मुक्त कर दिया जाता था क्योकि सब लडको के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान कॉलेज मे था ही नहीं। नौ-दस मील तक कोई अन्य हाई स्कूल न होने के कारण इस एकमात्र कॉलेज मे छात्र-छात्राओं की सख्या बढती जाती थी। परन्तु उस गति से विद्यालय का विकास न हो पाता था– अर्थात् न तो उतने कमरे बन पाते थे, न छात्रों के लिए उतनी कुर्सियॉ और डेस्कें ही तैयार हो पाती थीं।"

'विद्याव्रत मर गया' कहानी के विद्यालय की "बिल्डिग के पॉच कमरे धराशायी हो चुके है। अन्यो में भी दरार आ गई है। केवल तीन कमरो को छोडकर सारे भवन को खतरनाक घोषित कर दिया गया है। शेष तीन कमरो को मुख्याध्यापक, स्टोर, लैब और पुस्तकालय के नाम पर कर दिया है। छात्र वृक्षो के नीचे बैठकर पढ़ते है और उनके चारो ओर कमरों की टूटी दीवारे उनका मुँह चिढाती है।"

'छोटे-छोटे सवाल' उपन्यास में चित्रित शिक्षा-संस्थान में भी बुनियादी आवश्यकताओ की पूर्ति नहीं हो पाती। लेक्चररशिप के लिए आया उम्मीदवार कॉलेज की दशा को देखकर कह उठता है– "कॉलेज तो फटीचर ही लगता है, न बिजली है न पखे। डेस्क भी बाबा आदम के ज़माने के हैं।"

'रागदरबारी' का लेखक शिवपालगज के इण्टर कॉलेज की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है– "यहॉ से

इण्टरमीडियेट पास करने वाले लडके सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते थे कि हम शातिनिकेतन से भी आगे है। हम असली भारतीय विद्यार्थी है। हम नहीं जानते कि बिजली क्या है, नल का पानी क्या है ? पक्का फ़र्श किसे कहते हैं ? सैनिटरी फ़िटिंग किस चिडिया का नाम है ? हमने विलायती तालीम तक देसी परम्परा मे पाई है और इसीलिए हमें देखो, हम उतने ही प्राकृत है।"

इससे स्पष्ट होता है कि विद्यालयो मे पानी, बिजली, शौचालय जैसी सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं हैं। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षा-सस्थान उजाड़ खण्डहरों से होड़ लगाते दिखाई देते हैं। 'रागदरबारी' उपन्यास के छंगामल विद्यालय के "एक-एक टुकडे का अलग-अलग इतिहास था। सामुदायिक मिलन केन्द्र, गॉव-सभा के नाम पर लिए गए पैसे से बनवाया गया था पर उसमे प्रिसिपल का दफ़्तर था और कक्षा ग्यारह और बारह की पढाई होती थी। अस्तबल जैसी इमारते श्रमदान से बनी थीं। टिनशेड किसी फौजी छावनी के भग्नावशेषो को रातों-रात हटाकर खडा किया गया था। जुता हुआ ऊसर कृषि-विज्ञान की पढ़ाई के काम आता था।"

कमोबेश यही स्थिति 'जल टूटता हुआ' उपन्यास के प्राइमरी स्कूल की भी थी "स्कूल क्या था एक पुराना मकान था, दूर के एक कस्बे के चौधरी का मकान, जिसे ज़िला बोर्ड ने किराए पर ले लिया था। बरामदे में गॉव के नागरिक और लड़के इकट्ठा थे।"

इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि किसी-किसी विद्यालय के लिए तो उचित भवन भी नहीं है और जहॉ कहीं इमारत है भी, तो उसकी देखभाल की समुचित व्यवस्था नहीं है। 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास के "करैता गॉव के स्कूल की इमारत है, जिस पर बनने के बाद से कभी सफ़ेदी नहीं हुई थी। स्कूल के बाहर घास से ढका सुन्दर मैदान भी है, पर वह गाँव वालों के कुल्ला फराकत के ही काम आता है।" इसी सदर्भ में 'आलू की ऑख' कहानी में चित्रित विद्यालय का "भवन नया-नया था। गॉवो में शिक्षा-प्रसार के पावन उद्देश्यो का ताजा प्रमाण। भवन को भिगोकर एक बरसात गुज़र चुकी थी। बाहर दीवारों पर पानी की चोटें निखरी हुई थीं। जो काई दीवारों पर उग आई थी, वह अब कलियाने लगी थी।" यही नहीं लेखक का यह कथन– "स्कूल कहने को तो नया था पर प्रयोगशाला की हालत खस्ता थी। गिनती की चार डिसेक्शन ट्रे थीं। न क्लोरोफ़ार्म था, न मेंढक थे। किसी लडके ने आज तक मेंढक नहीं काटा था।" यह दर्शाता है कि शिक्षण-संस्थान में अध्यापकों और छात्रो को आवश्यक शिक्षण-सुविधाओ के अभाव में जूझना पडता है। अध्यापक द्वारा बागवानी के उपकरण माँगने पर प्रधानाचार्य का आश्चर्य भरा यह कथन, "मास्साब, फावड़े, गेंती कहॉ रखे हैं स्कूल में !" स्थिति को उजागर करता है कि विद्यालय में बागवानी का विषय तो है पर बागवानी से सम्बन्धित साधन विद्यालय में नहीं थे।

इसी प्रकार 'ज़हर चॉद का' के "विद्यालय का पुस्तकालय, पुस्तकालय की पैरोडी था। इसमें बहुत थोडी सी बाज़ार से खरीदी हुई पुस्तकें थीं। ज्यादातर, विद्यालय के भूतपूर्व छात्रों की पाठ्यपुस्तकें अथवा वर्तमान छात्रों की भूतपूर्व पाठ्यपुस्तकें थीं। कुछ पुस्तकें वे भी थीं जो स्पेसिमेन के रूप में प्रकाशकों अथवा पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त हुई थीं।" सुविधाओं के नाम पर पैसो की व्यवस्था तो छात्रों से राशि लेकर कर ली जाती थी पर सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती थीं– "रीडिंगरूम (वाचनालय), ऑडोविजुअल (श्रव्य-दृश्य) की फीस के हज़ारों रुपये प्रतिवर्ष छात्रों से वसूल किए जाते थे। न कभी विद्यालय मे समाचारपत्र आते, न कभी पत्रिकाएँ आतीं, न श्रव्य-दृश्य के फण्ड से कोई सामान कभी विद्यालय मे खरीदा जाता।"

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास के करैता गॉव के विद्यालय में खेल के सामान तथा मैदान का अभाव है पर अध्यापक शशिकान्त ये कठिनाइयॉ सभी विद्यालयो मे पाता है।

'छोटे-छोटे सवाल' उपन्यास के अध्यापक सत्यव्रत का कॉलेज के पास के मैदानों को देखकर आह भरकर कह उठना– "काश ! ये खेल के मैदान होते" इस तथ्य को उजागर करता है कि एक ओर तो विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास के लिए पाठ्यचर्या सहगामी क्रियाओ को तथा खेलकूद को आवश्यक माना जाता है पर दूसरी ओर उनके लिए स्थान और सुविधाओं के प्रबध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। छात्रों के ज्ञान के विस्तार के लिए अधिकाधिक पुस्तकों की आवश्यकता का अनुभव तो किया जाता है पर यह सुविधा

उपलब्ध नहीं कराई जाती। मात्र, पाठ्यपुस्तकों का बोझ छात्रों पर डालकर शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति समझ ली जाती है। 'हाथी के दॉत' कहानी के प्रिंसिपल सत्यदेव का छोटे-छोटे बच्चों पर इतनी अधिक पुस्तकों का बोझ लदा देखकर अपने बचपन की याद करने लगना और अपने समय और वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की तुलना करते हुए यह कह उठना कि "अपने समय की शिक्षा-पद्धति और पाठ्यक्रम में केवल हिन्दी और गणित विषयों की पुस्तकें थीं। आजकल की तरह छोटे-छोटे बच्चों की पीठ पर भरे हुए पिट्ठू थैलों को फुलाने वाली पुस्तकों की भरमार नहीं" से भी यही सिद्ध होता है।

इस सन्दर्भ मे ज्ञान की आगार इन पुस्तकों पर 'रागदरबारी' के एक अध्यापक की टिप्पणी द्रष्टव्य है– "हममें और कुजडों में अब फर्क ही क्या है ? ये सारी टेक्स्टबुकें समझ लीजिए सडे-गले फल ही तो हैं। लौंडों के पेट में इन्हीं को भरते रहते हैं। कोई हजम करता है, कोई कै करता है।"

'हंस अकेला' कहानी का अध्यापक हरीश शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है इसलिए वह छात्रों को बोलने का अवसर प्रदान करने का इच्छुक है– "यदि वह इन किशोरों को बोलने नहीं देगा तो कैसे जानेगा उनकी समस्याएँ, इनकी मानसिक कमियॉ और इनकी अनेक मृत होती जिज्ञासाएँ"। परन्तु छात्रों की पीठ पर लदी पुस्तकों का बोझ इसका अवकाश प्रदान नहीं करता।

'अपना मोर्चा' उपन्यास के छात्र वर्ग का अध्यापक वर्ग से यह कहना– "आप यकीन करें, अगर हमारा बस चले तो हम हर महीने की पहली तारीख को आपके मुँह में हज़ार रुपये की गड्डी ठूस दिया करें और निवेदन करें कि यदि आपको इसी में मजा मिलता हो तो यह लें, मगर मेहरबानी करके वह मत पढ़ाइए जो हम पढ़ना नहीं चाहते" ऐसी शिक्षा के प्रति विद्रोहभावना को दर्शाता है। इसी बात की पुष्टि 'लडके' कहानी के छात्र वर्ग के इस कथन से स्वत: हो जाती है। उनके अनुसार इस शिक्षा का "इससे कोई ताल्लुक नहीं कि अर्जुनसिह का बाप नौ अगस्त को रिटायर हो रहा है.., कि सुनील वर्मा की दो बहनें लगातार जवान हो रही हैं... कि गेहूँ दिनों-दिन महँगा हो रहा है, बाजार से कभी कोयला गायब हो जाता है, कभी मिट्टी का तेल।" स्पष्ट है कि छात्रवर्ग को शिक्षा की निरर्थकता में कोई सन्देह नहीं। वह इस शिक्षा को जड, बेहूदा और बेमतलब मानता है।

शिक्षा के निरर्थक और रोज़गारपरक न होने का बोध 'पचपनसाला' कहानी के रामलगनलाल और मास्टरजी के वार्तालाप से हो जाता है–

"एम.ए., बी ए. का तो जैसे कुछ मूल्य ही नहीं रह गया है।"

"आजकल के लडके पढ़ने में जितना खर्च करते हैं उससे आधे की भी नौकरी नही पाते। बहुत हुआ तो बी.डी.ओ. का क्लर्क हो गया या किसी हाई स्कूल में सत्तर-अस्सी पर जिन्दगी घिसता है।"

'जहर चॉद का' उपन्यास के लेखक के इस कथन से कि "ऐसी शिक्षा किस काम की, जिसे पाकर आदमी कुछ पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर ले, सफ़ेदपोशी का कायल हो जाए, पर हाथ-पैर से काम करने के काबिल न रहे" से भविष्य को अन्धकारपूर्ण बनाने वाली शिक्षा के प्रति आक्रोश की ही अभिव्यक्ति होती है।

'युद्धरत' कहानी का नायक स्वय से प्रश्न करता है– "क्या दे पाया है वह अपने बेटे को शिक्षा के नाम पर ? साक्षर होता यह सारा हुजूम उस हुजूम से किन अर्थों में बेहतर है जो अंगूठा छाप थे। बी.ए , बी.एड. वह, एक आजीविका के लिए सिर पटकता रहा और नौकरी के नाम पर जो मिला, वह कितना सार्थक है ?" यह सब देखकर वह सारी शिक्षा को ही अर्थहीन समझता है और इतिहास की कक्षा में "आजादी के बाद का भारत" पढाते हुए उसी भारत की स्थिति को देखते हुए भी उससे ऑखें मूँद लेना चाहता है– "आज आजादी के बाद का भारत पढ़ाना है। वह बोलना शुरू करता है तो शब्द उसके गले में फसने लगते हैं। उसकी ऑखों के सामने बैठे लडकों के चेहरे धुधलाने लगते हैं। वह जेब में रखे नोटों को एक बार टटोलता है; फिर एकदम से चीख उठता है, क्या करोगे इतिहास पढकर ? जाओ, भाग जाओ।"

'रागदरबारी' उपन्यास के वकील का पिता कहता है– "एम.ए., बी.ए में कुछ नहीं रखा है। पहले हमारे यहाँ एक कविता कही जाती थी कि, क्या है, देखो याद नहीं आ रही है, हॉ, आखिर में है कि 'पास हैं मिडिल मुलु घास छीलि आवै ना' अब उसी को बदलकर कहा जा सकता है कि 'बी. ए.

भए पास मुलु घास छीलि आवै ना' आजकल एम.ए , बी ए. टका सेर बिकते है।"

तभी तो 'काले-काले दिन' कहानी का नायक कहता है– "क्या लाभ है इन डिग्रियों का, इन कागज के टकड़ों का ? और फिर थैले मे से अपनी अधूरी थीसिस निकाल कर उसके टुकड़े-टुकडे कर देता है।"

'रागदरबारी' का रगनाथ एम.ए. करने के बाद रोज़गार न मिलने पर पी.एच डी. करता दिखाई देता है, जबकि वह रिसर्च को घास खोदना मानता है– "कहा तो, घास खोद रहा हूॅ। इसी को अग्रेजी में रिसर्च कहते है।" लेखक का रंगनाथ के विषय में यह कहना कि "किसी भी सामान्य मूर्ख की तरह उसने एम ए करने के बाद नौकरी न मिलने के कारण रिसर्च शुरू कर दी थी" पी एच.डी. के महत्त्व पर कितना तीखा कटाक्ष है। इससे स्पष्ट उजागर है कि रोज़गारपरक न होने के कारण यह शिक्षा एक ओर तो व्यक्ति को बेरोजगारी के कगार पर ला खड़ा करती है तो दूसरी ओर व्यक्ति को उसकी योग्यताओ के अनुरूप रोजगार दिला सकने के अपने उद्देश्य की पूर्ति में भी असमर्थ है। 'छोटे-छोटे सवाल' उपन्यास के हिन्दू इण्टर कॉलेज का परीक्षा-परिणाम निकलने पर छात्रों की प्रतिक्रिया भी यही दर्शाती है– "पास होने वाले छात्र रिजल्ट का प्रतिशत निकालते हुए फेल होने वाले छात्रों से लम्बी सॉसें छोड़कर कह रहे थे– "देखो भाई ! यहॉ से तो गाडी खिसक गई, अब आगे क्या होता है "? उनकी संवेदनाऍ अपने-अपने सकटमय भविष्य की अकल्पित घोषणाऍ थीं ताकि फेल होने वालों को इस कल्पना से तस्कीन मिले कि असफलता के रास्ते पर वे अकेले नहीं हैं।"

इसीलिए 'आलू की ऑख' कहानी में कहानीकार ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली को "सडे आलू की खेती" कहा है। नायक अध्यापक कहता है– "तो सावधान। अब मैं आ गया हूँ तुम्हारे दिमागों में इस देश की शिक्षा-प्रणाली के सडे आलू की खेती करने... पढ़ो। पढ़ने से कौन रोकता है, पर हैं सब एकदम ढांढे। पूछिए, पढ़ लिखकर क्या करोगे ? शहर भागेंगे, इस देश का कबाड़ा इसी से हुआ है। जिसे देखो, शहर भाग रहा है। हम कहते हैं, खेती करो... आलू में ही आप देखिए कितनी बचत है।" वर्णित कहानी के अनुसार पाठ्यक्रम खोखले और सारहीन है, जिनका जीवन से कोई नाता नहीं है। किसानो के बच्चे शिक्षित कहलाने के लिए विद्यालय जाते हैं तो उनका रुझान शहरों की ओर हो जाता है। वे गॉवों से शहरो की ओर भागने लगते हैं।

यही नहीं, यह पद्धति बाहरी रख-रखाव पर बल देती है। 'मिसफिट' कहानी का लेखक एक अभिभावक के कथन के माध्यम से यही स्पष्ट करता है– "मैडम, मैं शिक्षा की कुछ बुनियादी बातो पर बातें करना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि हमारी शिक्षा बाहरी वेश-विन्यास पर अधिक बल देती है उसके मानसिक विकास पर कम।" छात्र अमित के पिता के विचार में "अगर बालक खेल में अपने वेश-विन्यास का ध्यान नहीं रखता तो उससे शिक्षा की कौन-सी बुनियादी नींव हिल जाती है ?" इस शिक्षा-पद्धति में छात्रों की रुचि-अरुचि और क्षमताओं को पहचानकर उचित शिक्षा नहीं दी जाती। यही लक्षित कर 'मिसफिट' कहानी के छात्र अमित के पिता फिर कह उठते हैं– "हमारी शिक्षा का काम भेड हॉकना नहीं है मैडम, भेड तो हर कोई हॉंक सकता है। उसका काम शुरू से ही बालक की रुचि-अरुचि के आलोक में उसके व्यक्तित्व का विकास करना है।"

'ज़हर चॉंद का' उपन्यास का लेखक शिक्षा की स्थिति देखकर प्रश्न उठाता है– "शिक्षा क्या है ? वह, जिसकी कल्पना कभी इग्लैण्ड के लॉर्ड मैकाले ने की थी कि ऐसे लोग तैयार किए जाएँ जिन्हें अपनी सभ्यता का कोई ज्ञान न हो, जो अंग्रेज़ी राज्य की गाडी को खींचने के लिए क्लर्क या छोटे-मोटे अधिकारी की शक्ल मे अच्छे खच्चर साबित हो सकें।"

कथा-साहित्य में रूपायित शिक्षा-जगत् के वस्तुपरक विश्लेषण से जो चित्र उभरकर आते हैं उनसे पता चलता है कि स्वतत्र भारत मे शैक्षिक प्रगति और विकास के नारे तो बहुत लगाए गए, अनेकानेक शिक्षण-सस्थाऍ भी खोली गई, परन्तु जितना परिवर्तन लक्ष्यो में आना चाहिए था, वह नहीं आया। कारण, हमारा समाज केवल स्वार्थो की ठोकरें खाकर घिसटता चला जा रहा है। स्वतत्र भारत में सुधार केवल आदर्श की वस्तु बन गई है और स्वार्थ यथार्थ मे प्रकट हुआ है। दायित्वहीनता, राजनीति, गरीबी के चंगुल में फसी शिक्षा

लक्ष्यच्युत और पगु हो गई है। शिक्षण-संस्थाएँ राजनीति, भ्रष्टाचार और अर्थोपार्जन के अड्डे मात्र बनकर रह गई हैं। शिक्षालय ज्ञान के पवित्र केन्द्र न होकर ऐसे केन्द्र बन गए है जिनकी आड मे वह सब कुछ होता है, जो नहीं होना चाहिए।

शिक्षा के वर्तमान ढॉचे मे सडन भर गई है जिसका एक प्रमुख कारण शिक्षा क्षेत्र मे पूँजीपतियो और नेताओं का हस्तक्षेप है। विशेषकर गॉव के शिक्षा-सस्थानों पर ग्रामीण नेताओं का प्रभुत्व और वर्चस्व है। शिक्षा-सस्थान विद्यार्जन के साधन न होकर अर्थोपार्जन के साधन हैं तथा इनमे शिक्षा के नाम पर राजनीति का पाठ पढाया जाता है। स्थानीय नेताओं के चुनावो की जमीन तैयार करने के लिए इन शिक्षण-सस्थानो का दुरुपयोग किया जाता है। छात्रों को शिक्षित कर उन्हे जागरूक कर जीवन-मूल्य प्रदान करने के अपने दायित्व को निभाने मे ये शिक्षा-सस्थान असमर्थ हैं।

इन शिक्षण-सस्थानो में शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का अभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। ऐसी स्थिति में छात्रों के व्यक्तित्व को निखारने, सॅवारने मे उपयोगी अन्य सामग्री का उपलब्ध होना तो स्वप्न मात्र ही प्रतीत होता है।

विद्यालयों का पाठ्यक्रम अवैज्ञानिक तो है ही, साथ ही इतना घटिया है कि विद्यार्थी की प्रतिभा को नहीं निखार पाता। शिक्षा अव्यावहारिक है और यह युवकों को उनके भावी जीवन के लिए तैयार नहीं करती इसलिए युवक अपने भविष्य के प्रति आशकित रहते हैं। निष्कर्षत· पाठ्यक्रम तथा शिक्षा-पद्धति ऐसी है जो नवयुवको में मानवीय गुणों का विकास करना तो दूर, उन्हें न तो भावी जीवन मे जीविकोपार्जन के लिए तैयार कर पा रही है और न ही देश के लिए उपयोगी नागरिक बना पाती है।

सन्दर्भ

1. ममता कालिया, जनवरी 1979, **लड़के,** सारिका।
2. दुष्यन्त कुमार, 1964, **छोटे-छोटे सवाल,** सजय प्रकाशन, नई दिल्ली।
3 कैलाशचन्द्र; जून 1985, **तलाश,** सारिका।
4 दीप्ति खण्डेलवाल, जून 1974, **युद्धरत,** आजकल।
5 दिलीपसिह चौहान, 1981, **हाथी के दाँत, अपने से परे** (कहानी सग्रह), मन्नू भण्डारी (सम्पादिका), चिन्मय प्रकाशन, जयपुर।
6 राजेश जोशी; अगस्त 1981, **आलू की आँख,** सारिका।
7 इमाइल दुर्खीम, 1956, **एजुकेशन एण्ड सोसाइटी**, ग्लेनको, फ्री प्रेस।
8 बदीउज्जमॉ; 1976, **अपुरुष,** प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. विनायक भक्त, नवम्बर 1975, **पचपनसाला,** कल्पना।
10. मधुकांत, 1985, **काले-काले दिन, विद्यासागर ज़िंदा है** (कहानी सग्रह)।
11 मधुकात, 1985, **दुकानबंद, विद्यासागर ज़िंदा है** (कहानी सग्रह)।
12. मधुकांत, 1985, **विद्याव्रत मर गया, विद्यासागर ज़िंदा है** (कहानी सग्रह)।
13. गगाप्रसाद मिश्र, 1976, **ज़हर चाँद का,** साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।

14 रामदरश मिश्र; 1979, **जल टूटता हुआ,** नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

15. रामदरश मिश्र, 1975, **मिसफ़िट, एक वह** (कहानी सग्रह), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

16 कमला वर्मा, 1981, **हंस अकेला, अपने से परे** (कहानी सग्रह), मन्नू भण्डारी (सम्पादिका), चिन्मय प्रकाशन, जयपुर।

17 अशोक शुक्ल, 1982, **हड़ताल हरिकथा,** पराग प्रकाशन, दिल्ली।

18 श्रीलाल शुक्ल, 1968, **रागदरबारी,** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

19 काशीनाथ सिह; 1985, **अपना मोर्चा,** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

20 शिवप्रसाद सिंह; 1967, **अलग-अलग वैतरणी,** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

21. हृदयेश; 1981, **साँड,** राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।

आधुनिक भारतीय समाज और शिक्षा

हरिकेश सिंह
रीडर, शिक्षा संकाय कमच्छा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाश्चात्य सभ्यता, सस्कृति व शिक्षा का मात्र अधानुकरण करने से ही कोई राष्ट्र आधुनिक नहीं बन सकता। किसी भी देश को आधुनिक बनने के लिए उसे अपने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक प्रणालियों और विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए उसमें समय के अनुसार मूलभूत संशोधन करने होंगे। लेखक के अनुसार यदि आधुनिक भारतीय समाज को निर्माण और विकास की उचित दिशा में ले जाना है तो शिक्षा के अन्तर्निहित सामर्थ्य की ओर जन सामान्य का ध्यान आकृष्ट करना होगा। अतः भारतीय समाज के आधुनिकीकरण के लिए सर्वप्रथम शिक्षा का आधुनिकीकरण आवश्यक है।

विगत चार शताब्दियों में मानव ने ज्ञान का बहुत ही प्रणालीबद्ध ढग से विकास के निमित्त उपयोग किया है। यह प्रवृत्ति बीसवीं सदी के मध्य में और तीव्रतर हुई। इस प्रवृत्ति के तीव्रतर होने का परिणाम यह रहा है कि मानव समाज में सम्प्रत्ययात्मक एव संरचनात्मक परिवर्तन भी तीव्र गति से हुए हैं। उपयोगिता, वांछनीयता, अधुनातनपन, सार्वभौमिकता, वैज्ञानिकता, उदारता एवं मानवतावाद कुछ ऐसी लाक्षणिक विशेषताएं रही हैं जिनसे ओतप्रोत व्यक्ति, समुदाय अथवा समाज को "आधुनिक" विशेषण से विभूषित किया गया है। आधुनिक होने या बनाये जाने की प्रक्रिया विभिन्न समूहों में काल एवं परिस्थिति की विभिन्नता के कारण विभिन्न दशा और दिशा में रही है। कुछ सामान्य लक्षणों के ही आधार पर किसी भी समाज को हम "आधुनिक" अथवा "परम्परागत" कहते हैं। "आधुनिक भारतीय समाज" और "समकालीन भारतीय समाज" भी निश्चित रूप से दो अलग-अलग सामाजिक सकल्पनायें हैं। यहाँ यह स्पष्टतः स्वीकार करना होगा कि जो सब कुछ समकालीन है अनिवार्यतः आधुनिक नहीं है। भारतीय समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्वीकार कर रहा है तथा इसकी विभिन्न सामाजिक संरचनाओं में आधुनिकता के अवयव समावेशित हो रहे हैं।

आधुनिक भारतीय समाज को परिभाषित अथवा विवेचित करते समय मूलतः तीन प्रक्रियात्मक प्रस्थापनाओं पर एक बार दृष्टिपात करना समीचीन होगा। आधुनिक भारतीय समाज क्या पाश्चात्यीकरण का उत्पाद है अथवा सास्कृतिकीकरण का उत्पाद है ? या दोनों प्रक्रियाओं के युग्मित प्रभाव का उत्पाद है ? इनकी संकेतात्मक व्याख्या करने के उपरान्त ही स्पष्ट रूप से यह जाना जा सकेगा कि आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा की क्या भूमिका है और आगे इसे कौन-कौन सी चुनौतियों का सामना करना पडेगा।

आधुनिक भारतीय समाज राज्य व्यवस्था के दृष्टिकोण से अधिक समांगी हुआ है परन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिक विषमांगी। राज्य व्यवस्थात्मक समागता और सांस्कृतिक विषमागता की द्वन्दात्मक स्थिति में भारतवर्ष में सांस्कृतिकीकरण एवं पाश्चात्यीकरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न आधुनिकता की पहचान करना एक कठिन कार्य प्रतीत होता है परन्तु असम्भव नहीं। संक्षेप में आधुनिक भारतीय समाज की आधुनिकतापरक विशेषताओं का संकेत यहाँ किया जा रहा है। भारतीय समाज में वर्गीकरण अथवा स्तरीकरण कुछ निश्चित समूह, आदतों के आधार पर और परम्परागत स्वरूप में श्रेष्ठ जातियों की आदतों पर प्रचलित रहा है। संस्कारों के अनुकरण को ही सास्कृतिकीकरण की संज्ञा दी गई है। औद्योगिकीकरण एवं नागरीकरण के संयुक्त परिणाम से पश्चिम में हो रहे आधुनिकीकरण का भारतीयों द्वारा किए गए अनुकरण को पाश्चात्यीकरण कहा गया है। आधुनिक भारतीय समाज इन दोनों ही परिवर्तन धाराओं से प्रभावित रहा है। आधुनिक भारतीय समाज की अधिकांश सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, विधि सम्बन्धित, औद्योगिक एव शैक्षिक संस्थाए पश्चिम (विशेषकर इंग्लैण्ड) की प्रतिछाया मात्र हैं। यही कारण है कि कई समाज विश्लेषक एवं मनोवैज्ञानिक आज भी आधुनिक

भारतीय समाज में औपनिवेशिक प्रवृत्ति (संस्कृति) को नवऔपनिवेशिकता के रूप में गहनतर होता पाते हैं। इसी संकट के प्रतिक्रियास्वरूप "स्वदेशी" आन्दोलन नवावरण मे प्रासगिक होता प्रतीत हो रहा है।

आधुनिक भारतीय समाज हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम एवं ईसाई धर्मो का एक समुच्चय है जिसे कुछ धर्मविचारक पथों का समुच्चय मानते है, परन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक भारत अनेकानेक जातियो, वर्णो, धर्मो अथवा पथों का देश है इसलिए विविधता (अनेकता) इसकी नियति है। विविधता में एक राष्ट्रबोध और एक पर्यावरणीय यौगिकता, एकता का भी बोध कराते हैं। व्यापक चिन्तन निष्कर्षो मे "परमसत्ता" की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित करने वाले सदेश को एकता का मत्र स्वीकारा जा सकता है। यही कारण है कि अनेकता मे एकता को सूत्ररूप में स्वीकार करने में कोई असहमति नहीं होती है। दार्शनिक परम्पराओ पर हिन्दू परम्परा की श्रेष्ठता की स्पष्ट झलक आधुनिक भारतीय समाज में परिलक्षित होती रहती है।

आधुनिक भारतीय समाज औपचारिक रूप से संगठित हो रहा है एवं संवैधानिक मान्यताओ की प्रौढ़ता प्राप्त कर रहा है। आज भी स्वातत्र्योत्तर भारत सवैधानिक समाकलन की दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है, परन्तु इस ओर ही अग्रसर होकर वास्तव में भारतीय समाज "आधुनिक" विशेषण को अर्थपूर्णता प्रदान कर पाएगा। धार्मिक अस्मिताओं की "सर्वसामान्यता" और "संवैधानिकता" को एक-दूसरे के पर्याय के रूप मे समझना एक आधुनिक भारत की आधुनिकतम आवश्यकता है। सवैधानिक समाज का निर्माण और विकास न तो एकाएक ही होता है और न ही न्यूनतम समय में। यह समाज समाकलन की सचेतन प्रक्रिया है जिसे सुनिश्चित दिशा शिक्षित नागरिक ही दे सकते हैं। यहॉ "शिक्षित" शब्द व्यापक मूल्यों के बोध एवं उसी के अनुरूप आचरण को व्यक्त करता हे। फलकवादी दृष्टिकोण से यदि आधुनिक भारतीय समाज की पहचान करना होगा तो भारतीय सविधान के सात वृहद् मूल्यों–समानता, स्वतन्त्रता, न्याय, भ्रातृत्व, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद एव लोकतन्त्र को ही राष्ट्रीय मूल्यों के रूप में अंगीकार करना होगा। ये मूल्य केवल विषयगत नहीं हैं, अपितु राष्ट्रकांक्षा हैं, जिन्हे संविधान निर्माताओं ने आधुनिक भारतीय समाज के प्राणमूल्यों के रूप मे मूलोच्छेद मे समाविष्ट किया है।

आधुनिक भारतीय समाज मे आधुनिकता के तत्वो को अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तन धाराओं की संगति मे ही उत्तरोत्तर समृद्ध किया जा सकता है। इस निमित्त यह स्पष्ट निर्धारण करना है कि राष्ट्रकांक्षा, राष्ट्रधर्म एवं राज्यस्वरूप तीनों ही आधुनिक सन्दर्भो में क्रमश· "विकास", "मानवतावाद" एवं "लोकतन्त्र" तीनो सम्प्रत्ययों पर ही पर्यायरूप मे आश्रित हैं। संवैधानिक व्यवस्था में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आस्था रखना एक नितात विवेकसगत अनिवार्यता है। गतिशीलता को सुनिश्चित रूप देने के लिए योजनाबद्ध परिवर्तन की प्रणाली आधुनिक भारतीय समाज की राष्ट्रीय कार्यविधि है। अब प्रश्न उठता है कि आधुनिक भारतीय समाज क्या केवल सकारात्मकताओं की ओर ही उन्मुख है ? अथवा सकटग्रस्त भी है। "परम्परा एव आधुनिकता" के बीच संश्लेषण कई सूक्ष्मद्वन्द्वों को जन्म देता है जो स्वत· ही सामाजिक निदान से हल होते हैं परन्तु कुछ ऐसे सकट आधुनिक भारत में पाश्चात्यीकरण के अन्धानुकरण एव अपने सम्पूर्ण अतीत के प्रति अति अनुराग के परिणामस्वरूप उभरे है। आज के भारतीय समाज में जो नए सकट सर्वाधिक असंतुलन एवं असमायोजन पैदा कर रहे हैं, उनमे से कुछ प्रमुख है– मानकहीनता, सहकारिता मे अनास्था, लोक व्यवस्था का सरकारीकरण, हिसा एवं कट्टरपथी, उग्रता, पृथकता की प्रवृत्ति, राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता में उत्तरोत्तर ह्रास, प्रतिभाओं की उपेक्षा, अवांछनीयता को निर्बाधरूप से सामाजिक मान्यता, श्रम की उपेक्षा, उपभोग ही जीवन का अन्तिम अभिप्राय, सवेदनहीनता, श्रेष्ठ परम्परागत मूल्यों के प्रति उदासीनता तथा जानबूझकर उपेक्षा एवं शिक्षा को मात्र रोजगार एव साक्षरता तक सीमित करके इसके सामर्थ्य को न्यून करना आदि।

अब प्रश्न उठता है कि क्या पूर्वोक्त सकटों को और घोरतर होने दिया जाए अथवा इनके निदान हेतु कोई शस्त्र उठाना होगा। शस्त्र मात्र शिक्षा है। यदि आधुनिक भारतीय समाज को निर्माण और विकास की उचित दिशा में ले जाना है तो शिक्षा के अन्तर्निहित सामर्थ्य की ओर बौद्धिकों द्वारा

जनसामान्य की आस्था को दृढ करना होगा। यह एक राष्ट्रीय अभियान अभी भी प्राथमिकता के आधार पर सकल्प के साथ चलाना शेष है। यदि यह अभियान गम्भीरता से चलाया जाए तो एक बार लोकशिक्षण द्वारा शिक्षा में आन्दोलन होगा जो राष्ट्रीय शैक्षिक रूपान्तरण को सुनिश्चित करेगा। यह राष्ट्रवादी शक्तियों द्वारा ही सम्भव है। मात्र सरकारी प्रयास इस लक्ष्य को कभी भी पूरा नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार राज्य व्यवस्था को पचायत राज्य के द्वारा लोकप्रिय बनाया गया है, उसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा महाभियान द्वारा शिक्षा के महत्व को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। शिक्षा की भूमिका, इसके सामर्थ्य एव इसकी प्रासंगिकता के प्रति लोगों में इधर अविश्वास अधिक बढ़ा है। यह एक राष्ट्रीय चिन्ता का विषय है। अप्रत्यक्ष रूप से यह मानव समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि इस प्रवृत्ति के कारण ही अमानवीय सफलताए प्रशंसनीय होती जा रही है।

भारत में शिक्षा राज्य द्वारा उपेक्षित है। इस उपेक्षित विषय से ही अपेक्षाएँ भी हैं। कुछ समाधानों को विचाररूप में प्रस्तावित करने से पूर्व शिक्षा के प्रमुख सकटों को भी जानना आवश्यक प्रतीत होता है। आधुनिक भारतीय शिक्षा के प्रमुख संकट हैं — शैक्षिक लक्ष्यों के स्पष्ट अवधारणा की कमी, प्रणालीहीनता, सस्थागत शैक्षिक अवसरों की असमानता, गुणवत्तायुक्त शिक्षण एवं प्रशिक्षण का अभाव, ज्ञानात्मक रूप से पाठ्यक्रमों का अप्रासगिक होना, क्रियात्मक अधिगम की ओर उपयुक्त दृष्टिकोण का अभाव, सूचनात्मक क्षमता को ही श्रेष्ठ शिक्षा का पर्याय मानना, प्रतिभाओं के शैक्षिक विकास पर राज्य की दोषपूर्ण नीति से निषेध, जनसंचार के माध्यमों को अशैक्षिक कार्यक्रमों मे लगाना, मानवीय मूल्यों की उपेक्षा, भारतीय शैक्षिक विरासत के श्रेष्ठ पक्षों का ध्यान न रखना, राष्ट्रीय समाज की आवश्यकता के संदर्भ में शिक्षा में वाछित परिवर्तनो का समय निकल जाने पर विलम्ब से क्रियान्वयन, सामुदायिक शैक्षिक प्रयासों द्वारा शिक्षा के प्रबन्धन, प्रशासन एवं वित्तीय नियोजन को नियमित करते हुए स्वायत्तता के वातावरण का अभाव तथा विदेशी ऋण के दबाव की अर्थनीति में भारत में अनुपयुक्त शैक्षिक प्राथमिकताओं एव शोध परियोजनाओ का निर्धारण।

आधुनिक भारतीय समाज यदि अपनी देशज आवश्यकतानुसार विकास के प्रतिमानों को आत्मसात् करते हुए प्रगति के पथ पर चलना चाहता है तथा मानवता को मौलिकता से जोडते हुए अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भो मे भी अपनी श्रेष्टता को स्थापित करना चाहता है, तो पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर सेवायोजन तक की शैक्षिक प्रणाली के विभिन्न उपागमो को सुसंगठित करना होगा। इस प्रयास में प्रतिभासम्पन्न छात्र-छात्राओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देते हुए स्त्री-शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, विज्ञान की शिक्षा एवं उद्यमिता की शिक्षा को उच्च प्राथमिकता प्रदान करना होगा। स्वस्थ मानसिकता, शान्ति एव सामाजिक कौशल की शिक्षा को भी इन्हीं प्राथमिकताओ के समतुल्य रखना उचित प्रतीत होता है। आधुनिक भारतीय समाज को उपयुक्त आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से अनुप्रेरित करने हेतु शिक्षा का आधुनिकीकरण अपेक्षित है।

भारतीय भाषाएँ और हिन्दी अनुवाद

सुरेश चन्द्र मिश्र
स्नातकोत्तर शिक्षक (हिन्दी)
केन्द्रीय विद्यालय, दा.घा.नि.
मैथन बाँध, धनबाद, बिहार – 828207

एक भाषा से दूसरी भाषा में सटीक अनुवाद एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अनुवाद के माध्यम से न केवल भाषा साहित्य समृद्ध होता है अपितु भारत जैसे बहुभाषी देश में अनुवाद के माध्यम से विभिन्न सस्कृतियों का आदान-प्रदान भी होता है। इस प्रकार अनुवाद विभिन्न भाषाओं तथा भाषा भाषियों के बीच एक सेतु का कार्य भी करता है। वर्तमान समय में अनुवाद की प्रवृत्ति बढ़ी है जो एक आशाजनक स्थिति है। तथापि अच्छे अनुवाद के लिए सुयोग्य अनुवादकों को प्रोत्साहन देना तथा अनुवाद कार्य को एक रचनात्मक कार्य की सज्ञा प्रदान करना अति आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने विभिन्न भारतीय भाषाओं से हिन्दी में तथा हिन्दी से उन भाषाओं में हुए अनुवादों के विषय में रोचक जानकारी प्रदान की है।

हिन्दी में अनुवाद की परंपरा बाबू भारतेन्दु के प्रयासों से प्रभावित होती हुई "निराला" और प्रेमचन्द तक चलती रही। अपने नए परिदृश्य मे भी यह 'नेशनल बुक ट्रस्ट', 'साहित्य अकादमी', 'भारतीय ज्ञान-पीठ' जैसी संस्थाओं के कारण आज ख्याति अर्जित कर रही है। विगत दो दशको से भारतीय भाषाएँ यथा असमिया, उड़िया, गुजराती, कन्नड़, मराठी, मलयालम, तमिल, तेलुगू, बगला आदि भाषाओ की कविताओं, कहानियो, उपन्यासों, नाटकों, निबन्धों के हिन्दी अनुवाद धडल्ले से हो रहे है, यहाँ तक कि आज इन भाषाओं में उपलब्ध जीवनियाँ एव आत्मचरित भी हिन्दी अनुवाद की कडी में पुस्तकाकार रूप से जुड़ गए है। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा हाल ही में प्रकाशित उडिया लेखक फकीर मोहन सेनापति का आत्मचरित एक ऐसी ही उल्लेखनीय पुस्तक है। कुछ भारतीय भाषाओं के सुप्रसिद्ध समकालीन रचनाकारो का समूचा कृतित्व ही हिन्दी में प्राप्त है। उड़िया के सीताकान्त महापात्र, कन्नड़ के यू.आर. अनन्तमूर्ति ऐसे ही सौभाग्यशाली रचनाकार हैं। इस प्रकार हिन्दी समृद्ध ही नहीं हुई अपितु वह भारतीय भाषाओं से सुपरिचित भी हुई है। इस दृष्टि से यह हिन्दी में एक महत्वपूर्ण नई शुरुआत है।

अनुवादों की परम्परा के आरभिक दौर में हिन्दी में एक लम्बे समय तक वही साहित्य आता रहा जिसके रचनाकारों को अखिल भारतीय स्तर की ख्याति प्राप्त थी। रवीन्द्रनाथ, बकिम बाबू, सुब्रह्मण्यम भारती ऐसे ही रचनाकार रहे है। यहाँ तक कि शरद बाबू को भ्रमवश हिन्दी का ही रचनाकार माना जाता रहा है। हॉ खोजी अनुवादकों की कमी अवश्य अखरने वाली थी क्योंकि खोजी अनुवाद का खतरा अनुवादक-प्रकाशक नहीं लेना चाहते थे तदुपरान्त 'कहानी' और 'माया' जैसी पत्रिकाओ के माध्यम से इस प्रकार के अनुवाद को प्रोत्साहन मिला जिसमे विश्वकथा साहित्य तो शामिल था, साथ ही गगाधर गाडगिल, व्यगटेश माडगूलकर, समरेश बसु जैसे अनेक लेखक भी शामिल थे जो स्वयं अपनी भाषाओं में उस समय उभर ही रहे थे। "कहानी" की सहयोगी पत्रिका "उपन्यास" में माणिक बन्दोपाध्याय जैसे लेखको के उपन्यास सामने आए। "धर्मयुग" और "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" जैसी पत्रिकाओ ने इस कड़ी को बनाए रखा। साहित्यिक पत्रिकाएँ तो अपना योगदान करती ही रहीं और एक दिन हम मलयालम के कतबी शिवशंकर पिल्लै और मुहम्मद बशीर जैसे लेखकों के उपन्यास से भी परिचित हुए। तेलुगू, तमिल, कन्नड भाषाओं की ओर भी हमारी खिड़की खुली और एक दिन एक ऐसी नई स्थिति भी बनी कि उडिया की प्रतिष्ठा राय, शकुन्तला पंडा, यशोधरा मिश्र जैसी लेखिकाएँ भी हमारे लिए नई नहीं रहीं। बगला के शंखघोष, सुनील गॉगुली और शक्ति चट्टोपाध्याय जैसे रचनाकार हिन्दी में भी आ गए तो उधर पंजाबी के पाश और सुधीर पातर हिन्दी के बन गए, यहाँ तक कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में पच्चीस-तीस वर्ष की आयु वर्ग के

रचनाकारों की रचनाएँ भी हम पढ रहे है। यही हिन्दी अनुवाद की नई दिशा है।

आज हिन्दी में अनुवाद को "रायल्टी" की आवश्यकता है जो दोयम दर्जे का कार्य है। ऐसी बहुत कम प्रकाशन सस्थाएँ है जो अनुवादक को रायल्टी देने को उद्यत हों। उन्हे तो एकमुश्त पारिश्रमिक का ही प्रावधान है और अभी भी उसे मशीनी काम माना जाता है। इस दृष्टि से साहित्य अकादमी ने अनुवादो के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार की व्यवस्था करके अच्छा काम किया है और इससे अनुवादक के लिए प्रोत्साहन, प्रशंसा और स्वीकृति सतोष की कई सुविधाएँ जुटाई गई परन्तु अनुवादक और अनुवाद कार्य को पूरी गरिमा मिलनी आज भी शेष है। कुछ अन्य प्रशासको ने भी अनुवाद की दिशा में अपना अमूल्य योगदान दिया है किन्तु स्वत· स्फूर्ति और मात्र रचनात्मक सुख के लिए किए गए अनुवादो के धरातल अभी शेष है। लेखक, कवि, अनुवादक इस सुख के लिए प्रयासरत है पर, ऐसे कार्य के लिए प्रोत्साहित-प्रकाशित-प्रशंसित करने वाली सस्थाओं की आज भी कमी है। साहित्य अकादमी की पत्रिका समकालीन भारतीय साहित्य इस दिशा मे लम्बे समय से प्रयासरत है और समय-समय पर इसने भारतीय भाषाओ से सम्बद्ध लेखको, अनुवादको के विशेषांक भी निकाले है। साक्षात्कार "विपाशा" जैसी पत्रिकाओ में छिटपुट अनुवादो के लिए स्थान भी बना है। समाचारपत्रो के रविवारीय स्तभ भी इस ओर सराहनीय प्रयास है।

अनुवादक के नाम और कार्य को आज प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। ऐसे व्यक्तियों जो सामान्यतः अनुवाद नहीं करते किन्तु कर सकते है को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। बम्बई से प्रकाशित आर डी.वी.आई. की पत्रिका "विकास प्रभा" ने ऐसा सराहनीय प्रयास किया भी और उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों तथा अधिकारियो से अच्छे अनुवाद कराए। अनुवाद सम्बन्धी परिचर्चाएँ भी आयोजित कीं, किन्तु प्रकाशन गृहों ने अभी भी योजनाबद्ध तरीके से स्तरीय अनुवाद का काम नहीं अपनाया है। एक समस्या और है, हिन्दी में अधिकाश अनुवाद भारतीय भाषाओं से आ रहे है, परन्तु हिन्दी से उन भारतीय भाषाओ मे नहीं जा पा रहे है। बंगला से जितने अनुवाद हिन्दी में हुए है क्या उसी अनुपात में हिन्दी से बगला में हो पाए हैं ? यह आदान-प्रदान इसलिए आवश्यक है कि जब बंगला भाषी अनुवादक हिन्दी से बगला में अनुवाद करेंगे तब स्वय बंगला से हिन्दी मे अनुवाद करने वाले व्यक्ति स्वत· प्रस्तुत हो जाएँगे। यही स्थिति अन्य भारतीय भाषाओ के लिए भी होगी। फलतः साहित्य अकादमी के अनुवाद पुरस्कार समारोह में अनंतमूर्ति ने याद दिलाया था– "उत्तर भारत मे दक्षिण की भाषाएँ सीखने की ललक कम दिखलाई पड़ती है।" कारण, अगर कोई हिन्दी भाषी स्वय दक्षिण की किसी भाषा से अनुवाद करेगा तो उसकी गुणवत्ता कुछ और होगी और यही हिन्दी के लिए "शुभ दिन" भी होगा।

अनुवाद एक रचनात्मक कार्य है इसलिए इसका कोई सर्वमान्य नियम नहीं है और यह अनुवादक से नई अपेक्षाएँ रखता है। अधिकाश रचनाकार विश्व मे अनुवाद आनन्द के लिए करते हैं और कई बार लाचारी में अपनाए गए अनुवाद कार्य को एक नई दिशा व मोड देते है। बोरिस पास्तरनाक को एक समय जीविका के लिए अनुवाद करने पडे थे किन्तु शेक्सपीयर और रवीन्द्रनाथ के अनुवादो के कारण उनकी निष्ठा और रचनात्मकता ऐसी झलकी कि वे रचनात्मक अनुवादक बन गए। बंकिम और शरत् के समय हिन्दी भाषी समाज को उन अनुवादो मे सीधी रुचि नहीं थी किन्तु उन अनुवादो से पाठक समाज लाभान्वित न हुआ हो, ऐसी बात भी नहीं थी, फिर भी सच्चाई यह है कि अनुवादो के विषय में अनुवाद और पाठक के बीच जो असामान्य दूरी है, उसका भी ध्यान अनुवाद संबधी चर्चा मे रहना चाहिए क्योकि भाषाओ के बीच अनुवाद ही पुल बनाता है।

अनुवाद के संबंध में पाठको के संसार की जॉच-परख आज आवश्यक है क्योंकि इतने अनुवादों के पश्चात् भी आज तक साहित्य ससार में अनुवादो के आलोचनात्मक विश्लेषण की कोई सार्थक प्रक्रिया शुरू नहीं हुई है। अनूदित पुस्तको की जो समीक्षाएँ हैं, उनमें भी अनुवाद कार्य मे प्रायः कम टिप्पणियॉ रहती हैं क्योंकि साहित्य चर्चा में आज भी अनूदित

पुस्तकों को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाया है। साहित्येतर पुस्तकों के अनुवाद के विषय में आवश्यकता है कि अन्य भारतीय भाषाओं से साहित्येतर विषयों की पुस्तकों के अनुवाद अधिकाधिक किए जाएँ जिससे सत्यजीत राय की "जोखोन छोटो छिलाम" या "विषम चलचित्र" जैसी पुस्तकों के अनुवाद से एक प्रसन्नता उत्पन्न हो सके। अत: अनुवादों की "नई स्थिति" आज उन अनन्त संभावनाओं की ओर संकेत कर रही है जिनसे हिन्दी संसार और अधिक समृद्ध हो सकेगा।

डॉ. एनी बेसेन्ट का शिक्षा-दर्शन

अमरनाथ दत्त गिरि
प्रवक्ता
शिक्षक-शिक्षा विभाग
अतर्रा पी.जी. कालेज
अतर्रा, बादा (उ.प्र.) 210201

मानव को सामाजिक जीवन में सफल होने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य है। इस तथ्य को सभी विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है। समय-समय पर विभिन्न विद्वानों, विचारकों और समाज सुधारकों द्वारा प्रस्तुत किए गए शिक्षा-दर्शन ने समस्त शिक्षा प्रणाली को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। इसी क्रम में लेखक ने प्रस्तुत लेख में डॉ. एनी बेसेन्ट के शिक्ष-दर्शन का विस्तार से वर्णन किया है। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने शिक्षा के विषय में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। उनके अनुसार शिक्षा के द्वारा बालक को शारीरिक सुख छोड़कर आध्यात्मिक सुख की अनुभूति कराना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इन्होंने शिक्षा को बालक के सर्वांगीण विकास का साधन माना है।

डॉ. श्रीमती एनी बेसेन्ट का जन्म सन् 1847 में लंदन के एक धनी आइरिश परिवार में हुआ था। इनके माता-पिता धार्मिक विचार के थे और इसी धार्मिकता का असर इन पर भी पडा। इनकी रुचि बाल्यावस्था से ही धार्मिक पुस्तको के अध्ययन के प्रति थी। जीवन की समस्याओं के विषय में ये एक दार्शनिक की भांति कल्पना एवं विचार किया करती थीं। श्रीमती बेसेन्ट 1893 ई. मे ब्रह्मवादी समाज (Theosophical Society) की सदस्य बनकर भारत आईं। भारत में आकर इन्होने हिन्दू धर्म एवं सस्कृति का अध्ययन किया और समाज के लोगों से सम्पर्क किया। इनका ऐसा विश्वास था कि हिन्दू धर्म एवं सस्कृति पाश्चात्य धर्म सस्कृति से श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट करते हुए इन्होंने लिखा है– "भारतीय दर्शन ही सभी पश्चिमी देशों के दर्शनो की आधारशिला है, भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता की मातृभूमि है और संसार की सभ्यता का स्रोत है।" इनका भारतीय हिन्दू धर्म के प्रति अगाध प्रेम था, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू धार्मिक ग्रथो के प्रति बडा अनुराग था। विदेशी महिला होते हुए भी भारत को अपनी मातृभूमि समझकर इन्होंने इसकी सेवा की। भारत के रीति-रिवाज, आचार-विचार को हृदय से अपनाया। वेदान्त, गीता, रामायण आदि ग्रंथों का अध्ययन किया। गीता का अंग्रेजी मे अनुवाद भी किया। वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया। हिन्दू धर्म एव संस्कृति के विकास के अतिरिक्त शिक्षा, समाज-सुधार एवं राजनीति के क्षेत्र में भी इन्होंने अनेक कार्य किये।

इन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई। यही विद्यालय आगे चलकर पंडित मदन मोहन मालवीय के प्रयास से "बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय" के रूप में विकसित हुआ।

डॉ. एनी बेसेन्ट सन् 1907 में थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा चुनी गई और आजीवन इस पद पर रहकर इन्होने देश एव विदेश में हिन्दू धर्म, संस्कृति और अध्यात्म का प्रसार किया।

डॉ. एनी बेसेन्ट ने सन् 1913 से ही भारतीय राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ किया। दैनिक पत्र "न्यू इडिया" के माध्यम से बड़ी निर्भीकता के साथ इन्होंने भारत को स्वशासन देने की मांग को सरकार के सम्मुख रखा। इनकी रुचि कांग्रेस पार्टी मे भी थी। इसीलिए इनको सन् 1918 में भारतीय कांग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। गाधी जी ने इनके सम्बन्ध में कहा था– "जब तक भारत जीवित रहेगा तब तक श्रीमती एनी बेसेन्ट की भव्य सेवाओ की स्मृति भी अमर रहेगी। इन्होंने भारत को अपनी दत्तक मातृभूमि स्वीकार कर इसके प्रति अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।"

जीवन के अतिम दिनों में ये शारीरिक रूप से क्षीण हो गई थीं। ये थियोसोफिकल सोसायटी के केन्द्र अदियार में रह रहीं थी। यहीं पर सन् 1932 में 85 वर्ष की आयु में इन्होने ससार से महाप्रस्थान किया।

जीवन दर्शन

एनी बेसेन्ट स्वभावतः धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। इनका धर्म के प्रति बहुत अनुराग था। इसी कारण इन्होंने भारतीय धर्म एवं संस्कृति का अध्ययन किया। अपने जीवन दर्शन में हिन्दू धर्म को आत्मसात् किया। साथ ही इनका भारतीय वेदान्त-दर्शन मे गहरा विश्वास था। अपने भाषण में इन्होने एक बार कहा था– "भारतीय सभ्यता की विचित्रता इस तथ्य में है कि इसकी रचना अध्यात्मिक उद्देश्य से हुई है। इस देश के सामाजिक जीवन के सगठन का भी उद्देश्य अध्यात्म की प्राप्ति ही रहा है। इस देश के कण-कण में अध्यात्म की भावना व्याप्त है और यहॉ के जीवन से धर्म को किसी भी दशा में अलग नहीं किया जा सकता है।"

शिक्षा दर्शन

एनी बेसेन्ट की आस्था वेदांत–दर्शन में थी, इसलिए ये जीवन का परम लक्ष्य आत्मानुभूति मानती थीं। बालक में शारीरिक आनन्द का लक्षण जन्मजात विद्यमान रहता है। बालक को शारीरिक सुख छोडकर आध्यात्मिक सुख की अनुभूति कराना ही एनी बेसेन्ट का शिक्षा दर्शन है।

शिक्षा सम्बन्धी विचार

(क) शिक्षा का अर्थ : एनी बैसेन्ट के मतानुसार, शिक्षा का तात्पर्य "मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों एवं क्षमताओं को विकसित और प्रशिक्षित करना है।" इन्होंने शिक्षा को बालक के सर्वांगीण विकास का साधन माना है। बालक को जो भी ज्ञान प्रदान किया जाए वह उसके जीवन से सम्बन्धित हो। इससे उसका वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास समन्वितरूप से हो सकेगा। शिक्षा द्वारा बालक की आन्तरिक क्षमताओं को, उसकी प्रकृति के अनुरूप प्रत्येक पहलू को अभिव्यक्त करना है, अर्थात् उसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावात्मक, चारित्रिक, नैतिक एव आध्यात्मिक सभी दृष्टिकोणो से विकसित करना है जिससे वह सामाजिक जीवन में सफल हो सके। इस प्रकार इन्होने शिक्षा को विकास की प्रक्रिया माना है जो व्यक्ति के विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत से उसका सम्बन्ध स्थापित कराती है।

शिक्षा द्वारा बालक को व्यवस्थित रूप से शिक्षित किया जाता है। अतएव एनी बेसेन्ट शिक्षा को सैद्धांतिक रूप में विज्ञान मानती हैं। बालक की अन्तर्निहित शक्तिया ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वातावरण के सम्पर्क में आती हैं, तत्पश्चात् वे जागृत होती हैं और उसमें ज्ञान प्रज्ज्वलित हो उठता है।

ये शिक्षा और सस्कृति में भी घनिष्ठ सम्बन्ध मानती हैं। इनका विश्वास है कि — "शिक्षा सस्कारों का सगठन है।" शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपने आचार-व्यवहार में परिवर्तन एवं परिमार्जन लाता है और व्यक्ति बनता है।

(ख) शिक्षा के उद्देश्य : एनी बेसेन्ट ने शिक्षा के 4 मुख्य उद्देश्य बतायें हैं–

1. शारीरिक विकास : शरीर सभी कार्यो का साधन है, अतएव इसे हृष्टपुष्ट रखना आवश्यक है। शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शरीर का पूर्ण विकास करना है जिससे वह मानसिक, नैतिक एवं धार्मिक कार्यों को भलीभांति सम्पादित कर सके।

2 मानसिक विकास : मानसिक शिक्षा द्वारा छात्रों में निरीक्षण, स्मरण, कल्पना, तर्क, निर्णय, आत्माभिव्यक्ति आदि शक्तियों का बौद्धिक स्तर ऊपर उठता है।

3. नैतिक विकास : इसके अतर्गत सयोग शक्तियों का विकास एवं प्रशिक्षण किया जाता है। इससे बालकों में सदगुणों का विकास होता है। सदगुणों के अतर्गत प्रेम, त्याग, सहयोग, सहानुभूति, कर्त्तव्यपरायणता, उत्तरदायित्व की भावना आदि सम्मिलित हैं। नैतिक विकास का तात्पर्य है कि व्यक्ति मन, वचन एवं कर्म में सामजस्य स्थापित करना जान जाए।

4 धार्मिक विकास : एनी बेसेन्ट के जीवन का आधार ही धर्म है। बालकों में धार्मिक भावना जागृत कर ईश्वर में विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है। शारीरिक, मानसिक एव नैतिक विकास हो जाने पर बालक मे आध्यात्मिक विकास स्वत हो जाता है।

(ग) शिक्षा की पाठ्यचर्या : डॉ. एनी बेसेन्ट ने शिक्षा प्राप्ति के तीन काल माने है। इन्होंने छात्रो की आयु के अनुसार निम्नलिखित पाठ्यक्रम निर्धारित किया है–

1. प्रथम काल I (1 से 5 वर्ष तक) वास्तव में यह समय शारीरिक प्रशिक्षण का है। ज्ञानेन्द्रियों एव कर्मेन्द्रियो के विकास के लिए पाठ्यक्रम मे शारीरिक क्रियाओं (चलना, फिरना, उठना, बैठना) खेलकूद, व्यायाम, भाषा गीत, गणित आदि विषयों को रखा। इस काल में शिक्षा का माध्यम खेल होना चाहिए। यह शिक्षा घर से जुड़ी हुई होनी चाहिए।

प्रथम काल II (5 से 7 वर्ष तक) — यह शिक्षा प्राइमरी 1 (अ) एवं (ब) के लिए है। इस समय के पाठ्यक्रम में मातृभाषा, गणित, खेल-कूद, स्वास्थ शिक्षा आदि को सम्मिलित किया गया है। बालको के नैतिक विकास के लिए उन्हें महापुरुषों की कथाए सुनानी चाहिए।

2 द्वितीय काल I (आयु 7 से 10 वर्ष तक) — यह संवेगों के प्रशिक्षण का समय है। इस काल में कक्षाओं 2, 3, एव 4, की पढाई की व्यवस्था है। पाठ्यक्रम में भाषा आदि विषयो को महत्व दिया गया है।

द्वितीय काल II (आयु 10 से 14 वर्ष तक) — इस काल के अतर्गत कक्षा 5, 6, 7 एवं 8 की पढाई की व्यवस्था है।

इस अवस्था पर छात्रो के संवेगों में चंचलता रहती है और ये सवेग मानसिक शक्तियो को प्रभावित करते हैं। इस स्तर पर मातृभाषा, संस्कृत, अरबी, फारसी, पालि, अग्रेजी, गणित, सामाजिक विषय, कला-कौशल आदि विषयो का समावेश होना चाहिए।

3. तृतीय काल I (आयु 14 से 16 वर्ष तक) — यह काल मुख्यत: मानसिक शिक्षा का है। यहाँ हाई स्कूल की कक्षा 9 एव 10 की व्यवस्था है। हाई स्कूल के पाठ्यक्रम को 4 भागो में बाटा गया है।

क सामान्य हाई स्कूल (साहित्यिक वर्ग) — इसमे मातृभाषा, संस्कृत, अरबी, फारसी, पालि, अंग्रेजी, भारत तथा इग्लैण्ड का इतिहास, भूगोल आदि विषय रखे गए है।

सामान्य हाई स्कूल (वैज्ञानिक वर्ग) — इसमें मातृभाषा, अग्रेजी, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र और गणित को रखा है।

ख. वाणिज्य हाईस्कूल — इसके अंतर्गत विदेशी भाषा, व्यवसाय के रूप, बुक-कीपिंग, व्यापारिक गणित, टाइपराइटिंग, आशुलिपि आदि विषयो को रखा गया है।

ग टेक्निकल हाईस्कूल — इसमे मातृभाषा, अग्रेजी, भौतिक व रसायन विज्ञान, इजीनियरिग यन्त्र-विद्या, विद्युत-ज्ञान एवं औद्योगिक इतिहास आदि विषय रखे गये हैं।

घ कृषि हाई स्कूल — इसमे मातृभाषा, सस्कृति, अरबी, फारसी, ग्रामीण इतिहास, भूगोल, गणित, हिसाब, कृषि प्रयोगात्मक कार्य, भौतिक व रसायन विज्ञान, प्रकृति विज्ञान एव उद्यान कला आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है।

तृतीय काल II (आयु 16 से 21 वर्ष तक) — यह उच्च शिक्षा का काल है। इस पाठ्यक्रम को दो स्तरों में विभाजित किया गया है–

क. स्नातकीय पाठ्यक्रम — यह शिक्षा विश्वविद्यालयो द्वारा दी जानी चाहिए। यह पाठ्यक्रम 16 से 19 वर्ष के छात्रों के लिए है और इसके अन्तर्गत साहित्यिक, वैज्ञानिक, वाणिज्य, तकनीकी, कृषि आदि से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

ख. स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम — यह काल 19 से 21 वर्ष तक का है। स्नातकीय पाठ्यक्रम का विस्तृत अध्ययन इस स्तर पर किया जाता है।

(घ) शिक्षण-विधि : एनी बेसेन्ट के मतानुसार, ऐसी शिक्षा पद्धति अपनाना चाहिए, जिससे छात्रों का विकास स्वाभाविक एवं क्रमिक रूप से हो सके। वे रटने की विधि के पक्ष मे नहीं थीं। शिक्षण में निम्नलिखित विधियो का इन्होंने अनुमोदन किया है —

1. निरीक्षण विधि — प्राय: बालक का जन्मजात स्वभाव होता है कि वह प्राकृतिक एव भौतिक वातावरण का निरीक्षण करता है। निरीक्षण के फलस्वरूप ही उसकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है।

2. क्रिया विधि — बालक के शारीरिक एव मानसिक विकास के लिए खेलकूद तथा व्यायाम जैसी क्रियाओ को करने का अवसर बालक को दिया जाना चाहिए। कृषि, उद्योग आदि विषयों की शिक्षा (जिनसे मानसिक विकास होता है) में भी क्रिया विधि को अपनाना चाहिए।

3 निर्देश विधि — प्रायः बच्चे अपरिपक्व रहते हैं। अध्यापक अपने अनुभवों के आधार पर उन्हें निर्देशन देता रहता है। इससे उनका मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है।

4. अनुकरण विधि — प्रायः बच्चों की सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वह अपने से बड़ो की नकल करता है। अनुकरण द्वारा उसका नैतिक एव चारित्रिक विकास होता है। इसलिए अध्यापक को अच्छे गुणों का प्रत्यक्ष उदाहरण उनके समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

5 व्याख्यान विधि — उच्च कक्षाओं के पढाने में इस विधि का प्रयोग लाभप्रद होता है।

6 स्वाध्याय विधि — उच्च स्तर की कक्षाओं में स्वाध्याय विधि द्वारा शिक्षा-प्राप्ति पर बल देना चाहिए। इसमें चिन्तन, मनन आदि शामिल है।

7. प्रयोग विधि — विज्ञान, तकनीकी, कलाकौशल, गृह-विज्ञान एवं व्यावसायिक विषयों की शिक्षा प्रयोग विधि पर आधारित होनी चाहिए।

(ङ) छात्र, अध्यापक, विद्यालय

छात्र : छात्र को शिक्षा उसकी आयु, योग्यता एवं अभिरुचि के अनुकूल देनी चाहिए। इसलिए एनी बेसेन्ट ने शिक्षा के तीन स्वाभाविक काल बताए हैं और उसी के अनुरूप पाठ्यक्रम भी निर्धारित किया है। विद्यार्थी को अपना जीवन चार बातों पर केन्द्रित रखना चाहिए– सेवा, स्वाध्याय, सरलता और आत्म सयम।

अध्यापक : अध्यापक को स्वयं चरित्रवान होना चाहिए। उसे प्राकृतिक नियमों से अवगत रहना चाहिए। अध्यापक को ज्ञान में पूर्ण, आत्मज्ञानी और सत्य का बोध कराने वाला होना चाहिए।

एनी बेसेन्ट ने शिक्षा-प्राप्ति के तीन स्वाभाविक काल बताए है। प्रथमकाल– जन्म से सात वर्ष तक का। यह मुख्य रूप से 'शारीरिक शिक्षा' का काल है। 5 से 7 वर्ष तक के बालकों के लिए प्राइमरी कक्षा 1 (अ) एवं (ब) मे पढ़ाने की व्यवस्था है। यहाँ पर बालकों की ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित किया जाता है। द्वितीय काल– 7 से 14 वर्ष तक का। इस काल में छात्रों के 'सवेगों' को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। तृतीय काल– 14 से 21 वर्ष तक का। यह मुख्य रूप से 'मानसिक विकास' का काल है। अतएव इस स्तर पर माध्यमिक विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों का दायित्व है कि वे छात्रों में विचार, कल्पना, तर्क चिन्तन आदि शक्तियों को अधिकतम करने का अवसर प्रदान करें ताकि विद्यार्थी यहाँ से निकलकर समाज मे अपने को अच्छी तरह समायोजित कर सकें।

(च) अनुशासन : एनी बेसेन्ट दमनात्मक अनुशासन में विश्वास नहीं रखती थीं। ये आत्मसंयम द्वारा स्वशासन तथा आत्मनियंत्रण के पक्ष में थीं। विद्यार्थी एवं अध्यापक दोनों को अनुशासित होना चाहिए। प्रेम, सहानुभूति, सद्व्यवहार, चरित्र, बल आदि गुणों के विकसित हो जाने पर बालक स्वत अनुशासित हो जाएगा।

शिक्षा में योगदान

एनी बेसेन्ट शिक्षा को व्यक्ति के विकास का साधन मानती थीं। इनकी संकल्पना थी कि किसी भी देश का कोई भी नागरिक विदेशी शिक्षा योजना के अतर्गत पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकता। अतएव यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश की अपनी राष्ट्रीय शिक्षा योजना हो और राष्ट्रीय शिक्षा योजना द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास हो। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा योजना में भारतीय आदर्शो को समाहित किया जाए। जब व्यक्ति का विकास होगा, तभी राष्ट्र का भी उत्थान होगा। इन्हीं सब बातो को ध्यान मे रखते हुए एनी बेसेन्ट ने भारत के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई, जिसकी सामान्य रूपरेखा निम्नलिखित ढंग की थी —

क. सर्व-साधारण के लिए शिक्षा (सार्वजनिक शिक्षा)

प्रारम्भिक शिक्षा सभी को समान रूप से मिलनी चाहिए। सहकारी आदोलन द्वारा सर्व-साधारण मे शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए और जीवन से सम्बन्धित सभी विषयो की शिक्षा दी जानी चाहिए।

ख. पिछड़े वर्ग की शिक्षा

आर्थिक कठिनाई के कारण बहुत से लोग पढ़-लिख नहीं पाते। एनी बेसेन्ट ने इन्हे पिछड़े वर्ग के अतर्गत रखा है। इसकी सख्या भारत की सम्पूर्ण जनसख्या का छटा भाग है। वे राष्ट्र के आधार है, जो गरीबी के कारण अशिक्षित रह जाते हैं। इन्हें शिक्षित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस वर्ग के लोगो को भी सफाई, पढना, लिखना, नैतिकता आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए।

ग. प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिए रात्रि में प्रौढ़ पाठशालाओं की व्यवस्था आवश्यक है। प्रौढ शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि जो व्यक्ति दिन में इधर-उधर कार्यरत हैं, वे सायंकाल अपने उत्थान के लिए प्रौढ़ पाठशालाओं मे जाकर पढ सकें, सामाजिक गतिविधियों की उनको जानकारी हो सके और वे भी समाज के उपयोगी सदस्य बन सकें।

घ. स्त्री शिक्षा

स्त्रियो को पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। एनी बेसेन्ट ने बालिकाओं की शिक्षा को चार भागो मे बांटा है —

1 धार्मिक एव नैतिक शिक्षा — भारतीय आदर्श नारियों के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

2. शारीरिक शिक्षा — शारीरिक विकास के लिये शारीरिक शिक्षा के अतर्गत खेलकूद, व्यायाम, दैनिक जीवन के पारिवारिक कार्य सम्मिलित होने चाहिए।

3 कलात्मक शिक्षा — इसके अतर्गत, संगीत, चित्रकला, सिलाई, कढाई बुनाई अन्य कला-कौशल सिखाना आदि। इससे अवकाश के समय का सदुपयोग हो सकेगा।

4 साहित्यिक शिक्षा — जो लड़किया तीव्र बुद्धि की हों, उन्हें भाषा, साहित्य, भारतीय इतिहास एवं सस्कृति आदि विषयों की शिक्षा दी जाए।

ड. राष्ट्रीय शिक्षा और मातृभाषा

एनी बेसेन्ट ने मातृभाषा की शिक्षा पर विशेष बल दिया। देश की पाठशालाओं, विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। अंग्रेजी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाए। इसके अतिरिक्त, संस्कृत तथा अरबी भाषा का अध्ययन भी आवश्यक है।

गाँव वालों के विकास के लिए सामान्य शिक्षा के साथ-साथ कृषि एव उद्योग की भी शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

च. धार्मिक शिक्षा

एनी बेसेन्ट थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य के रूप में भारत आई थीं। वह थियोसोफिस्ट थीं। थियोसाफी को एक प्रकार का "ज्ञान-धर्म" माना गया है अर्थात् थियोसाफी वह शिक्षा है, जहॉ धर्म एव ज्ञान का समन्वय है। इनका विश्वास था कि धार्मिक शिक्षा द्वारा व्यक्ति को नैतिक, आध्यात्मिक और कर्तव्यपरायण बनाया जा सकता है।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता एक महती आवश्यकता

मालती मिश्र
शि.वि. श्री दुर्गा जी स्नातक महाविद्यालय
चण्डेश्वर, आज़मगढ़- 276128

भारतीय संस्कृति में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही प्रकृति व पर्यावरण की महत्ता को सर्वोपरि माना गया है। परन्तु आधुनिक युग में मनुष्यों ने स्वार्थवश वनों की अंधाधुन्ध कटाई करके पर्यावरण व प्रकृति को नुकसान पहुँचाया है। आज की सबसे गंभीर समस्या प्रदूषित पर्यावरण है। यह न केवल भारत बल्कि विश्व के अन्य देशों के समक्ष भी गभीर समस्या के रूप में उपस्थित है। पर्यावरण को स्वच्छ, हरा भरा व प्रदूषणमुक्त बनाने हेतु समय-समय पर सरकार द्वारा कई परियोजनाओं का भी गठन किया जाता है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से लेखिका ने प्रदूषित पर्यावरण की समस्या के कारणों पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा को ही पर्यावरण को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन माना है। पर्यावरण सुरक्षा, प्रदूषण पर अंकुश, पशु-पक्षियों का सरक्षण, ओज़ोन परत की सुरक्षा आदि को तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जबकि शिक्षा और जनसम्पर्क व जनसचार के सभी माध्यमों द्वारा इस ओर जन जागरण का कार्यक्रम विश्वव्यापी स्तर पर प्रभावी किया जाए ताकि यह सैद्धांतिक स्तर से निकलकर आचरण स्तर पर व्यवहारिक रूप में प्रकट हो।

ऐसा कहा जाता है कि बहुत पहले राजा पृथु ने इस धरित्री रूपी गौ का दोहन करके इसे धन-धान्य से समृद्ध कर दिया था। राजा पृथु के नाम पर ही इस धरती का नाम पृथ्वी पडा है। पृथु और पृथ्वी की कहानी बड़ी रहस्यमय है। उन्होंने जहॉ पृथ्वी से धन-धान्य, वनस्पति, खनिज आदि विविध सामग्री प्राप्त की, वहीं उसको माँ मानकर उसका पोषण भी किया।

किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ हमारा व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि हमारी उसके प्रति धारणा कैसी है ? भारतीय सस्कृति में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही प्रकृति और उसके द्वारा सृजित पर्यावरण के पोषक स्वरूप की उपासना की गई है। धरती को यहॉ माता माना गया है। नदियों को देवता स्वरूप मानकर उनकी यहॉ उपासना की गई है। ऋग्वेद मे विपाश और शुतुद्रि नदियों को दो श्वेत गौओं के रूप में स्वीकार किया गया है, जो किनारों रूपी बछडों का पोषण करती हुई अपने घर की ओर अग्रसर होती हैं। हमारी सदैव से यही कामना रही है कि प्रकृति एव पर्यावरण हमारे अनुकूल रहें। ऋग्वेद में कामना की गई है . "गायें बहुत दूध देने वाली हों, पृथ्वी विविध सम्पदाओ से परिपूर्ण हो, बादल समय पर वर्षा करे और सभी लोगों के मन को आनन्दित करने वाली हवाएं बहे।"

पर्यावरण के प्रति जिस समुदाय का ऐसा लगाव हो, जो पृथ्वी को माता और आकाश को पिता के रूप में देखता हो, जो अनल एवं अनिल में अपने आराध्य देवताओ के कल्याणकारी स्वरूपों को ढूढ़ता हो, जिसने जल के स्त्रोतों को पयस्विनी के रूप में देखा हो, वह पर्यावरण को लूट नहीं सकता। वह पर्यावरण को गौ रूप में दुह सकता है, उससे अपनी सुख-समृद्धि बढ़ा सकता है लेकिन उसकी हत्या नहीं कर सकता।

परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि पर्यावरण के पोषक स्वरूप को आज हम भूल गए है। हमारी शिक्षा पर्यावरण के अध्ययन की बात तो करती है किन्तु हमारे मानव को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील नहीं बनाती है। प्रकृति और पर्यावरण के परिरक्षण की हमारी कोई मनोवृत्ति भी नहीं है। आज हम प्रकृति के उपासक नहीं, उसकी सम्पदाओं के उपभोक्ता बन गए हैं। हमारे सभी क्रिया-कलाप अर्थतन्त्र के चारों ओर घूमते हैं। धन के सिवाय हम सब कुछ भूल चुके हैं। हम सारे के सारे वनों को काटकर अपने घरों को धन से भर देना चाहते हैं। हम खानों से सभी खनिज एक ही साथ निकाल लेना चाहते हैं। हमारी चले तो हम सारा का सारा जल अभी पी लें और इस धरती की सारी उर्वरा शक्ति को चाट जाएं। हमारे लोभ

की कोई सीमा नहीं रही है। हमने प्रकृति रूपी गौ का दोहन इस सीमा तक कर लिया है कि उसके स्तनों से अब दूध के स्थान पर रक्त की धार नि:सृत होने लगी है और हम इतने मदमस्त हो गए हैं कि उस एक धार को अमृत समझने लगे है। खून हमारे मुँह लग गया है।

प्रकृति के प्रति हमारे वैमनस्य से उत्पन्न कुछ समस्याओं की चर्चा करना यहाँ उचित होगा। ये हैं .

1 संसाधनों की समाप्ति

यह सर्वविदित है कि हमारी जनसंख्या बडी तेजी से बढ़ रही है। ऐसा अनुमान है कि सन् 2000 ई. तक विश्व की जनसख्या लगभग 7 खरब हो जाएगी। इस बेतहाशा बढती जनसंख्या की मॉग को पूरा करने में हम संभवत: सक्षम नहीं हो पाएगे, यदि जनसख्या पर हम नियंत्रण स्थापित करने मे सफल नहीं होते हैं। बढ़ती आबादी के कारण जगल कटते जा रहे हैं, बस्तियॉ बसती जा रही है। कृषि योग्य भूमि की कमी हो रही है। चूँकि प्राकृतिक ससाधन सीमित है अतः उनके दुरूपयोग की यही स्थिति रही तो वे शीघ्र ही समाप्त हो जाएगे। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अगले 20 वर्षों में संसार भर की खेतिहर भूमि का लगभग एक तिहाई भाग नष्ट हो जाएगा। इसके अलावा जगलों की कटाई जिस तेज गति से हो रही है इसके फलस्वरूप इस सदी के अन्त तक उत्पादक वन आधे नष्ट हो जाएंगे।

2. जगलों का समाप्त होना

रूप और सौन्दर्य के प्रतीक जंगलों का अस्तित्व आज खतरे में है। घने छायादार वृक्ष हवा में घूमती और पेड़ों से गलबहियां करती हुई लताएं, चौकडी भरते हुए हरिन और मदमस्त चाल से चलते हुए हाथी सब मिलकर जंगलों को एक व्यक्तित्व देते हैं– अल्हड़ निराला और मदमस्त व्यक्तित्व। जगल का जब जी चाहा किसी झील के निर्मल पानी में अपने रूप को निहार लिया, जब मन में आया तो हवा के झूले में बिठाकर अपनी सुगन्ध को चारों ओर फैला दिया और यदि अतिथि सत्कार की इच्छा हुई तो कंदमूल फल का भोग सामने रख दिया। जंगल अनुशासन को कभी भी भंग नहीं करता। हाँ, सभ्य कहे जाने वाले मनुष्य ने उसे अवश्य भग किया है। जब तक यह अनुशासन बना हुआ था, वनो की सस्कृति भी जीवित थी। परन्तु जब मनुष्य की लिप्सा जागी तो उसका कोई अन्त नहीं रहा। उसके जीभ के स्वाद ने सैकड़ो पशुओ की बलि ले ली। उसका मन किसी के सींग मे, किसी के दांतों में और किसी की खाल मे रमता गया और उधर गैंडों, हाथियों, गिलहरियों, खरगोशों और लोमड़ियों के वंश क्षीण होते गए। कई प्रजातियॉ तो संसार से लुप्त हो गई। कुल्हाड़ी के सत्य ने पेडों को उजाड दिया और गोली के सत्य ने सैकड़ों निरीह प्राणियों की जान ले ली। लिप्सा बढ़ती गई, जंगल कटते गए उसके सीने को चीरती हुई सड़के बनी, बस्तियॉ खड़ी हुई और कारखाने बनते चले गए। पशु–पक्षी आखिर कहॉ जाए। न नगर में सुरक्षा थी और न जंगल मे। जंगल के जलाशय भी प्रदूषित हो गए। प्रकृति संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय सघ ने रैड डाटा पुस्तक में विश्व के सकटग्रस्त जन्तुओं की सूची दी है जिसके अनुसार 400 पक्षियों, 305 स्तनधारी जन्तुओं, 193 प्रकार की मछलियो के लुप्त होने का डर है।

3 मौसमी परिवर्तन

वातावरण मे कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा बढ रही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा इसी प्रकार बढती रही तो अगले 30-40 वर्षो मे धरती के ताप में 5 डिग्री से ग्रे तक की अनावश्यक वृद्धि हो जाएगी। फलस्वरूप शीतोष्ण क्षेत्र रेगिस्तान हो सकते हैं। ध्रुवों की बर्फ पिघल सकती है जिससे जल प्लावन की संभावना हो सकती है अर्थात् सागरों का तल ऊँचा हो जाएगा। फलस्वरूप ससार के कुछ नगर जलमग्न हो सकते हैं।

4 धरती के रक्षा कवच का नाश

हमारे वातावरण मे कुछ ऊँचाई पर ओजोन की एक परत है, जो सूर्य की पराबैंगनी किरणो से हमारी रक्षा करती है। ये घातक किरणें उस परत में अवशोषित हो जाती हैं और दोषमुक्त धूप हमें प्राप्त होती है। यदि सुरक्षा आवरण न होता

तो तमाम जीवधारी धूप ताम्रता और त्वचा कैंसर से पीड़ित हो जाते। अभी पता चला है कि बहुत से उद्योगों से मुक्त होने वाले रसायन खासकर क्लोरोकार्बन, ओज़ोन पट्टी में पहुँचकर रसायनिक प्रक्रिया से उसका क्षय करते हैं। ऐसा अनुमान है कि अगले 40 वर्षों में धरती की ओजोन पट्टी में कम से कम 24 से 30 प्रतिशत की क्षति हो सकती है जो त्वचा कैंसर के रूप में मानव तथा पशुओं को क्षति पहुँचा सकती है तथा इसके प्रभाव से वायुमंडल में परिवर्तन हो सकता है तथा मौसम भी प्रभावित हो सकता है।

त्राण का मार्ग है-शिक्षा

पर्यावरण के प्रति मनुष्य का मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य कठिन है किन्तु असभव नहीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी कहा गया है कि पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने की बहुत जरूरत है और यह जागरूकता बच्चों से लेकर समाज के सभी आयु वर्गों और क्षेत्रों में फैलनी चाहिए। पर्यावरण के प्रति जागरूकता विद्यालयों और कालेजों की शिक्षा होनी चाहिए। इसे शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में समाहित करना चाहिए।

शिक्षा के माध्यम से अब हमें पर्यावरण का अध्ययन मात्र ही नहीं करना है बल्कि सभी को विभिन्न स्तरों में पर्यावरण की रक्षा के लिए कृत सकल्प करना है। इस हेतु औपचारिक शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से उच्चतम स्तर तक पर्यावरण के रक्षा की बात पर्यावरण अध्ययन विषय के अन्तर्गत रखी जानी चाहिए। अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी इससे सबधित विषय-वस्तु पर बल दिया जाना चाहिए। यही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत सभी मनुष्यों तक साहित्य, रेडियो, टेलीविज़न और प्रचार-प्रसार के अन्य साधनों के माध्यम से यह सदेश पहुँचाया जाना है कि उन्हें अपने पर्यावरण के परिरक्षण के लिए सर्वतोभावेन प्रयत्नशील ही नहीं, अपितु कार्यरत होना है। केवल सैद्धान्तिक स्तर पर ही नहीं आचरण के स्तर पर भी इस क्रियाशीलता को उतारा जाना है।

सामान्य एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की भाषा अधिगम संबंधी समस्याएँ

सुजाता साहा
शोध छात्रा
शिक्षा संकाय (कमच्छा), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी 221010

भाषा जहाँ सम्प्रेषण का एक प्रमुख माध्यम है वहीं यह मानव जाति की सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा का भी एक प्रमुख आधार है। यह एक अत्यन्त चिन्ता का विषय है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी जहाँ शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही है विद्यार्थियों के लेखन में अनेक व्याकरण एवं रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ पाई जाती हैं। यह स्थिति अनुसूचित जातियों के बच्चों में कदाचित और भी शोचनीय है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन को देखा जा सकता है जिसका मुख्य उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा रचना सम्बन्धी उपलब्धि तथा भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित उनकी समस्याओं का जातिगत चर के आधार पर तुलना करना है। अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि सामान्य जाति के विद्यार्थियों की भाषागत उपलब्धि उल्लेखनीय नहीं है अपितु यह केवल औसत स्तरीय ही है। परन्तु अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों ने इस दिशा में औसत से भी कम उपलब्धि प्रदर्शित की।

"आठवीं कक्षा समाप्त करते-करते छात्रों को भाषा का शुद्ध रूप लिखना आ जाना चाहिए, जिससे उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में उनको मुहावरेदार और प्रांजल भाषा सिखाई जा सके तथा साहित्य के अध्ययन एव रचना की ओर उन्हें उन्मुख किया जा सके" (शुक्ल, रमापति "वर्तनी का महत्व")।

भाषा सम्प्रेषण का एक प्रमुख माध्यम तथा सभ्यता, सस्कृति और शिक्षा का एक प्रमुख आधार है। व्यक्तित्व के निर्माण तथा चिन्तन जैसी संज्ञानात्मक प्रक्रिया के प्रकाशन मे भी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। न सिर्फ गणितीय कौशल, भाषा-कौशल से सहसंबंधित है, अपितु सामान्य शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता भी भाषागत उपलब्धि की गुणवत्ता पर निर्भर है।

उत्तर प्रदेश में राष्ट्र भाषा हिन्दी को मातृभाषा का भी स्थान प्राप्त है। राज्य के सभी प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य विषय के रूप में होता है। अधिकांश विद्यालयों में यह शिक्षा के माध्यम के रूप मे भी स्वीकृत है। छात्रों के विचार स्पष्ट और सुबोध हों, आत्माभिव्यक्ति सुन्दर और स्वाभाविक हो, ज्ञान गहनतम एव नवीनतम हो, उनके आचार-विचार सस्कृति के अनुकूल हों तथा उनकी रचना शक्ति विकसित हो—इन सबके लिए मातृभाषा का समुचित शिक्षण अनिवार्य हो जाता है।

भारत में जाति व्यवस्था, सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार है। सामाजिक संगठन की रक्षा करने के साधन के रूप में विकसित जाति व्यवस्था, आज समाज की ही उन्नति में बाधक बन रही है। अनुसूचित जातियाँ, जाति सोपान के अधोतल पर हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उन्हें व्यक्तित्व विकास के समुचित अवसरों तथा वाछित सुख-सुविधाओं से वंचित रखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुसूचित जातियों के अधिकार-संरक्षण को संवैधानिक आवश्यकता के साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व भी माना गया है, किन्तु विभिन्न प्रावधानों के बावजूद वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है। समाज का एक बड़ा अश होते हुए भी ये जातियां शैक्षिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से पिछडी हुई हैं। विभिन्न अनुसूचित जातियों और एक ही अनुसूचित जाति के सदस्यों के मध्य अत्याधिक असमानता है।

निम्न जाति एव वर्ग के बच्चे अधिकांशतः हीनतर शैक्षिक उपलब्धि प्रदर्शित करते पाए गए हैं। इसकी पृष्ठभूमि में

निम्नतर सामाजिक, आर्थिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ ही भाषा का दोषपूर्ण अधिगम भी एक कारण हो सकता है। भाषा ही वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम है, जिसके द्वारा शिक्षक छात्रों तक सूचनाएँ सम्प्रेषित करता है। छात्र भी अपने अर्जित ज्ञान की अभिव्यक्ति भाषा के बिना नहीं कर सकते। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में शिक्षा का माध्यम होने के बावजूद विद्यार्थियों के हिन्दी लेखन में अनेक व्याकरण एव रचना सम्बन्धी त्रुटियॉ पाई जाती हैं। प्राथमिक स्तर पर ही इन त्रुटियों का निदान एव निराकरण आवश्यक है। कक्षा सात, माध्यमिक शिक्षा का प्रथम चरण है। यदि इसी स्तर पर विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों के विशिष्ट क्षेत्रों की पहचान कर ली जाए, तो उन कठिनाइयों को शिक्षण विधि एवं रणनीति में वाछित सुधार लाकर दूर किया जा सकता है। व्याकरण की साधारण अशुद्धियों के सशोधन में ही अधिकाश समय चले जाने के कारण शिक्षकगण, छात्रों को भाषा की विविध शैलियों का परिचय नहीं दे पाते और न भाषा का प्राजल और परिष्कृत रूप ही सिखा पाते हैं। भावों के सस्कार तथा कल्पना के समुचित विकास का भी अवसर नहीं मिल पाता है। इस सदर्भ में विद्यालय में दिया जा रहा भाषा-शिक्षण कितना प्रभावशाली है, इसका परीक्षण करना प्रासगिक हो जाता है।

शिक्षा के समान अवसर की पृष्ठभूमि में युगों से पद दलित अनुसूचित जाति की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के विषय में जानना आवश्यक हो गया है, ताकि उन्हें सामान्य जाति के समकक्ष लाया जा सके। भाषा शिक्षा का आधार है और इस क्षेत्र में दोनों जातियों के छात्र-छात्राओ के बीच क्या तुलनात्मक अन्तर है, यह उचित समय पर ज्ञात करना अत्यावश्यक है, ताकि वे भाषा-शिक्षण का अधिकतम लाभ प्राप्त कर विविध क्षेत्रों में अपनी क्षमता का समुचित विकास कर सकें, अन्यथा बीच में ही निरन्तर असफलताओं से निराश होकर स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढती रहेगी और उनमें शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का अभाव रहेगा। अनुसूचित जाति हमारे समाज का अभिन्न अग हैं। इस अग की उपयोगिता और प्रतिष्ठा में वृद्धि हो, इसके लिए जरूरी है कि वे निर्बाध शिक्षा प्राप्त करें। अत. उन्हें शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त की जा रही भाषा का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है।

दास एव अन्य (1970), दवे एव दवे (1971), मेहता एवं मोहित (1973), देसाई (1974), भार्गव (1974), मदान (1974), दास गुप्ता (1975), साहू (1977), अग्निहोत्री (1979), नायर (1980), सूर्यकान्ति (1982), कुमार (1983), जोशी (1984), धागर (1985) तथा देशपाण्डे (1985) ने अपने शोधकार्यों में इस तथ्य की पुष्टि की कि निम्न जाति, वर्ग एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के बच्चे भाषागत दृष्टि से पिछडे होते है। जबकि राव (1974) एव सरसम्मा (1984) ने भाषा पर वर्गगत एवं ग्रामीण/शहरी पृष्ठभूमि के आधार पर सार्थक अन्तर नही पाया है।

डेकोन्ड्रेल (1921), बुहलर (1931), टेम्पलिन (1957), डॉकरेल (1959), कॉल्विन (1971) तथा रेबेका (1976) ने निम्न वर्ग की भाषा मे अनेक तुलनात्मक कमियों की पुष्टि की। दूसरी ओर, लोबन (1963) तथा वेलिगटन एवं वेलिंगटन (1965) ने सामाजिक-आर्थिक दशा के आधार पर सार्थक अन्तर नहीं देखा।

हिन्दी की जन्मभूमि एव विकास स्थली में प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर पर दिया जा रहा हिन्दी का शिक्षण कितना प्रभावशाली है, इसका ज्ञान वाछित सुधार लाने हेतु अत्यन्त प्रासंगिक है, क्योंकि बिना निदान के उपचार सभव नहीं है। लिखितभाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित सामान्य एव अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की तुलनात्मक समस्याओं तथा वर्तमान समय में प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त दोनों जातियों की हिन्दी भाषा रचना सम्बन्धी उपलब्धि के स्तर में विद्यमान तुलनात्मक अन्तर पर भी पर्याप्त अध्ययन नहीं हुए हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप सामान्य जाति एव अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा रचना सम्बन्धी उपलब्धि तथा भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित उनकी समस्याओं का जातिगत चर के आधार पर तुलना करना है।

परिकल्पनाएँ

उपर्युक्त उद्देश्य के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओ की रचना की गई :

1 सामान्य जाति के विद्यार्थियो तथा अनुसूचित जाति के विद्यार्थियो की कुल भाषागत उपलब्धि मे कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा।

2. हिन्दी भाषा रचना के विभिन्न क्षेत्रों मे सामान्य जाति के विद्यार्थियो एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियो की उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होगा।

अनुसंधान विधि

इस अध्ययन मे अनुसधान की सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया।

न्यादर्श

वाराणसी नगर में स्थित सभी चार केन्द्रीय विद्यालयों की सातवीं कक्षा (सत्र 1993-94) में अध्ययनरत 600 हिन्दी भाषी विद्यार्थियो को जनसंख्या के रूप मे लिया गया। इन विद्यार्थियो के नामो को उपस्थिति पजिका से प्राप्त कर, यादृच्छिक रूप से सामान्य जाति के विद्यार्थियो की कुल जनसख्या के लगभग 20 प्रतिशत भाग को न्यादर्श के रूप में लिया गया। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की कुल जनसंख्या मे अत्यन्त कम सख्या होने के कारण सभी उपस्थित विद्यार्थियो को अध्ययन मे शामिल कर लिया गया। इस प्रकार सामान्य जाति के 105 तथा अनुसूचित जाति क्रे 58 विद्यार्थियो पर प्रस्तुत अध्ययन सम्पादित किया गया।

दत्त संग्रह हेतु प्रयुक्त उपकरण

विद्यार्थियो की हिन्दी भाषा मे उपलब्धि तथा भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित उनकी समस्याएं ज्ञात करने हेतु विशेषज्ञो के परामर्श से समुचित रीति का अनुपालन करते हुए "हिन्दी भाषा परीक्षण" का निर्माण किया गया। उक्त भाषा परीक्षण केन्द्रीय विद्यालय के कक्षा छह के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखित भाषा रचना के निम्नलिखित विशिष्ट क्षेत्रों पर ही केन्द्रित था– 1 विलोम, 2 वाक्य का रूप परिवर्तन, 3 प्रत्यय, 4 अनेकार्थक शब्द, 5 पर्यायवाची शब्द, 6 मुहावरों का वाक्य प्रयोग, 7 अपठित पद्याश, 8 अपठित गद्याश, 9 निबन्ध और 10 श्रुतिलेख। इन दस क्षेत्रो से सम्बन्धित प्रत्येक पद पर 5 अंक निर्धारित किए गए। इस प्रकार पूर्णाक 50 अंकों का था। विद्यार्थियों की भाषा रचना सम्बन्धी समस्याओं के समुचित ऑकलन हेतु लघु उत्तरीय एवं वर्णनात्मक पदो का निर्माण श्रेयस्कर समझा गया। परीक्षण के प्रथम 9 पदो हेतु निर्धारित समय 50 मिनट था, जबकि श्रुतिलेख के लिए 10 मिनट का समय निर्धारित था।

चयनित न्यादर्श पर उपर्युक्त परीक्षण का प्रशासन किया गया। तत्पश्चात् पूर्वनिर्धारित मानदण्डो के अनुरूप अको की गणना की गई। अंक प्रदान करते समय विराम चिह्नों के सटीक प्रयोग, वर्तनी की शुद्धता तथा हस्तलेख की पठनीयता का ध्यान रखा गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण एवं व्याख्या

अंकन के उपरान्त "टी" परीक्षण की सहायता से प्रदत्तो का विश्लेषण किया गया ताकि हिन्दी भाषा परीक्षण के प्राप्तांको के आधार पर सामान्य जाति एव अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के मध्य अन्तर ज्ञात किया जा सके।

प्राप्त परिणामों की व्याख्या पूर्व निर्मित उद्देश्य एव शून्य परिकल्पनाओ के आलोक में की जा रही है।

परिकल्पना संख्या 1

सामान्य जाति के विद्यार्थियो तथा अनुसूचित जाति के विद्यार्थियो की कुल भाषागत उपलब्धि मे कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा।

तालिका 1

सामान्य एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की भाषागत उपलब्धि का तुलनात्मक विवरण (पूर्णांक 50)

	सामान्य जाति के विद्यार्थी	*अनुसूचित जाति के विद्यार्थी*
मध्यमान प्राप्ताक	27.28	22 38
मानक विचलन	8 41	9 61
संख्या	105	58
"टी" का मूल्य	3 27*	

*0 05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर

तालिका 1 हिन्दी भाषागत उपलब्धि की दृष्टि से सामान्य एव अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर प्रदर्शित करता है। अत· प्रथम शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की गई। पूर्णाक की तुलना में सामान्य जाति के विद्यार्थियों के मध्यमान प्राप्तांकों का प्रतिशत 54. 56, जबकि अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में यही प्रतिशत 44 76 रहा। स्पष्ट है कि सामान्य जाति की उपलब्धि औसत स्तरीय, जबकि अनुसूचित जाति की उपलब्धि औसत से भी निम्न स्तर की है। दोनों जाति के विद्यार्थी परीक्षण का प्राय· अर्द्धांश पूर्ण करने में असमर्थ रहे। यह अत्याधिक चिन्ताजनक स्थिति का सूचक है, जिसके कारणों का निदान एवं उपचार आवश्यक है।

उपर्युक्त परिणाम यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि जाति एवं भाषागत उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध है। 0 05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर यह बताता है कि अनुसूचित जाति के विद्यार्थी भाषागत दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इस परिणाम का अनेक पूर्वोल्लिखित शोध निष्कर्षों से साम्य है। कुमार (1983) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि विभिन्न जातियों की वाचिक, भाषा में अन्तर होता है। इस सम्बन्ध में जाति का प्रभाव (एफ

तालिका 2

भाषा रचना के विभिन्न पक्षों पर सामान्य एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की उपलब्धि का तुलनात्मक विवरण

(प्रत्येक पद हेतु निर्धारित अंक = 5)

क्र स	*भाषा रचना के विभिन्न पक्ष*	*सामान्य जाति के विद्यार्थी (सं. 105)*		*अनुसूचित जाति के विद्यार्थी (सं. 58)*		*'टी' का मूल्य*
		मध्यमान	*मानक विचलन*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	
1	विलोम	3, 8	1, 02	3 22	1 36	3 1*
2.	वाक्य का रूप परिवर्तन	3 25	1. 52	2, 74	1. 66	1, 96
3	प्रत्यय	3, 05	1 33	2, 63	1 33	3 00*
4	अनेकार्थक शब्द	2 97	1 95	2 45	2 06	1 58
5	पर्यायवाची शब्द प्रयोग	2 83	1, 08	2 26	1, 04	3 35*
6	मुहावरों का वाक्य प्रयोग	2, 7	1 28	2, 16	1, 3	2 57*
7	अपठित पद्यांश	2, 14	1 44	1 92	1 31	1 00
8.	अपठित गद्यांश	2, 07	1, 12	1 46	1 19	3, 39*
9	निबन्ध	2, 26	1 35	1 74	1, 37	2 36*
10,	श्रुतिलेख	2, 21	0, 95	1 81	0, 97	2 67*

*0,05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर

अनुपात) 001 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक पाया गया है। ब्राह्मण, कायस्थ तथा क्षत्रिय बच्चों ने सार्थक रूप से बेहतर भाषा सबधी निष्पादन व्यक्त किया। पिछड़े वर्गों के तथा वैश्य जाति के बच्चों का निष्पादन अपेक्षाकृत निम्नतर था लेकिन, अनुसूचित जाति के बच्चों की तुलना में उनकी भाषा सार्थक रूप से श्रेष्ठ पाई गई।

जाति के आधार पर प्राप्त इस अन्तर की पृष्ठभूमि में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की निम्नतर पारिवारिक, आर्थिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि कारणस्वरूप हो सकती है।

परिकल्पना संख्या 2

"हिन्दी भाषा रचना के विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य जाति के विद्यार्थियों एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होगा।"

इस परिकल्पना के परीक्षण हेतु हिन्दी भाषा परीक्षण के पूर्वोक्त 10 पदों पर सामान्य एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के मध्यमान प्राप्तॉकों की पृथक-पृथक गणना की गई। इसके उपरान्त 'टी' परीक्षण द्वारा उन मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की जॉच की गई। प्राप्त परिणामो को तालिका 2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 2 से यह स्पष्ट है कि भाषा परीक्षण के पद सख्या 1, 3, 5, 6, 8, 9 एवं 10 पर विद्यार्थियों की उपलब्धि से सम्बन्धित जातिगत अन्तर 0.05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक है, जबकि पद सख्या 2,4 एवं 7 के संदर्भ में जाति के आधार पर सार्थक अन्तर नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य दोनों जातियों के विद्यार्थियों की भाषागत उपलब्धि के ज्ञान के साथ ही हिन्दी भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों के सन्दर्भ में दोनों जातियों के विद्यार्थियों की तुलनात्मक स्थिति को भी ज्ञात करना था। तालिका 2 के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विलोम, प्रत्यय, पर्यायवाची शब्द, मुहावरों का वाक्य प्रयोग, अपठित गद्यांश, निबन्ध एवं श्रुतिलेख में सामान्य जाति के विद्यार्थियों की उपलब्धि सार्थक रूप से अधिक है। इनमें से प्रथम तीन पद मुख्यतः विद्यार्थी के शब्द भण्डार की समृद्धि के परीक्षण से सम्बन्धित हैं। 'मुहावरों का वाक्य प्रयोग' सम्बन्धी पद अर्थग्रहण क्षमता.एव वाक्य रचना द्वारा मुहावरों का विशिष्ट अर्थ व्यक्त करने की क्षमता का परीक्षण था, जबकि 'निबन्ध' सम्बन्धी पद द्वारा दिए गए विषय पर शुद्ध तथा सुगठित रूप मे विचार प्रस्तुतीकरण की क्षमता की जॉच का प्रयास किया गया। 'अपठित गद्यांश' का आठवॉ पद दिए गए गद्य को पढ़कर समझने की क्षमता की जॉच से सम्बन्धित था। इस पद पर सामान्य जाति के विद्यार्थियों का मध्यमान प्राप्ताक 2.07 था जो इस पद के पूर्णाक (5 अंक) का मात्र 41 40 प्रतिशत है। दूसरी ओर, इसी पद पर अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को मात्र 29 20 प्रतिशत प्राप्ताक प्राप्त हुआ। अन्तिम पद श्रुतिलेख का था, जिसका उद्देश्य विराम चिह्नों के उपयुक्त प्रयोग की क्षमता की जॉच तथा सुनकर उपयुक्त गति से लिखने की क्षमता का परीक्षण करना था। इस पद पर भी दोनों जातियों के विद्यार्थियों का निष्पादन अत्यन्त निम्न था। 'वाक्य का रूप परिवर्तन', 'अनेकार्थक शब्द' तथा 'अपठित पद्याश' सम्बन्धी पदों पर प्राप्त दोनो जातियों के विद्यार्थियो के मध्यमान प्राप्तांकों में अन्तर सयोगवश है।

इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से अनुसूचित जाति के विद्यार्थी शब्द भण्डार, अर्थ ग्रहण तथा अभिव्यक्ति क्षमता की दृष्टि से पिछडे हुए हैं।

कुमार (1983) ने भी अपने अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति के बच्चों का शब्द भण्डार अन्य उच्च जाति के बच्चों की तुलना में निम्नस्तरीय था। इस अध्ययन में सामान्य जाति के बच्चों ने लम्बे एवं जटिल वाक्यों का प्रयोग किया। उन्होंने वाचिक भाषा के विभिन्न अन्य पक्षों, जैसे– बोलने की गति, वार्तालाप में भाग लेने की तत्परता, भाषा पर अधिकार, मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों के सन्दर्भ में भी अनुसूचित जाति को निम्नतर पाया।

मेहता एवं मोहित (1973), देसाई (1974), ड्यूश (1964), व्हाइटमैन तथा ड्यूश (1964), लेसर तथा अन्य (1965), स्टोडोल्स्की (1965), कॉल्विन (1971), हेज़ेल फ्रासिस (1974) के भी अध्ययनों में निम्न वर्ग के बच्चों का शब्द भण्डार कम होने की पुष्टि हुई है।

अतएव पूर्व निर्मित द्वितीय शून्य परिकल्पना भी अस्वीकृत की गई।

निष्कर्ष

अध्ययनों के परिणाम यह स्पष्ट इंगित करते हैं कि यद्यपि सामान्य जाति के विद्यार्थियों की भी भाषागत उपलब्धि उल्लेखनीय नहीं, अपितु औसत स्तरीय ही है, फिर भी वे अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठतर हैं। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों ने औसत से भी कम उपलब्धि प्रदर्शित की।

दोनों जाति के विद्यार्थियों की भाषा अधिगम सम्बन्धी मुख्य समस्याएँ— अपठित पद्यांश एवं अपठित गद्यांश (पढ़कर समझने की योग्यता), निबध (दिए गए विषय पर शुद्ध एव सुगठित रूप में विचार प्रस्तुतीकरण की क्षमता) एवं श्रुतिलेख (विराम चिह्नों के उपयुक्त प्रयोग एव सुनकर उपयुक्त गति से लिखने की क्षमता) से सबंधित पाई गई। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की उपलब्धि से यह प्रकट हुआ कि उन्हें पर्यायवाची शब्द एवं मुहावरों से वाक्य रचना में भी कठिनाई है।

इस अध्ययन में सामान्य जाति के विद्यार्थियों की भाषागत उपलब्धि सतोषप्रद नहीं पाई गई। हिन्दी भाषी क्षेत्र के हिन्दी भाषी विद्यार्थियों की उपलब्धि का निम्न होना आश्चर्यजनक और चिन्ताजनक है। परीक्षण प्रशासन के दौरान यह अनुभूत हुआ कि विद्यार्थियों में अपनी राष्ट्रभाषा एवं मातृभाषा के प्रति गौरव भाव, रागात्मक सम्बन्ध एव अभिरुचि की कमी है। अतएव हिन्दी शिक्षकों द्वारा इस दिशा में आधुनिक शिक्षण विधियों, समुचित अभिप्रेरणा, उपयुक्त श्रव्य-दृश्य सामग्रियों एवं पाठ्यक्रमेतर पुस्तकों का प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होगा।

निम्न सामाजिक, आर्थिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के भाषा सीखने के प्रयत्नों को विशेष रूप से पुनर्बलित किया जाना चाहिए। इससे उन्हें सामान्य जाति के विद्यार्थियों के समकक्ष आ सकने में सहायता मिलेगी।

सन्दर्भ

1 एम.बी. बुच; 1978-83, **थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन**, नई दिल्ली . पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट, एन सी.ई.आर.टी., वोल्यूम प्रथम।

2 एम.बी बुच; 1983-88, **फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन**, नई दिल्ली · पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट, एन.सी.ई.आर.टी., वोल्यूम प्रथम।

3 पी.एन. दवे एव जे पी. दवे 1971, **सोशियो–इकॉनॉमिक इन्वायरॉन्मेन्ट रेज़ रिलेटेड टू द नॉन वर्बल इन्टेलिजेन्स ऑफ रैंक्ड एण्ड फेल्ड स्टूडेन्ट्स**, मैसूर : आर.सी.ई.।

4 एम. ड्यूश; 1965, "द रोल ऑफ कॉगनीशन", **अमेरिकन जर्नल ऑफ ऑर्थो-साइकियाट्री**, 35।

5 एफ हेजेल; 1974, "सोशल बैकग्राउण्ड, स्पीच एण्ड लर्निंग टू रीड", **द ब्रिटिश जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकॉलोजी**, 44, 3।

6 दिलीप कुमार; 1983, **कास्ट एण्ड क्लास रेज़ वेरियेबल्स एफेक्टिंग स्पोकेन लैंग्वेज इन प्राइमरी क्लास चिल्ड्रेन**, पी.एच.डी शोध प्रबन्ध,बी.एच.यू.।

7. डब्ल्यू. लोबन, 1968, टीचिंग चिल्ड्रेन टू स्पीक सोशल क्लास डायलेक्टॅस, **एलीमेन्टरी इंग्लिश**, 5।

8. एम टेम्पलिन 1958, द रिलेशन ऑफ स्पीच एण्ड लैंग्वेज टू इंटेलिजेन्स एण्ड सोशियोइकॉनॉमिक स्टेटस, वोल्टा रिव्यू, 60।

9 पी. वेलिंगटन एव जे. वेलिंगटन, 1965, माइकेल पर्लाइमर एण्ड बायरन, ग्रोस बैंक . एचीवमेन्ट मोटिवेशन, एकडेमिक एप्टीट्यूड एण्ड कॉलेज ग्रेड्स, एजुकेशनल एण्ड व साइकॉलॉजिकल मेजरमेन्ट, वोल्यूम 19, न. 4।

10 वासुदेव पांडे नदन; 1990, आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, पटना . भारती भवन।

11 सावित्री सिह, 1993, हिन्दी शिक्षण, मेरठ ' लायल बुक डिपो।

ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा समस्या और सम्भावित समाधान

कृष्णा सिंह
प्रवक्ता बी.एड. विभाग
श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आज़मगढ़

किसी भी देश तथा समाज की प्रगति में वहाँ की महिलाओं की, भी प्रमुख भूमिका होती है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बालिका शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। ग्रामीण अंचलों में बालिका शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित है। इसका कारण ग्रामीणों का अधविश्वास, कुरीतियों तथा प्राचीन रूढ़ियों में जकड़े हुए होना माना जा सकता है। बालिका शिक्षा के प्रसार के लिए सरकार की ओर से कई कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा समस्या के विभिन्न कारणों के विषय में जानकारी देते हुए बालिका शिक्षा की समस्या के सम्भावित समाधान प्रस्तुत किए हैं।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति सम्मानजनक रही है। उसे सदैव ही शक्ति, सम्पत्ति एव ज्ञान का प्रतीक स्वीकार करके, दुर्गा,लक्ष्मी एवं सरस्वती के रूप में पूजा जाता रहा है। हिन्दू मान्यता के अनुसार नारी को अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीयों ने स्त्री शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया किन्तु यह उच्च वर्ग तक ही सीमित है। शहरी क्षेत्र में तो बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है परन्तु खेद है कि ग्रामीण अंचलों में बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता। उनकी समस्याओं और उसके समाधान पर ध्यान देना नितात आवश्यक है ताकि समाज में न केवल नारी की स्थिति सम्मानजनक हो अपितु वे देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान भी दे सके।

बालिकाओं की शिक्षा समस्या

1. सामाजिक कुप्रथाएं

ग्रामीण अंचल में नाना प्रकार की कुप्रथाए जैसे– पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज प्रथा, जाति प्रथा, वेश्या वृत्ति, बहुपत्नी विवाह, दासी प्रथा, विधवा विवाह निषेध आदि का जाल फैला हुआ है जिसके कारण बालिकाओं का जीवन चारदीवारी तक सीमित होकर रह जाता है और इस प्रकार अधिकाश बालिकाए शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

2. अनुचित दृष्टिकोण

देश में विशेष रूप से हिन्दू–मुस्लिम समाज में बालिकाओं का पढ़ना-लिखना बुरा माना जाता है। भारतीय समाज के वयोवृद्ध लोग बालिकाओं की शिक्षा व्यर्थ मानते हैं। उनका यह मानना है कि पढ़ने का एक मात्र अर्थ नौकरी पाना है। दूसरी तरफ कुछ लोगों का मानना है कि बालिकाओं की शिक्षा का तात्पर्य उनका चारित्रिक और नैतिक पतन है। इस प्रकार का अनुचित दृष्टिकोण बालिकाओं की शिक्षा में बाधक है।

3. निर्धनता

अधिकांश भारतीय जनता निर्धन है, निर्धनता के कारण लोग उचित रूप से अपने परिवार का भरण–पोषण नहीं कर पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों मे छोटी आयु से ही बच्चों को जीविकोपार्जन में सहायता देनी पड़ती है, जिसके कारण उन्हें समय नहीं मिल पाता है। इस प्रकार धनाभाव के कारण अधिकांश बालिकाएं शिक्षा से वचित रह जाती हैं।

4. बालिकाओं का निम्न स्तर

भारतीय समाज मे बालकों की अपेक्षा बालिकाओं को हीनदृष्टि से देखा जाता है, उनका सम्मान बालकों से कम होता है। अधिकाश परिवार की स्त्रिया सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पीड़ित हैं। इसके परिणामस्वरूप बालिकाओं को पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता है।

5 बालिका विद्यालयों का अभाव

देश के ग्रामीण अंचल मे बालिका विद्यालयों का अभाव है। प्राथमिक स्तर पर तो उन्हें शिक्षा का अवसर प्राप्त हो जाता है परन्तु माध्यमिक स्तर पर आवश्यक विद्यालयों के अभाव में बालिकाओं को पढने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता है। बालिकाओं के लिए माध्यमिक विद्यालय आवश्यकता से कम हैं फलत· बालिकाए शिक्षा से वचित रह जाती हैं।

6 ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़ापन एव अशिक्षा

ग्रामीण अचल के पिछडेपन और अशिक्षा के कारण बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है। आधुनिक युग में भी कुछ ग्रामीण अंधविश्वास और अज्ञानता के अधकार में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में वे बालिकाओं की शिक्षा के प्रति रुचि ही नहीं ले पाते हैं।

समाधान

1. सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका विद्यालयों की स्थापना

सरकार को चाहिए कि बालकों की शिक्षा के समान ही बालिकाओं की शिक्षा पर भी धन व्यय करें। नये बालिका विद्यालयो की स्थापना करके उसमें प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापिकाओं की नियुक्ति करें ताकि वह ग्रामीण अंचलों की कुरीतियों, रहन-सहन,सुविधाओं, श्रम के महत्व आदि को ग्रामीण स्त्रियों और बालिकाओं को बता सके।

2. उत्पादक कार्यों की शिक्षा

सरकार के समाज कल्याण विभाग द्वारा ग्रामीण अंचलों की महिलाओं को इस बात से परिचित कराना चाहिए कि शिक्षा केवल नौकरी तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसका उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में हो सकता है, जैसे– घरेलू जीवन में उपयोग, आर्थिक उपलब्धि बढ़ाने में उपयोग, बच्चों की शिक्षा में उपयोग आदि। ग्रामीण बालिकाओं को व्यवसायपरक शिक्षा दी जाए ताकि वे घर बैठे ही धनोपार्जन कर सकें। ऐसी शिक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवसाय से सबन्धित कौशलों को सम्मिलित किया जा सकता है ·

1 बुक बाईडिंग
2. लिफाफे बनाना
3 अचार मुरब्बे बनाना
4. टोकरी बनाना
5 विभिन्न प्रकार के पकवान बनाना
6 प्रशिक्षण देना
7 कटिंग करना
8. ब्यूटीशियन कोर्स, जैसे– बालों की कटाई, ड्रेसिग, ब्लीचिंग, वेक्सिंग आदि।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए निम्न प्रकार की शिक्षा उपयोगी होगी :

व्यायाम,आसन, विभिन्न उपयोगी एवं सुपाच्य भोजन, विभिन्न मौसम के अनुसार भोजन, कपड़ों की व्यवस्था, उपयोगी दवाओं के विषय में बताना आदि।

इसी संदर्भ में हस्त शिल्प से संबन्धित कुछ सामान्य कुशलताएँ भी आती हैं, जैसे–

कताई, बुनाई, सिलाई, मिट्टी के खिलौने बनाना, चर्म कार्य, लकड़ी का काम, गृहकला, चित्रकला और पेन्टिंग आदि।

3. ग्रामीण बालिकाओं को शारीरिक श्रम के महत्व से परिचित कराना

ग्रामीण अचल में ऐसी शिक्षा व्यवस्था को बढावा दिया जाए जो श्रम पर आधारित हो। उन्हें इस बात से परिचित कराना चाहिए कि बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम वाले व्यक्ति दोनों समान हैं। शारीरिक श्रम करने वाले का शरीर ही स्वस्थ नहीं रहता बल्कि मन भी स्वस्थ रहता है। इस तरह ग्रामीण अचल में एक क्रान्ति लाई जा सकती है।

4. ग्रामीण अंचल को राष्ट्रीय विकास की धारा से जोड़ना

बालिकाओं को सामाजिक तथा राष्ट्रीय दायित्व का बोध कराके उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने और देश का एक सफल नागरिक बनने में सहायता प्रदान करना। उनमें सामाजिक चेतना जागृत करना जिससे वे अपने महत्व को समझते हुए दहेज, बाल-विवाह आदि रूढियों को समाप्त करके, अपने स्थायित्व को प्रदर्शित करने की स्थिति मे आ सकें। साथ ही देश व समाज मे समान रूप से अपनी विकास कार्यों में भागीदारी को स्थापित कर सकने में समर्थ हो सकें।

बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन

कमलेश कुमार चौधरी
प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

प्राथमिक शिक्षा को प्रभावी व सशक्त बनाने के लिए विद्यालयों में योग्य अध्यापक तथा पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराना नितान्त आवश्यक है। इन सुविधाओं के अन्तर्गत कक्षाकक्ष, शिक्षण सामग्री, जैसे– श्यामपट्ट, चॉक, डस्टर, फर्नीचर के साथ-साथ सीखने के लिए उचित वातावरण, पीने का पानी, स्वच्छता सम्बन्धी सामग्री, स्वास्थ्य सेवाओं इत्यादि का होना भी अति आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 के तहत प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारने हेतु आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना लागू करने के उपरान्त भी प्राथमिक शिक्षा के गुणात्मक सुधार की दिशा में पर्याप्त अग्रगति नहीं हो पाई है। प्रस्तुत अध्ययन द्वारा लेखक ने बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन कर यह पाया कि शिक्षण सामग्री तथा अन्य भौतिक सुविधाओं का विद्यालयों में अभाव है। इन अभावों को दूर करने के लिए लेखक ने अत में कुछ उपयोगी सुझाव भी दिए हैं।

किसी भी राष्ट्र की महत्ता उस राष्ट्र के नागरिकों के गुणों पर आधारित होती है। नागरिकों के गुण मुख्यरूप से शिक्षा के गुण पर आधारित होते हैं। शिक्षा अच्छी प्रकार की तभी हो सकती है, जब विद्यालयों में योग्य अध्यापकों के साथ-साथ पर्याप्त सुविधाए भी उपलब्ध हों। विद्यालयों में पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, चारित्रिक एवं नैतिक विकास हो सकेगा और वे समाज के सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे, इसमें सन्देह है। इसकी पुष्टि दास (1974) के प्राथमिक शिक्षा पर विद्यालयी परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन के निष्कर्ष से होती है। इस अध्ययन मे पाया गया कि विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का बालक की कार्य-कुशलता एव उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पडता है।

बालक के व्यक्तित्व के विकास में बाल्यावस्था का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस अवस्था में विकास हेतु यदि बालक को उचित वातावरण मिल जाता है, तो वह समाज का सुयोग्य नागरिक बनकर समाज के विकास में योगदान देता है। बाल्यावस्था में उचित वातावरण के अभाव में बालक का सर्वांगीण विकास न हो पाने के कारण, वह समाज के विकास में कम योगदान कर पाता है अथवा गलत रास्तों पर चलकर समाज के लिए चुनौती बन जाता है। वर्तमान समय में बाल्यावस्था में बालक के विकास का दायित्व मुख्यरूप से प्राथमिक विद्यालयों पर ही है। ये प्राथमिक विद्यालय अपने दायित्वों का निर्वाह अच्छी तरह से तभी कर सकते हैं, जब ये योग्य अध्यापकों के साथ-साथ आवश्यक सुविधाओं से युक्त हों। प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा की आधारशिला भी है। इस अवस्था में बालक सूक्ष्म की तुलना में स्थूल वस्तुओं द्वारा अधिक सीखते हैं। यहीं से उनके भविष्य का निर्धारण भी हो जाता है। अत यह और भी आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक शिक्षा को सशक्त बनाने हेतु प्राथमिक विद्यालयों को पर्याप्त सुविधाओं से युक्त बनाया जाए, जिससे ये विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान कर सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में प्राथमिक विद्यालयों की दशा में सुधार हेतु 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' योजना को प्रारम्भ किए जाने का सुझाव दिया गया। शत-प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता से यह योजना लागू हो चुकी है।

वर्ष 1995-96 के लिए प्राथमिक शिक्षा हेतु 651.04 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया, जिसमें 279.00 करोड़ (43 प्रतिशत) की राशि ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना हेतु रखी गई है। परन्तु इस योजना के विगत वर्षों में क्रियान्वयन के पश्चात् भी ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि प्राथमिक विद्यालयो में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। वर्तमान समय में बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति क्या है, इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु ही इस अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत हुई। उपलब्ध सम्बन्धित साहित्य पर दृष्टिपात करने पर पाया गया कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण एव प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एव अवरोधन की समस्या पर अनेक अध्ययन हुए हैं, किन्तु प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की जानकारी का प्रयास बहुत कम लोगों द्वारा किया गया। इस क्षेत्र में जो अध्ययन हुए हैं, वे इस प्रकार हैं– डेका (1982) ने असम मे पूर्व प्राथमिक शिक्षा के संगठन का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि विद्यालयों में शिक्षक-छात्र अनुपात उच्च था। इसके साथ ही विद्यालयो में पुस्तकों एवं शिक्षण सामग्री का अभाव था। गोविन्द (1980) ने अपने अध्ययन मे भवन, क्रीड़ा स्थल एव शिक्षण सुविधाओं का अभाव पाया। नीपा (1979) ने आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, जम्मू कश्मीर, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, प बगाल में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन का अध्ययन किया। इन अध्ययनों में पाया गया कि अधिकांश विद्यालयों में भवन इत्यादि का अभाव था। रेबेलो, राव और हसन (1986) ने आन्ध्र प्रदेश में शिक्षा के प्रबन्ध का अध्ययन किया। इस अध्ययन में पाया गया कि पालिका विद्यालयों में भौतिक सुविधाए बुरी तरह प्रभावित थीं, विद्यालयों में फर्नीचर का अभाव था, कुछ विद्यालयों में पीने के पानी की सुविधा भी नहीं थी। आर.एम. राय (1987) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि 68 प्रतिशत विद्यालयों में अध्ययन के समय छात्र जमीन (फर्श) पर बैठते थे। एस आई.ई., उत्तर प्रदेश इलाहाबाद (1986) ने प्राथमिक विद्यालयों में अनुत्तीर्ण होने तथा विद्यालय छोड़ने के कारणों का अध्ययन किया। इसके लिए विद्यालय का आकर्षणहीन वातावरण, महत्वहीन पाठ्यक्रम के प्रभाव, भौतिक वातावरण (सुविधाओं), पीने का पानी तथा स्वच्छता के अभाव को जिम्मेदार पाया। उपरोक्त सभी अध्ययन ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के क्रियान्वयन के पूर्व के हैं, साथ ही कोई भी अध्ययन ऐसा नहीं है जो विस्तृत रूप से प्राथमिक विद्यालयों मे उपलब्ध सुविधाओं की सम्यक् रूप से जानकारी प्रदान करता हो, अपितु अनेक बातों के साथ-साथ किसी में शिक्षक-छात्र अनुपात, किसी में विद्यालय भवन, किसी में शिक्षण-सामग्री इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। अतः ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् वर्तमान समय में बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा सचालित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति क्या है, यह जानने हेतु ही प्रस्तुत अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में विद्यालयी व्यवस्था से सम्बन्धित सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन करना।

2. बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध कक्षा-शिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं की जानकारी प्राप्त करना।

3 बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा सचालित प्राथमिक विद्यालयो में उपलब्ध पाठ्यसहगामी क्रिया सम्बन्धी सुविधाओं की स्थिति का अध्ययन करना।

परिसीमन

प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा को सम्पादित करने वाले विद्यालयों को ही प्राथमिक विद्यालय माना गया है। इस अध्ययन में फैजाबाद जनपद के एक विकास

खण्ड और बरेली जनपद के एक विकास खण्ड के ही प्राथमिक विद्यालयों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोध की वर्णनात्मक विधि को अपनाया गया है। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में फैजाबाद जनपद के विकास खण्ड के 35 और बरेली जनपद के विकास खण्ड के 35, कुल 70 प्राथमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से किया गया है।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित 'प्राथमिक विद्यालयों

तालिका 1

विद्यालय व्यवस्था सम्बन्धी सुविधाएँ

क्रम संख्या	*सुविधा का नाम*	*70 विद्यालयों में सुविधायुक्त विद्यालयों की संख्या*	*सुविधायुक्त विद्यालयों का प्रतिशत*
1	विद्यालय भवन है पक्का	65	92 85
	कच्चा	01	1 43
	भवन विहीन	04	5 72
2	विद्यालय भवन की स्थिति है · (i) अच्छी	30	42 85
	(ii) सामान्य	17	24.29
	(iii) जर्जर	19	27.14
3.	विद्यालय में कमरों की संख्या पर्याप्त हैं	22	31.43
4	विद्यालय के कमरे हवादार हैं	58	82 87
5	विद्यालय के कमरों में पर्याप्त रोशनी है	57	81 43
6	विद्यालय में पेय जल की व्यवस्था है	58	82.87
7.	विद्यालय में जल प्राप्ति का साधन है नल	58	82.87
	कुआ	0	0 0
	अन्य	0	0 0
8.	विद्यालय में पानी पीने हेतु वर्तन हैं	34	48 57
9	विद्यालय में शौचालय है	24	34 29
10	विद्यालय में घण्टा है	54	77 14
11	विद्यालय में संदूक/अलमारिया हैं	54	77.14
12	विद्यालय में उपलब्ध संदूक/अलमारियों की सख्या	27	38 57
13	विद्यालय में राष्ट्रीय ध्वज है	61	87 14
14	विद्यालय में अभिलेखों के रख-रखाव हेतु पर्याप्त स्टेशनरी उपलब्ध रहती है	09	12 86
15.	विद्यालय में पाठ्यपुस्तकें हैं	28	40.00

क्रम सख्या	सुविधा का नाम	70 विद्यालयों में सुविधायुक्त विद्यालयों की संख्या	सुविधायुक्त विद्यालयों का प्रतिशत
16	उपलब्ध पाठ्यपुस्तकों की सख्या पर्याप्त है।	19	27 14
17	विद्यालय में कूड़ादान है	02	02.86
18	विद्यालय में शिक्षक-छात्र अनुपात है		
	1 35 तक	21	30.00
	1 : 36 से 1 : 40 तक	11	15 71
	1 41 से 1 ' 45 तक	14	20 00
	1 : 45 से अधिक	24	34 29
19	अध्यापकों के बैठने के लिए फर्नीचर है	50	71 43
20.	अध्यापक कक्ष है	29	41 43
21	अध्यापक कक्ष में विद्युत पखा है	01	01 43
22	छात्रों के बैठने के कक्ष में विद्युत पखा है	01	01 43
23	छात्रों के बैठने के लिए टाट-पट्टी है	51	72 86
24	उपलब्ध टाट-पट्टी पर्याप्त है	26	37 14
25	विद्यालय में छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण कराया जाता है	10	14 29
26.	स्वास्थ्य परीक्षण की व्यवस्था है मासिक	00	00
	त्रैमासिक	00	00
	अर्धवार्षिक	04	05 71
	वार्षिक	06	08 57
27	विद्यालय में प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध है	02	02.86
28	विद्यालय के अध्यापक को प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षण प्राप्त है	10	14 29
29.	विद्यालय में ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना लागू हो चुकी है	59	84 29

में संसाधनों की उपलब्धता विषयक प्रश्नावली' का प्रयोग दत्त सकलन हेतु किया गया है। इस प्रश्नावली में 29 प्रश्न विद्यालयी व्यवस्था, 11 प्रश्न शिक्षण सम्बन्धी सुविधा और 10 प्रश्न पाठ्यसहगामी क्रिया सम्बन्धी सुविधाओं की जानकारी से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार इस प्रश्नावली में कुल 50 प्रश्न हैं।

विश्लेषण, व्याख्या एवं परिणाम

तालिका 1 को देखने से स्पष्ट होता है कि 70 विद्यालयों में से 4 (5.72 प्रतिशत) विद्यालय ऐसे हैं, जो खुले आकाश के नीचे चल रहे थे। 65 (92.95 प्रतिशत) विद्यालयों का भवन पक्का एवं एक (1 43 प्रतिशत) विद्यालय का भवन कच्चा पाया गया। मात्र 30 (42 85 प्रतिशत) विद्यालयों के भवन ही अच्छी स्थिति में थे। अन्य विद्यालयों में जहाँ भवन थे भी, उनमें से 17 (24.29 प्रतिशत) सामान्य एवं 19 (27 14 प्रतिशत) विद्यालयो के भवन जर्जर स्थिति में थे। मात्र 22 (31.43 प्रतिशत) विद्यालयों में ही कमरों की संख्या पर्याप्त पाई गई। अधिकांश विद्यालयों के कमरों में पर्याप्त हवा एवं रोशनी आती थी। पेय जल जैसी मूलभूत सुविधा भी सभी विद्यालयों में सुलभ नहीं थी। 58 (82.86 प्रतिशत) विद्यालयों में पेयजल की सुविधा उपलब्ध थी। पेयजल की सुविधा से

युक्त सभी विद्यालयों में जल प्राप्ति का स्रोत (नल) हैण्ड पम्प था,। जो स्वच्छ पेयजल की दृष्टि से उपयुक्त ही है। 70 प्राथमिक विद्यालयों में से मात्र 34 (48 57 प्रतिशत) विद्यालयों में ही पानी पीने हेतु बर्तन पाए गए। शौचालय जैसी आवश्यक सुविधा भी मात्र 24 (34 29 प्रतिशत) विद्यालयों में उपलब्ध थी। घंटा उपकरण भी सभी विद्यालयों में उपलब्ध नहीं थे। 54 (77 14 प्रतिशत) विद्यालयों में घंटा उपलब्ध था। अभिलेखों के रख-रखाव हेतु अलमारियॉ/सन्दूक 54 (77 14 प्रतिशत) में थी, किन्तु मात्र 27 (38 57 प्रतिशत) विद्यालयों में ही इनकी उपलब्धता प्रर्याप्त पाई गई। राष्ट्रीय ध्वज भी सभी प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध नहीं थे। 9 (12 86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही प्रर्याप्त मात्रा में स्टेशनरी उपलब्ध रहती थी। पाठ्यपुस्तकें जहा मात्र 28 (40 00 प्रतिशत) विद्यालयों में ही उपलब्ध थीं, वहीं ये केवल 19 (27 14 प्रतिशत) विद्यालयों में ही प्रर्याप्त संख्या में पाई गई। अन्य विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकें या तो थीं ही नहीं अथवा इनकी सख्या अपर्याप्त थीं। कूड़ादान 70 विद्यालयों में से मात्र 2 (2 86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही पाया गया।

तालिका 1 से यह भी स्पष्ट होता है कि कुल 70 विद्यालयों में 38 विद्यालय ऐसे थे जहाँ शिक्षक-छात्र अनुपात निर्धारित मानक से अधिक पाया गया। इसमें से 24 (34 29 प्रतिशत) विद्यालयों में अनुपात 1 46 से भी अधिक था। इसी प्रकार 21 (30 प्रतिशत) विद्यालय ऐसे थे जहाँ शिक्षक-छात्र अनुपात निर्धारित मानक (1 40) से काफी कम 1 : 35 या इससे कम पाया गया। इससे यह विदित होता है कि ऐसे विद्यालयों की सख्या अपेक्षाकृत अधिक थी जहॉ या तो निर्धारित मानक से काफी कम या बहुत अधिक शिक्षक-छात्र अनुपात था।

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि 50 (71 43 प्रतिशत) विद्यालयों में अध्यापकों के बैठने हेतु फर्नीचर उपलब्ध थे। अन्य विद्यालयों में अध्यापकों के बैठने हेतु फर्नीचर था ही

तालिका 2

कक्षा शिक्षण सम्बन्धी सुविधाएँ

क्रम संख्या	*सुविधा का नाम*	*70 विद्यालयों में सुविधायुक्त विद्यालयों की संख्या*	*सुविधायुक्त विद्यालयों का प्रतिशत*
1	सभी शिक्षण कक्षों में श्यामपट्ट हैं	61	87.14
2.	सभी कक्षाओं हेतु डस्टर उपलब्ध हैं	20	28.57
3	विद्यालय में चॉक समय से उपलब्ध रहता है	56	80 00
4	विद्यालय में शिक्षण हेतु चार्ट है	47	67 14
5	शिक्षण हेतु उपलब्ध चार्ट पर्याप्त हैं	25	35 71
6	विद्यालय में शिक्षण हेतु मानचित्र उपलब्ध हैं	52	74 29
7	शिक्षण हेतु उपलब्ध मानचित्रों की संख्या पर्याप्त है	39	55 71
8	विद्यालय में गिनती उपकरण (बालफ्रेम) है	23	32 86
9	विद्यालय में ग्लोब है	15	21 43
10	विद्यालय में विज्ञान किट है	14	20 00
11	विद्यालय में शिक्षण से सम्बन्धित आधुनिक उपकरण हैं	0	00.00

नहीं। अध्यापक कक्ष मात्र 29 (41 43 प्रतिशत) विद्यालयों में थे। एकमात्र विद्यालय ऐसा था जहाँ अध्यापक कक्ष एवं शिक्षण कक्ष में विद्युत पखा पाया गया। छात्रों के बैठने के लिए टाट–पट्टी 51 (72 86 प्रतिशत) विद्यालयों में पाई गई किन्तु मात्र 26 (37 14 प्रतिशत) विद्यालयों में ही प्रर्याप्त संख्या में उपलब्ध थी। 10 (14 29 प्रतिशत) विद्यालयों में ही छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण कराया जाता था। इनमें से 4 (5 71 प्रतिशत) में अर्द्धवार्षिक एव 6 (8 57 प्रतिशत) विद्यालयों में वार्षिक स्वास्थ्य परीक्षण होता था। अन्य विद्यालयों में स्वास्थ्य परीक्षण की आवश्यकता को महत्व नहीं दिया गया। मात्र 2 (2 86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध थी। 70 विद्यालयों में से मात्र 10 (14 29 प्रतिशत) विद्यालयों में ही प्राथमिक चिकित्सा में प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक थे। प्राथमिक विद्यालयों में प्राथमिक चिकित्सा की समुचित व्यवस्था का होना अति आवश्यक है। यद्यपि कुल 70 विद्यालयों में से 59 (84 29 प्रतिशत) विद्यालय ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना–के अन्तर्गत लाभान्वित हो चुके थे, इसके बावजूद व्यवस्था सबंधी प्रर्याप्त सुविधाएँ प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध नहीं थी।

तालिका 2 से स्पष्ट है कि बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण हेतु अति उपयोगी श्यामपट्ट (ब्लैकबोर्ड) तक भी सभी विद्यालयों के सभी शिक्षण कक्षों में उपलब्ध नहीं थे। सभी शिक्षण कक्षों में श्यामपट्ट की सुविधा से युक्त विद्यालयों की संख्या 61 (87 14 प्रतिशत) थी। सभी कक्षाओं हेतु डस्टर मात्र 20 (28 57 प्रतिशत) विद्यालयों में ही पाए गए। सभी विद्यालयों में श्यामपट्ट पर लिखने हेतु चॉक की समय से उपलब्धता भी सुनिश्चित नहीं थी। 20 प्रतिशत विद्यालय ऐसे थे जहॉ चॉक भी समय से उपलब्ध नहीं हो पाता था। विद्यालयों में शिक्षण हेतु चार्ट 47 (67 14 प्रतिशत) विद्यालयों में पाये गये, किन्तु मात्र 25 (35 71 प्रतिशत) विद्यालयों में ही ये पर्याप्त सख्या में उपलब्ध थे। 52 (74 29 प्रतिशत) विद्यालयों में शिक्षण हेतु मानचित्र उपलब्ध थे, किन्तु इनकी संख्या 39 (55 71 प्रतिशत) विद्यालयों में ही पर्याप्त थी। अन्य विद्यालयों में या तो शिक्षण

तालिका 3

पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया संबंधी सुविधाएँ

क्रम संख्या	*सुविधा का नाम*	*70 विद्यालयों में सुविधायुक्त विद्यालयों की संख्या*	*सुविधायुक्त विद्यालयों का प्रतिशत*
1	विद्यालय में व्यायाम संबंधी सामान है	14	20 00
2	व्यायाम संबंधी सामान पर्याप्त मात्रा में है	04	5.71
3	विद्यालय में खेल का मैदान है	45	64.29
4	विद्यालय में खेल का सामान है	44	62 86
5	किन-किन खेलो से सवधित सामान है . फुटवाल	36	51 43
	वॉलीबाल	29	41 43
	रस्सी कूद	31	44.29
6	विद्यालय में उपलब्ध खेल का सामान पर्याप्त है	14	20.00
7	विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम संबंधी सामान है	34	48.57
8.	सांस्कृतिक कार्यक्रम संबंधी सामान पर्याप्त मात्रा में है	09	12.86
9	विद्यालय में पर्यटन हेतु धन उपलब्ध है	0	00
10.	विद्यालय में बच्चों के खिलौने हैं	02	2 86

हेतु मानचित्र थे ही नहीं या आवश्यकता से कम थे। गिनती उपकरण (बालफ्रेम) मात्र 23 (32 86 प्रतिशत) विद्यालयो मे उपलब्ध था। छोटे बच्चों को गिनती सीखने मे सहायक इस उपकरण की अनिवार्यता को भली-भांति स्वीकार नहीं किया गया। ग्लोब और विज्ञान किट क्रमश 15 (21 43 प्रतिशत), 14 (20 00 प्रतिशत) विद्यालयो में ही पाये गये। सभी विद्यालयो में शिक्षण से सबन्धित आधुनिक उपकरणों का पूर्णत· अभाव था।

तालिका 3 में पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया संबधी सुविधाओं के विवरण को दर्शाया गया है। उक्त तालिका पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। मात्र 14 (20 प्रतिशत) विद्यालयों मे ही व्यायाम के सामान उपलब्ध थे। जहाँ 80 प्रतिशत विद्यालयों में व्यायाम का कोई भी सामान उपलब्ध नहीं था। वहीं मात्र 4 (5 71 प्रतिशत) विद्यालयों में ही व्यायाम के सामान पर्याप्त मात्रा में पाये गये। खेल के मैदान एवं खेल का सामान भी सभी प्राथमिक विद्यालयों में नहीं था। जहाँ केवल 435 (64 29 प्रतिशत) विद्यालय खेल के मैदान से युक्त थे, वहीं मात्र 44 (62 86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही खेल का सामान पाया गया। इसमें 36 (51 43 प्रतिशत) विद्यालयों में फुटबाल, 29 (41 43 प्रतिशत) में बॉलीबाल और 31 (44.29 प्रतिशत) विद्यालय में रस्सी कूद का सामान पाया गया। मात्र 14 (20 00 प्रतिशत) विद्यालयों में ही खेल का सामान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। अतः स्पष्ट होता है कि प्राथमिक विद्यालयों में खेल की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं, जबकि छोटे बच्चों के विकास हेतु खेल की सुविधा का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेल द्वारा विद्यालय के वातावरण मे जीवन्तता बनी रहती है। जिसके फलस्वरूप विद्यालय छोडकर भागने वाले विद्यार्थियों की सख्या घटती है। विद्यार्थियो के शारीरिक, नैतिक, चारित्रिक एव सामाजिक विकास इत्यादि में भी खेल द्वारा मदद मिलती है। 34 (48.57 प्रतिशल) विद्यालयों में सांस्कृतिक कार्यक्रम से सम्बन्धित सामान पाये गये किन्तु मात्र 09 (12 86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही इन सामानों की उपलब्धता पर्याप्त थी। किसी भी विद्यालय में पर्यटन हेतु धन उपलब्ध नहीं था। मात्र 2 (2.86 प्रतिशत) विद्यालयों में ही छोटे बच्चों के खेलने के लिए खिलौने उपलब्ध थे। अन्य विद्यालयों में इनका पूर्णत· अभाव था।

निष्कर्ष

1 70 प्राथमिक विद्यालयों में से 59 (84 29 प्रतिशत) विद्यालयों में ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के क्रियान्वयन के बावजूद भवन जैसी मूलभूत सुविधा की स्थिति अच्छी नहीं थी। चार विद्यालयों में जहाँ भवन नहीं थे,वहीं एक तिहाई विद्यालयों के भवन जर्जर स्थिति मे थे। लगभग दो तिहाई विद्यालयों में कमरे आवश्यकता से कम थे।

2 पेय जल जैसी मूलभूत सुविधा भी लगभग 20 प्रतिशत विद्यालयों में उपलब्ध नहीं थी। पानी पीने हेतु बर्तन, शौचालय, अध्यापक कक्ष, अध्यापको के बैठने हेतु फर्नीचर तक की सुविधा से भी आधे से अधिक विद्यालय वंचित थे। राष्ट्रीय ध्वज एव घण्टा तक भी सभी विद्यालयों में उपलब्ध नहीं थे। कूड़ादान मात्र दो विद्यालयों में पाए गए। मात्र एक विद्यालय में अध्यापक कक्ष एव शिक्षण कक्ष में विद्युत पंखा था।

3 संदूक/अलमारिया, पाठ्यपुस्तके, स्टेशनरी, छात्रों के बैठने हेतु टाट-पट्टी का अधिकांश विद्यालयों में अभाव था।

4. विद्यार्थियों के स्वास्थ्य परीक्षण की व्यवस्था बहुत ही कम विद्यालयों में थी। प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा मात्र दो विद्यालयों में ही पाई गई। प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों का भी अधिकाश विद्यालयों में अभाव था।

5 शिक्षक-छात्र अनुपात असंतुलित था। अधिकांश विद्यालयों में निर्धारित मानक (1 : 40) से काफी अधिक या काफी कम शिक्षक-छात्र अनुपात था। इसका कारण अध्यापकों की कमी कम, अपितु उचित स्थानान्तरण नीति का अभाव अधिक था।

6. प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण सुविधाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। श्यामपट्ट तक की सुविधा से सभी विद्यालयों के सभी शिक्षण कक्ष युक्त नहीं थे। अधिकांश विद्यालयों में डस्टर का अभाव था। एक चौथाई विद्यालयों में समय से चॉक भी उपलब्ध नहीं हो पाता था। शिक्षण हेतु चार्ट एवं मानचित्र के उपलब्धता

की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। लगभग दो तिहाई विद्यालयों में गिनती उपकरण (बालफ्रेम) भी उपलब्ध नहीं था। ग्लोब और विज्ञान किट बहुत ही कम विद्यालयों मे पाये गए। किसी भी प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण से सम्बन्धित कोई भी आधुनिक उपकरण उपलब्ध नहीं था।

7. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित सुविधाओं की स्थिति भी प्राथमिक विद्यालयो में संतोषजनक नहीं थी। जहॉ तीन चौथाई प्राथमिक विद्यालयों में व्यायाम सम्बन्धी कोई भी सामान उपलब्ध नहीं था, वहीं लगभग 40 प्रतिशत विद्यालय खेल के मैदान व खेल के सामान से वंचित थे। प्राथमिक विद्यालयो मे मात्र फुटबाल, बॉलीबाल व रस्सीकूद के सामान ही पाए गए। लगभग तीन चौथाई विद्यालयों में खेल के सामान की कमी महसूस की गई। सास्कृतिक कार्यक्रम से सम्बन्धित सामान जॅहा बहुत कम विद्यालयों में पाए गए, वहीं जहॉ ये उपलब्ध भी थे, इनकी सख्या पर्याप्त नहीं थी। छोटे बच्चों के खिलौने 70 में से मात्र दो विद्यालयों में ही पाए गए।

सुझाव

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो से स्पष्ट होता है कि बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा सचालित प्राथमिक विद्यालयों में विद्यालयी व्यवस्था, कक्षा-शिक्षण और पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित उपलब्ध सुविधाओ की स्थिति अच्छी नहीं थी। इन विद्यालयों में सम्बन्धित सुविधाओं की स्थिति में सुधार हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं :

1. ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् भी प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। अतः इस योजना के कार्यान्वयन की समीक्षा कर इसके कार्यान्वयन में व्याप्त कमियों को दूर किया जाए।

2 शासन द्वारा प्राथमिक विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं यथा–भवन, पेय जल, शौचालय, फर्नीचर, शिक्षण सामग्री एवं व्यायाम व खेलकूद इत्यादि की व्यवस्था हेतु धन उपलब्ध कराया जाए। साथ ही धन का सही तरीके से उपयोग हो इसको सुनिश्चित करने हेतु जहॉ तक सम्भव हो, प्रधानाध्यापक को प्रदत्त धन व्यय करने हेतु अधिकृत किया जाए। इससे जहॉ शीघ्रता से मूलभूत सुविधॉए जुटाने में मदद मिलेगी, वहीं धन के दुरुपयोग को भी रोकने में मदद मिलेगी।

3. अध्यापकों का स्थानान्तरण करते समय शिक्षक-छात्र अनुपात को आधार बनाया जाए, जिससे शिक्षक–छात्र अनुपात में व्याप्त असंतुलन को दूर करने में मदद मिलेगी।

4 प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं में वृद्धि हेतु स्थानीय लोगों एवं स्वयंसेवी सस्थाओ से मदद लेने का प्रयास किया जाए। उन्हें इस ओर आकर्षित करने हेतु कर इत्यादि के भुगतान में जहॉ तक सम्भव हो, छूट प्रदान की जाए।

5 नये प्राथमिक विद्यालयों को खोलने की अनुमति प्रदान करने के सम्बन्ध मे मानदण्ड निर्धारित किये जाऍ और उनको पूरा करने पर ही नए विद्यालय खोलने की अनुमति दी जाए।

6. शिक्षक-प्रशिक्षण के समय अध्यापकों को चार्ट, मानचित्र इत्यादि बनाने मे भी दक्ष बनाने के साथ ही साथ शिक्षण मे इनकी उपयोगिता से उन्हें विशेष रूप से अवगत कराया जाए, जिससे वे स्वयं इनका निर्माण कर इनकी कमी को दूर करने हेतु तत्पर होंगे। शिक्षक प्रशिक्षण के समय ही अध्यापको को प्राथमिक चिकित्सा का प्रशिक्षण प्रदान करके प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों की कमी को दूर किया जा सकता है।

7. पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाओं की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए प्राथमिक विद्यालयों में व्यायाम, खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दिया जाए क्योंकि इन सुविधाओं की स्थिति अपेक्षाकृत काफी खराब है। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ जहॉ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास मे सहायक हैं, वहीं विद्यालय के वातावरण को आकर्षक एवं जीवन्त बनाकर छोटे बच्चो को आकर्षित करने में भी सहायक होती है।

संदर्भ

1 आर.सी दास; 1974 ' सदर्भ – एम.बी.बुच, (एडी.) **फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,** नई दिल्ली . एन.सी.ई.आर.टी., 1991, वाल्यूम - II, पृ. 1265।

2 **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986,** नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मत्रालय, शिक्षा विभाग, 1986, पृ. 9।

3 **दैनिक जागरण** (बरेली संस्करण), मार्च 24, 1995, पृ. 6।

4 जी. डेका, 1982, संदर्भ – एम.बी. बुच, (एडी.) **थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,** नई दिल्ली एन.सी.ई आर.टी., 1987, पृ. 881।

5 आर गोविन्द; 1980, संदर्भ – वही, पृ. 893।

6 नीपा, 1979, संदर्भ वही, पृ 919-927।

7 डी.एम. रेबेलो; आर.आर. राव एवं आर. हसन; 1986 सदर्भ – एम.बी. बुच, (एडी.) **फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,** नई दिल्ली ' एन.सी ई.आर.टी. 1991 वाल्यूम – II, पृ. 1116।

8 आर एम. राय; 1987 सदर्भ —वही, पृ. 1277।

9 एस.आई.ई, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद 1986, संदर्भ — वही, पृ. 1281।

दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति दृष्टिवान अध्यापकों का दृष्टिकोण

क्रान्ति दर्शन शर्मा
अध्यापक
अखिल भारतीय नेत्रहीन संघ
नई दिल्ली

किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार के प्रति विभिन्न लोगों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होता है। यह भिन्नता तब और उभरकर सामने आती है जब कोई व्यक्ति किसी गंभीर विकलांगता का शिकार हो। दृष्टिहीन छात्रों की समाज द्वारा उपेक्षा इसी प्रकार की एक समस्या है। प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से लेखक ने दृष्टिबाधित छात्र वर्ग के प्रति अध्यापकों के दृष्टिकोण का अध्ययन किया है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दृष्टिबाधित छात्रों के शिक्षण में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक ही इन छात्रों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपना पाते हैं तथा उनकी भावनाओं, आवश्यकताओं और इच्छाओं को भली प्रकार समझ पाते हैं। इसी सदर्भ में कुछ उपयोगी सुझाव भी अनुसंधानकर्ता ने दिए हैं जो इस दिशा में कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

दृष्टिकोण एव अभिवृत्ति दोनों ही शब्दों का अर्थ एक है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं और आकाक्षाओं केअनुरूप बालक के व्यवहार को परिमार्जित करना है। व्यवहार के विभिन्न अवयवों मे अभिवृत्तियॉ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार के प्रति व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा यह बहुत कुछ उस व्यक्ति के उनके प्रति बनी अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नहीं व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही उसकी अभिवृत्तियों के अनुकूल ही ढलता है। जो कुछ भी व्यक्ति सीखता है और आदतों तथा रुचि आदि को ग्रहण करता है, वे सभी उसकी अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होती हैं। अभिवृत्ति को हम निम्नवत् पारिभाषित कर सकते है "उन विचारों को जिनमें संवेग का समावेश हो तथा महत्वपूर्ण आस्थाओं, पूर्वाग्रहों एवं अभिधारणाओं के गुण व दोषों की विवेचना और तत्परता की स्थितियों को अभिवृत्तियॉ कहते हैं।"

किसी व्यक्ति की अभिवृत्तियों के समूह में विविध प्रकार की अभिवृत्तियॉ शामिल होती हैं। इनमें स्वास्थ्य, जीवन तथा मृत्यु के प्रति, नई परिस्थितियों के प्रति, संगीत, कला, खेलकूद, सरकार, काम, धर्म के प्रति अभिवृत्तियाँ और इतनी ही महत्वपूर्ण कई और अभिवृत्तियाँ होती हैं। ये अभिवृत्तियॉ सुनियोजित तथा आकस्मिक अनुभवों के माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया द्वारा प्रभावित हुई हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षा के कर्णधारों की समाज के एक वर्ग (दृष्टिबाधित) के प्रति दृष्टिकोण (अभिवृत्ति) का अध्ययन किया गया है। क्या शिक्षकों का दृष्टिकोण भी इनके प्रति उसी प्रकार का है जिस प्रकार का समाज का दृष्टिकोण (उपेक्षापूर्ण) शुरू से रहा है या उससे कुछ भिन्न है, क्योंकि शिक्षक भी समाज का ही एक अग है।

दृष्टिहीन व्यक्तियों के प्रति समाज के कुछ वर्गो का दृष्टिकोण निम्नवत् पाया गया ·

1. **दृष्टिबाधा के प्रति माता-पिता का दृष्टिकोण** : सौमर्स (1944) ने अपने अध्ययन में माता-पिता का दृष्टिकोण निम्न प्रकार का बताया था :

(क) बच्चे एवं उसकी विकलागता की स्वीकृति।
(ख) विकलांगता के प्रभाव की अस्वीकृति।
(ग) अत्यधिक सरक्षण।
(घ) प्रच्छन्न अस्वीकृति।
(ङ) स्पष्ट अस्वीकृति।

2 **दृष्टिबाधितों के प्रति नियोक्ताओं का दृष्टिकोण** : चौकर (1975) ने नियोक्ताओं के दृष्टिकोण के बारे में

एक अध्ययन किया था। उन्हें इस सन्दर्भ में निम्न दृष्टिकोण प्राप्त हुए '

(क) दृष्टिहीन व्यक्ति अपने सहकर्मियों के द्वारा अच्छी प्रकार से स्वीकार किए जाते है।

(ख) उन्हें अपने कार्य के प्रति अनुकूलन में समय लगता है।

(ग) अपने कार्य के प्रति वह अधिक धीमे नहीं हैं।

(घ) वह मशीनों पर लगातार कार्य करते हैं।

3 **दृष्टिवानों का दृष्टिबाधितों के प्रति दृष्टिकोण :** दृष्टिवानों का समाज में दृष्टिबाधितों के प्रति निम्नवत् दृष्टिकोण पाया जाता है :

(क) स्वीकृतिपूर्ण दृष्टिकोण।

(ख) अस्वीकृतिपूर्ण दृष्टिकोण।

(ग) आशंकापूर्ण दृष्टिकोण।

(घ) शर्मिन्दगी का दृष्टिकोण।

(ङ) उदासीनता का दृष्टिकोण।

(च) नकारात्मक दृष्टिकोण।

(छ) अविश्वासपूर्ण दृष्टिकोण।

(ज) मिथ्याधारणा का दृष्टिकोण।

(झ) दयापूर्ण दृष्टिकोण।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रत्येक समस्या के चुनाव के पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य ही होता है। यहॉ पर अनुसधानकर्त्ता का इस समस्या के चुनाव के पीछे मुख्य उद्देश्य यह रहा है —

1 कि जो दृष्टिवान अध्यापक दृष्टिबाधित छात्रों के विशेष विद्यालयो में पढाते हैं, उनका उन छात्रो के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण रहता है।

2 इस अध्ययन का उद्देश्य यह ज्ञात करना भी है कि अध्यापक जो देश की प्रगति एवं देश के भविष्य का आधार है वह कहीं एक वर्ग विशेष (दृष्टिहीन) के प्रति गलत अभिवृत्ति तो नहीं रखते है।

3 इस अध्ययन के पीछे एक उद्देश्य यह भी ज्ञात करना है कि जो दृष्टिवान अध्यापक विशेष विद्यालय में हैं वे वास्तव में उन विद्यालयों में कार्य करना भी चाहते हैं अथवा नहीं।

समस्या का क्षेत्र

समस्या का चुनाव करने के बाद दूसरा मुख्य कार्य होता है उस समस्या पर किस क्षेत्र में जाकर कार्य किया जाए।

इस समस्या के लिए अनुसंधानकर्त्ता ने कुछ विशेष (दृष्टिहीन) विद्यालयों को चुना है। यहॉ के अध्यापको की अभिवृत्तियों को जानने का प्रयत्न किया, ये विद्यालय निम्नवत् हैं —

1 जे.पी.एम. अन्धविद्यालय, लोधी रोड, नई दिल्ली।

2. एन. ए. बी. नर्सरी स्कूल फॉर दि ब्लाइण्ड, आर के. पुरम, सेक्टर-5, नई दिल्ली।

3. शासकीय अन्धमहाविद्यालय, पंचकुइयॉ रोड, नई दिल्ली।

4. इन्स्टीट्यूट फॉर दि ब्लाइण्ड, पंचकुइयॉ रोड, नई दिल्ली।

5. गवर्नमैंण्ट स्कूल फॉर दि बॉयज, किंग्सवे, कैम्प, नई दिल्ली।

प्राकल्पना

1 दृष्टिबाधित छात्रों के प्रति विशेष विद्यालयों के दृष्टिवान अध्यापकों का दृष्टिकोण सामान्य रहता है।

2. विशेष विद्यालयों के दृष्टिवान अध्यापकों को यदि विशेष विद्यालयो जैसी सुविधाऍ सामान्य विद्यालयों में प्राप्त हो तो वे विशेष विद्यालयों में ही रहेंगे।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में 'उद्देशीय न्यादर्श' का चयन किया गया क्योंकि दृष्टिबाधितो के विशेष विद्यालयो मे दृष्टिवान अध्यापकों की संख्या बहुत ही कम है। प्रस्तुत अध्ययन में 25 अध्यापकों का चुनाव किया गया है।

प्रदत्तों का संकलन

प्रदत्तो के सकलन के लिए अनुसधानकर्त्ता ने साक्षात्कार अनुसूची एव साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग किया है।

प्रदत्तों की व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में जो प्रदत्त अनुसंधानकर्त्ता को प्राप्त हुए उनके आधार पर उन प्रदत्तों की व्याख्या निम्नवत् हैं —

1. दृष्टिबाधित बच्चों को शिक्षा लेनी चाहिए और शिक्षा के लिए उन्हें प्रोत्साहन देने की बात सभी अध्यापक स्वीकार करते हैं। कक्षा नोट्स लेने के सन्दर्भ में 24 प्रतिशत अध्यापकों का उत्तर यह था कि इन्हें नोट्स लेने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह लोग सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से पढ़ते हैं। इन्हें कैसिट्स पर किताबें मिल जाती हैं, ब्रेल-लिपि की किताबें भी काफी मात्रा में हैं तो नोट्स की क्या आवश्यकता है। जो अध्यापक नोट्स देने के पक्षधर हैं उनका मत था कि इससे बच्चे में नोट्स लेने की आदत विकसित होती है और बच्चा अपना लिखा हुआ आसानी से पढ़ लेता है।
2. जब अनुसधानकर्त्ता ने गृहकार्य जाँचने की बात की तो 52 प्रतिशत अध्यापको ने यह स्वीकार किया कि वह इनका गृहकार्य जाँचते है और 8 प्रतिशत अध्यापकों ने कुछ सीमा तक जॉचने की बात को स्वीकार किया जबकि इन विद्यालयों में विशेष प्रशिक्षित अध्यापक मात्र 28 प्रतिशत ही थे। इस सन्द्रर्भ में उन्होंने बताया कि हम बच्चो से ही पढवाकर या अन्य अध्यापक जिन्हें ब्रेल आती है उनसे पढ़वाकर जॉचते है।
3. जब अनुसंधानकर्त्ता ने अध्यापकों से यह पूछा कि उन्हें ब्रेल आती है या नहीं तो इस सन्दर्भ में विशेष विद्यालयों में 32 प्रतिशत अध्यापकों ने यह स्वीकार किया कि उन्हें ब्रेल आती है और 20 प्रतिशत ने यह स्वीकार किया कि कुछ सीमा तक उन्हें ब्रेल आती है जबकि विशेष प्रशिक्षित अध्यापक 28 प्रतिशत ही थे। तब अनुसंधानकर्त्ता ने यह जानने का प्रयत्न किया कि बाकी 24 प्रतिशत अध्यापकों को ब्रेल कहॉ से आ गई। इस तथ्य को जानने के लिए जब अनुसधानकर्त्ता ने प्रयत्न किया तो उसे ज्ञात हुआ कि एन.ए.बी. नर्सरी स्कूल फॉर दि ब्लाइण्ड का कार्य इस क्षेत्र में सराहनीय है। वहाँ पर जब भी कोई नया अप्रशिक्षित अध्यापक या सामान्य प्रशिक्षित अध्यापक आता है तो उसके लिए चालू सत्र में ब्रेल सीखना अनिवार्य होता है। यदि वह ब्रेल नहीं सीख पाता है तो उसकी सेवा समाप्त कर दी जाती है।
4. जब मूल्याकन के सन्दर्भ में प्रश्न पूछा गया तो मात्र 4 प्रतिशत अध्यापकों ने यह बात स्वीकार की कि इनका मूल्याकन सामान्य बच्चों के समान होता है जबकि 60 प्रतिशत अध्यापकों ने स्वीकार किया कि दृष्टिहीनों का मूल्याकन लगभग दृष्टिवानों जैसा ही होता है जबकि 36 प्रतिशत अध्यापको ने यह स्वीकार किया कि इनके मूल्यांकन में सामान्य बच्चों से काफी भिन्नता है। इसके पीछे जो कारण था वह यह कि बोर्ड की परीक्षाओं मे इन्हे राइटर मिलता है। सामान्य बच्चो से इन्हें अधिक समय दिया जाता है। छोटी-मोटी गलतियो को दयादृष्टि से अनदेखा कर दिया जाता है। अनिवार्य प्रश्न जैसे मानचित्र, चित्र आदि में इन्हें छूट दी जाती है। विशेष विद्यालयो में गृह-परीक्षाओ मे लेखक न मिलने पर मात्र विशेष बिन्दुओ के लिखने पर पूरा प्रश्न मान लिया जाता है और पूर्ण अंक दिये जाते हैं यह अन्तर होता है।
5. बोर्ड की परीक्षाओं में दृष्टिबाधित बच्चे अच्छे अको से उत्तीर्ण होते हैं यह सभी अध्यापक मानते हैं।
6. इन बच्चों को शिक्षा के लिये कुछ सहायक सामग्री की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें अध्यापक (प्रशिक्षित अध्यापक) आसानी से बना लेते हैं। जब इस सदर्भ में इन अध्यापकों से पूछा गया कि क्या आप सहायक सामग्रियो का निर्माण करते हैं तो मात्र 24 प्रतिशत अध्यापकों ने यह स्वीकार किया कि कुछ सीमा तक, बाकी सभी ने अस्वीकार कर दिया। इसके पीछे कारण यह था कि इनके बनाने में समय अधिक खर्च होता है। दूसरे उसका अलग से कोई लाभ अध्यापकों को दिया नहीं जाता। अतः वे अपना समय खर्च नहीं करते। जो

सहायक सामग्री विद्यालय मे होती है उसी से काम चलाते है।

7 खेलकूद मे भाग लेने के सदर्भ मे जब पूछा गया तो शत-प्रतिशत अध्यापकों ने यह स्वीकार किया कि इन बच्चों को भी खेलकूद में भाग लेना चाहिए। खेलकूद के लिये प्रोत्साहित करने के तथ्य को भी सभी अध्यापकों ने स्वीकार किया कि वे इन बच्चों को इसके लिए प्रोत्साहित करते हैं।

8 दृष्टिहीन बच्चों को पाठ्य-सहगामी क्रियाओं मे भाग लेने की बात को विशेष विद्यालय में सभी अध्यापक स्वीकारते हैं और उनकी तैयारी कराने की बात भी सभी अध्यापकों ने स्वीकार की कि वे इनकी तैयारी में सहयोग देते हैं।

9 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की प्रतियोगिता मे यह बच्चे सामान्य बच्चो के साथ सामान्य प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं और उनसे अच्छे परिणाम लाते हैं। यह तथ्य लगभग सभी अध्यापक स्वीकार करते हैं। इसके पीछे मुख्य कारण संगीत की इनकी शिक्षा एवं अध्यापकों से विषयों के बारे मे खुलकर चर्चा करना रहता है।

10 इन विद्यालयों के अध्यापकों से जब यह पूछा गया कि क्या आप इन बच्चो को शारीरिक दण्ड भी देते हैं तो 75 प्रतिशत अध्यापको ने यह स्वीकार किया कि गलती करने पर इन्हे दण्ड भी दिया जाता है।

11 विशेष विद्यालयों मे अध्यापको से यह पूछा गया कि कोई छोटा बच्चा जो दृष्टिहीन है वह अपना कुछ कार्य स्वयं नहीं कर पाता तो क्या आप उसे सिखाना पसंद करेंगे। इस पर काफी अध्यापकों का उत्तर सकारात्मक था किन्तु 20 प्रतिशत अध्यापकों ने नकारात्मक उत्तर दिया। उनका कहना था कि इसके लिए यहाँ एक व्यक्ति रखा गया है जिसका कार्य इन बच्चो की देखभाल करना है यह हमारा कार्य नहीं है।

12 जब अनुसंधानकर्त्ता ने इन अध्यापकों से पूछा कि क्या आप दृष्टिहीन बच्चों के अभिभावकों से परामर्श करते हैं तो लगभग बराबर उत्तर नकारात्मक एव सकारात्मक प्राप्त हुए। नकारात्मक उत्तर देने वाले अध्यापकों का कहना था कि इन बच्चों के अभिभावक प्राचार्य जी से एव काउन्सलर से परामर्श करते है हमसे नहीं।

13 विशेष विद्यालयों के अध्यापको से जब यह पूछा गया कि यदि कोई बच्चा आपको बाजार से सामान लाने के लिए कहता है तो आप लाना पसंद करेंगे। इसके लिए 76 प्रतिशत अध्यापकों ने मना कर दिया। इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि इन्हे सभी आवश्यक वस्तुएं विद्यालय में मिलती हैं तो हम क्यों लाएं। दूसरे इन बच्चो को स्वय भी खरीदारी सीखनी चाहिए, नहीं तो दूसरो पर ही निर्भर रहेंगे।

14 जब अध्यापकों से यह पूछा गया कि क्या आप इन बच्चों को कक्षा के समय के अलावा भी पढ़ाने के लिए समय देते हैं तो मात्र 16 प्रतिशत अध्यापकों ने यह कहा कि हम इन्हें अलग से समय देते हैं। 52 प्रतिशत अध्यापकों ने यह स्वीकार किया कि कभी-कभी समय देते हैं जैसे परीक्षा के समय तक कोर्स पूरा न हुआ हो या कोई बच्चा ही समय मांगे, अन्यथा नहीं और 32 प्रतिशत अध्यापको ने मना किया कि वह कक्षा समय के अलावा कोई समय नहीं देते। उनका कहना था कि इससे हम लोगों को तो कोई लाभ मिलने वाला नहीं है तो अलग से समय देने का क्या लाभ।

15 जब अनुसंधानकर्त्ता ने विशेष विद्यालय के अध्यापको से यह पूछा कि यदि यह सभी सुविधाएं आपको सामान्य विद्यालय में प्राप्त हों तो आप वहाँ नौकरी करना पसद करेंगे तो 60 प्रतिशत अध्यापकों ने यह बात स्वीकार की कि वह सामान्य विद्यालयों में नौकरी करना पसन्द करेंगे जबकि 40 प्रतिशत अध्यापकों ने मना कर दिया। इसके पीछे कारण यह था कि जो अध्यापक विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हैं वे सामान्य विद्यालयों में जाने को उत्सुक हैं। केवल उन अध्यापकों ने मना किया जो कि विशेष प्रशिक्षण प्राप्त थे। कुछ अध्यापकों ने इसलिए मना किया कि उन्हें इन्हीं सुविधाओं में जाने से कुछ लाभ नहीं है यदि कुछ अधिक लाभ प्राप्त हो तो चलें जाएंगे। कुछ अध्यापकों ने इस कारण मना किया कि वह काफी समय से इन विद्यालयों में कार्यरत थे इसलिए वे सामान्य विद्यालयों में जाने के उत्सुक नहीं हैं।

निष्कर्ष

आंकड़ों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अनुसंधानकर्त्ता की दोनों ही प्राकल्पनाएं पूर्णतया सत्य नहीं होती हैं क्योंकि विशेष विद्यालयों के दृष्टिवान अध्यापक पूर्णरूप से अपनी जिम्मेदारी को एक सामान्य विद्यालय के अध्यापक के समान नहीं निभा पाते हैं और उनका दृष्टिकोण दृष्टिहीन बच्चों के प्रति नकारात्मक ही रहता है। इसके पीछे प्रमुख कारण निम्नवत् है :

1 विशेष विद्यालय के जिन अध्यापकों ने विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया है वे अपने उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार निभाते हैं, बाकी अध्यापक नहीं।

2 इन विद्यालयों के अधिकांश अध्यापक इन बच्चों को गृहकार्य नहीं देते। यदि देते भी हैं तो जांच नहीं पाते क्योंकि उन्हें ब्रेल आती ही नहीं जबकि छोटे बच्चों को तो अभ्यास के लिए कार्य देना अनिवार्य है।

3 इन बच्चों का मूल्यांकन भी सामान्य बच्चों के समान नहीं हो पाता है। उसमें भी कुछ न कुछ रूपान्तरण करना पड़ता है।

4. दृष्टिबाधित बच्चों के इन विद्यालयों के अध्यापक सहायक सामग्रियों का निर्माण भी नहीं करते हैं और न ही शिक्षा में ऐसी सहायक सामग्रियों का उपयोग ही करते हैं जबकि दृष्टिबाधित बच्चे के प्रत्यय निर्माण में सहायक सामग्री अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि इन बच्चों को केवल मौखिक रूप से बताया जाए तो भाषा विकास सही नहीं हो पाता है।

5. विशेष विद्यालयों के अध्यापकों की पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के प्रति अभिवृत्ति अच्छी पाई गई।

6. इन बच्चों के प्रति व्यवहारात्मक दृष्टिकोण इन अध्यापकों का सही नहीं पाया गया। क्योंकि छोटे बच्चों को थोड़ा निर्देश देकर या थोडा सहयोग देकर कार्य सिखाने में कोई हर्ज नहीं है। बच्चों का छोटा-मोटा सामान लाने में या कभी-कभी बच्चों की आवश्यकता को देखते हुए उनको थोड़ा अलग से समय देने की आवश्यकता को इन अध्यापकों ने नकार दिया। इससे इनका दृष्टिहीन बच्चों के प्रति व्यावहारात्मक दृष्टिकोण नकारात्मक दृष्टिगोचर होता है।

व्यावहारात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत ही जब यह पूछा गया कि इन्हीं सुविधाओं पर आप सामान्य विद्यालयों में जाना पसन्द करेंगे तो काफी बडी संख्या में इन अध्यापकों ने जाने की बात को स्वीकार किया। जो अध्यापक सामान्य विद्यालयों में जाने के इच्छुक हैं उनका दृष्टिकोण दृष्टिहीन बच्चों के प्रति कैसे सामान्य हो सकता है।

सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के तथ्यों से जो परिणाम सामने आए हैं उनको दृष्टिगत रखते हुए कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं :

1 विशेष विद्यालयों मे जो भी अध्यापक नियुक्त किए जाएं वे विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किए हुए होने चाहिए तभी उनकी अभिवृत्ति दृष्टिबाधितों के प्रति सकारात्मक होगी।

2 यदि सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक लिया जाता है तो उसे शीघ्र से शीघ्र विशेष प्रशिक्षण प्रदान कराना चाहिए एव ब्रेल सिखानी चाहिए जिससे कि वह अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह से निभा सके।

3. विशेष विद्यालयों में ऐसे अध्यापकों को नहीं रखा जाए जिनकी हार्दिक इच्छा सामान्य विद्यालयों में सेवा करने की हो। ऐसे अध्यापक समर्पण की भावना से अपनी जिम्मेदारी को नहीं निभा पाते हैं बल्कि एक बोझ समझकर मजबूरी में कार्य करते हैं।

4. विशेष विद्यालयों में अध्यापकों के चुनाव के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्ति को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।

5 विशेष प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों को कुछ विशेष सुविधाएँ भी दी जानी चाहिए।

संदर्भ

1 लाल आडवानी; **म्युच्यूअल परसैप्शन ऑफ द ब्लाइण्ड एण्ड द साइटेड,** ब्लाइण्ड रिलीफ एसोसियेशन, नई दिल्ली।

2 मैरी जहोडा एव स्टुअर्ट कुक डब्ल्यू, 1950, **रिसर्च मैथड इन सोशल रिलेशन,** वोल्यूम I, न्यूयार्क ।

3. डब्ल्यू. राबर्ट ट्रैनर्स, 1973 **एजुकेशनल साइकोलॉजी,** न्यूयार्क, मैक मिलन कम्पनी।

4 एम जे. मकेशी, एव सी.एल. डोयल; 1966, **'साइकोलॉजी',** एडीशन बैसले ।

5. सी माचिसन, द्वारा सम्पादित 1935, **'हैण्ड बुक ऑफ सोशल साइकोलॉजी'** में जी. डब्ल्यू आलपोर्ट, का लेख "एटीट्यूड", बोर्स्टर मैसाच्यूसैल्स क्लार्क यूनिवर्सिटी प्रेस।

6. एस.आर मित्तल; **दृष्टिहीनों के अध्यापकों हेतु निर्देश पुस्तिका में प्रकाशित शोध पत्र दृष्टिहीनता एवं समायोजन,** दृष्टिबाधितार्थ राष्ट्रीय सस्थान, देहरादून।

7. बर्थहोल्ड लोबनफील्ड, 1973, द **बिजुअली हैण्डीकेप्ड चाइल्ड इन स्कूल,** द जॉन डे कम्पनी; न्यूयार्क।

8. जे.ओ. व्हिटेकर; 1970, **"इन्ट्रोडक्शन टू साइकोलॉजी",** डब्ल्यू. बी सौण्डर्स कम्पनी; इन्टरनेशनल स्टूडैण्ट्स एडीसन।

9 आर.ए. शर्मा; 1950, **शिक्षा अनुसंधान,** लायल बुक डिपो; मेरठ।

10 सोरेन्सन, हार्बट, 1977, **साइकोलॉजी इन एजुकेशन;** टाटा मैकग्राहिल, नई दिल्ली टी.एम.एच एडीसन।

11 बिटास सौमार्स; 1944, **"द इन्फ्लूयेन्स ऑफ पेरेन्टल एटीट्यूड्स एण्ड सोशल एनवायरन्मैण्ट ऑफ द पर्सनालिटी ऑफ द एडोलेसैण्ट ब्लाइण्ड;** न्यूयार्क : अमेरिकन फाउण्डेशन फार द ब्लाइण्ड।

शैक्षिक शोध प्रबन्ध-सार संक्षेप

सकलन	:	कु. संगीता कनिष्ठ प्रोजेक्ट फेलो शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति (एरिक) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली 110016
शोधकर्ता का नाम	:	डॉ. कृष्णचन्द्र त्रिपाठी
शीर्षक		संस्कृत साहित्य में शिक्षा (ऋग्वेद तथा सम्बद्ध वैदिक साहित्य पर आधारित)
प्रायोजक सस्था	:	शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति (एरिक) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली 110016
दस्तावेज का प्रकार	.	स्वतन्त्र अध्ययन
अध्ययन की प्रकृति	:	वर्णनात्मक
प्रस्तुति वर्ष	:	1995
संस्थान जहॉ प्रस्तुत किया गया	:	शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति (एरिक) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली 110016
दस्तावेज की भाषा	:	हिन्दी

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''संस्कृत साहित्य में शिक्षा'' (ऋग्वेद तथा सम्बद्ध वैदिक साहित्य) पर आधारित है। समस्त शोध प्रबन्ध को शोधकर्ता ने नौ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रत्येक अध्याय अपने आप में पूर्ण है। इन नौ अध्यायों के शीर्षक निम्न प्रकार से हैं —

1. शिक्षा की आवश्यकता एवं सस्कृत साहित्य
2. संस्कार
3. अग्नि एवं ज्ञान का महत्त्व
4. गुरु-शिष्य महत्त्व
5. विवेक तथा अन्य नैतिक शिक्षाएँ
6 शिक्षा-पद्धति
7. अष्टो विकृतयः
8. भोजन, कृषि कर्म, जल, स्वास्थ्य तथा जाति मुक्त व्यवसाय
9. राष्ट्रीयता

समस्या कथन

उपलब्ध प्रकाशित सस्कृत वांग्मय में शिक्षा/ज्ञान से सम्बन्धित सूक्तियो, आख्यानों और उपाख्यानो का वैपुल्य स्पष्ट सकेत करता है कि इसमें शिक्षा-दर्शन, शिक्षा/शिक्षण विधियो, शिक्षक, शिक्षार्थी तथा शैक्षिक समाज (देश-काल-गत परिवेश तथा परिस्थितियों) की विस्तृत चर्चा है। यह वाग्मय इतना विशाल है कि इसका समग्र पठन वर्तमान परिस्थितियों में कठिन है। यही कारण है कि इसमें विद्यमान शैक्षिक सामग्री का शैक्षिक अपेक्षाओं के अनुरूप यथावसर उपयोग नहीं हो पाता है।

उद्देश्य

प्रकाशित सम्पूर्ण (प्रसिद्ध) संस्कृत वांग्मय का आलोकन कर उसमें विद्यमान शिक्षा-दर्शन, विधियो, शिक्षक-शिक्षार्थी, परिवेश तथा परिस्थितियों से सम्बद्ध समस्त उपयोगी एवं प्रामाणिक सामग्री का चयन करके एक ''ससाधन पुस्तक'' (सोर्स बुक) बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया गया, ताकि संस्कृत साहित्य में बहुआयामी शिक्षा सम्बन्धी जानकारी प्रदान कर उक्त अभाव को पूरा किया जा सके, जिसके द्वारा शिक्षाशास्त्रियो, संस्कृत प्रशिक्षण पाठ्यक्रम निर्माताओं, संस्कृत शिक्षक प्रशिक्षको, पाठ्यपुस्तक निर्माताओ, अध्यापको एव शोध छात्रों को लाभान्वित कराया जा सके।

सम्पूर्ण प्रतिवेदन मुख्यत· ''ऋग्वेद'' पर आधारित है, यद्यपि यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषदों एव सूत्रग्रन्थों विशेषतः गृह्यसूत्रों एव कल्पसूत्रो को भी आधार बनाया गया है। यत्र तत्र धर्म सूत्रों की भी सहायता ली गई है। इस प्रतिवेदन में वेद के 6 अगो की भी सहायता ली गई है। विशेष उदाहरण ऋग्वेद एव अथर्ववेद से ही लिए गए हैं।

शिक्षा की आवश्यकता एवं संस्कृत साहित्य

समर्थ होना के लिए शक् धातु का प्रयोग होता है। आंग्ल भाषा में एतदर्थ 'can' का प्रयोग होता है। इसी शक् का सन्नन्त रूप ''शिक्ष'' है। इसमें अङ्पूर्वक टाप् प्रत्यय लगाने से ''शिक्षा'' पद निष्पन्न होता है। यह धातु सीखने-सिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। आचार्य सायण और वेकट माधव ने ''शिक्षा'' शब्द को शिक्षते दानकर्मा से निष्पन्न माना है। वेद मे शिक्षा शब्द से सम्बन्धित अनेक शब्द प्राप्त होते हैं, उदाहरणार्थ–शिक्षते, शिक्षति, शिक्षसि, शिक्षत:, शिक्षात्, शिक्षा, शिक्षमाणः, शिक्षानर इत्यादि।

ऋग्वेद में इन्द्र को ''शिक्षानर'' कहा गया है जिसका अर्थ कोष में 'सहारा देने वाला'' किया गया है। सातवलेकर ने इसका अर्थ 'दानियों का नेता' किया है। इसी तरह ऋग्वेद मे इन्द्र की शिक्षक के रूप में स्तुति की गई है। ऋग्वेद में 'शिक्षा' शब्द से सम्बन्धित जो भी शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनका अर्थ प्राय· दानशीलता से जोड़ा गया है चाहे वह इन्द्र के विषय में हो अथवा किसी अन्य देवता के विषय में। यहाँ यह कहना सर्वथा समीचीन होगा कि 'शिक्षा' सम्बन्धित कर्म को ऋग्वेदकाल में अत्यन्त पुनीत माना जाता था।

जीवन के लिए उपयोगी तमाम आदर्श भी शिक्षा कहे जाते हैं। गुरुओ, माता-पिता तथा अन्य बड़ों से प्राप्त होने वाले व्यावहारिक ज्ञान को भी शिक्षा कहते हैं। शिक्षा की आवश्यकता क्यो ? ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है और ज्ञान, बिना शिक्षा के सम्भव नहीं है। इस पर यदि यह दलील दी जाए कि हमें मुक्ति नहीं चाहिए, हम सांसारिक हैं, मुक्ति पर विश्वास नहीं करते तब यह कहा जा सकता है कि 'उत्तम सांसारिक जीवन' व्यतीत करने के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता है। ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है कि हमें लोकोन्नति प्रदान करो तथा मुक्ति भी प्रदान करो अर्थात् लोकोन्नति से सम्बद्ध शिक्षा प्रदान करो और ज्योति विषयक (मुक्तिविषयक) शिक्षा दो। शिक्षा बिना लोक में व्यक्ति का जीवन नारकीय प्रतीत होता है। शिक्षा रहित व्यक्ति उस घसिहारन के सदृश है जो तालाब के किनारे 'हीरे' को पत्थर समझकर उससे अपने पैरों की गन्दगी साफ कर उसे (हीरे को) वहीं पर फेंककर चली आई। शिक्षा के बिना व्यक्ति शिक्षित समाज में ठीक उसी प्रकार लगता है जिस प्रकार राजहंसों के बीच मे बगुला। दूसरे शब्दो में शिक्षा-रहित व्यक्ति आँख से देखता

हुआ भी अन्धा है, कान से सुनता हुआ भी बहरा है, पैर से चलता हुआ भी लंगड़ा है और हाथों का उपयोग करता हुआ भी वह हाथ से लूला कहा जा सकता है।

संस्कृत भारतीय सस्कृति का कोष है। हमारे आदर्शों, मान्यताओं एवं मूल्यों का मुख्य स्रोत है। हमारी परम्पराओं की प्राण वाहिका है। संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी एव सम्पोषिका है। यह आर्य भाषाओं की जननी होने के साथ ही साथ आर्येतर अन्य भाषाओं की धात्री भी मानी जाती है। भारत को भलीभाति समझने के लिए 'सस्कृत' ही एकमात्र शरण है क्योंकि भारतीय समाज की जड़ें अत्याधिक गहरी हैं और उन तक पहुँचने या उन्हें समझने के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन ही एकमात्र प्रमुख सोपान है। सस्कृत वाग्मय अत्यन्त विशाल है। विविध शास्त्रों से सम्बद्ध अनेक विषयों पर असख्य एव प्रामाणिक ग्रन्थराशि इस माषा में विद्यमान है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिस पर संस्कृत में ग्रन्थ न हों। उत्तम जीवन के लिए नानाविध शास्त्रों का संस्कृत में होना सस्कृत के सस्कृति–पोषकत्व का परिचायक है। एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण संस्कृत वाग्मय का अध्ययन असम्भव है। इसी से इसकी विशालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कार

सस्कृत साहित्य में शिक्षा पर ठोस आकलन करने के लिए सस्कृत साहित्य में झलकती संस्कृति का विहंगावलोकन आवश्यक है। सभी इस बात से सहमत हैं कि संस्कृत की नींव संस्कारों पर निर्भर है अर्थात् संस्कार ही संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष के प्रमुख या एकमात्र हेतु हैं। अतः संस्कारों की चर्चा करना परमावश्यक हो जाता है।

"संस्कार" शब्द का अभिप्राय है 'ठीक करना' या उपयुक्त बनाना। ऋग्वेद में 'संस्कृत' शब्द 'धर्म' के लिए प्रयुक्त हुआ है। सस्कार शब्द उपनयन के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। शबर ने संस्कार शब्द की व्याख्या के अर्थ में बताया है कि संस्कार वे क्रियाएँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं। यह योग्यता दो प्रकार की होती है–

1. पाप मोचन से उत्पन्न योग्यता
2. नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता

यह एक विलक्षण योग्यता है, जो शास्त्रविहित क्रियाओं के करने से होती है। यह दो प्रकार की मानी जाती हैं—

1. जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य क्रियाओं (उपनयनादि से अध्ययनादि तक)
2. दोष (गर्भाशयादि के दोषों से) मुक्त होता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार "संस्कार करने से बीज-गर्भ से उत्पन्न दोष मिट जाते हैं।"

व्यास ने 16 सस्कारों का उल्लेख किया है– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णबेध, उपनयन, व्रतादेश, वेद स्वाध्याय, केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अग्नि परिग्रह।

अग्नि एवं ज्ञान का महत्त्व

वैदिक ऋषि अग्नि की अत्याधिक प्रशंसा करते हैं। उनके अनुसार 'अग्नि ही हमारा जीवन है, प्राण है, सर्वप्रदाता है उपास्य है, पूज्य है, आचार्य है'। संभवतः अग्नि के रूप को ऋषियों ने अनेकों प्रकार से समझा होगा, जाना होगा। ऋषि कहते हैं कि अग्नि की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए। घर की अग्नि कभी बुझनी (शान्त) नहीं चाहिए। भारतवर्ष के बहुत से अंचलों में अभी भी घर की 'स्थूल अग्नि' की सुरक्षा यत्नपूर्वक की जाती है। चूंकि थोड़ी सी अग्नि से बड़ी अग्नि का विकास किया जा सकता है और उससे अनेकों लोगों को अग्नि प्रदान की जा सकती है। संभवत. जिस प्रकार अग्नि का अनन्त स्वरूप है, लघु आकार से वृहदाकार बनाया जाता है उसी प्रकार थोड़े से ज्ञान को बॉटकर उसका विस्तार किया जा सकता है। अतएव अग्नि का वैदिक जीवन में बहुत बडा महत्व समझा गया। यही कारण है कि अपौरूषेय वेदों में प्रथम वेद 'ऋग्वेद' के प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त के प्रथम मंत्र में अग्नि की उपासना की बात से ही वेद का आरम्भ हुआ है।

ऋषि मानते हैं कि अग्नि की सेवा से समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। ऋषि के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के लिए अग्नि की आराधना के साथ ही साथ सरस्वती की उपासना भी करनी

चाहिए। विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती से सम्बद्ध अनेको मंत्र मिलते है। सरस्वती अर्थात् विद्या की देवी की कृपा पाकर दुष्ट मनुष्य भी विद्वान बन जाते हैं। सरस्वती की उपासना करने वाले दीर्घायु होकर उत्तम सन्तान की प्राप्ति करते है। सरस्वती हमारी अभिलाषाओ की पूर्ति करती है।

वैदिक चिन्तको के अनुसार ज्ञान के बिना इस जगत में कुछ भी नहीं है। साधन सम्पन्न पुत्र के लिए भी अक्षर ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है। साधनहीन लोगो के लिए तो अक्षर ज्ञान आवश्यक है ही। ऋषि के अनुसार अपने जीवन को धन्य बनाने के लिए किसी से भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपने पुत्र की शिक्षा और उसकी कुशलता पर ध्यान दे। देवत्व के लिए भी योग्यता एव यत्न आवश्यक है। उत्तम व्यक्ति के सम्पर्क में रहने की बात भी ऋषि कहते है। ऋग्वेद मे कहा गया है कि मनुष्य ज्ञानी, निरीक्षक बनकर तथा धन प्राप्त कर दुष्टों का दमन करे। अनुभवी व वृद्ध पुरुष से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। विद्वानों की रक्षा ईश्वर करता है और वही ईश्वर दुष्टों का दमन भी करता है।

ऋग्वेद मे कहा गया है कि "ज्ञान की कृपा से मनुष्य ऐश्वर्यो की प्राप्ति कर सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य पहले स्वय ज्ञानी बने फिर दूसरों को ज्ञानी बनाए। तेजस्वी होकर अनेको ऐश्वर्यो को प्राप्त करे। ज्ञान से युक्त होकर ही मनुष्य अधकार को पार करके ज्योति को प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य को दूरदर्शी भी होना चाहिए।"

गुरु शिष्य महत्व

आचार्य का यश और अपयश छात्र की योग्यता पर निर्भर करता है। फलत. छात्र जितना ही योग्य होगा आचार्य का यश उतना ही बढेगा। वह ब्रह्मचारी (छात्र) अपने तप (स्वाध्याय, अध्ययनादि) से अपने आचार्य को परिपूर्ण बनाता है। जो आचार्य अपने शिष्य को योग्य बनाने में अक्षम रह जाते हैं उनका आचार्यत्व सिद्ध नहीं माना जाता। इसी प्रकार जो छात्र अपनी योग्यता, लगन एवं स्वाध्यायादि तप से जगत को आलोकित नहीं कर पाते वे भी अच्छे छात्र नहीं कहे जा सकते। ऋषि ब्रह्मा आचार्य को छात्र के माता और पिता दोनो मानते हैं। यदि छात्र अपने आचार्य को अपना माता-पिता समझे और छात्र के माता-पिता भी आचार्य को अपनी संतान का माता-पिता समझे तो शिक्षा जगत् मे अनुभव की जाने वाली बहुत सी बुराइयों का समाधान स्वत ही हो जाए। ऋषि ब्रह्मा ने जोरदार आग्रह करते हुए कहा है कि योग्यतम आचार्य के साथ रहकर ही शिष्य को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। ऋषि ब्रह्मा कहते है कि ज्ञान विज्ञान के उपदेश का अधिकार अनुभवी वृद्धो को ही है अर्थात् अनुभवी जन ही उपदेश (शिक्षा देने) का कार्य करें।

उपदेश सरलरूप में दिए जाने चाहिए। सरल रीति से निरन्तर किया जाने वाला अभ्यास कठिन से कठिन कार्य की सिद्धि सम्पन्नता प्रदान कराने मे सक्षम होता है। वैदिक ऋषि इस बात को भली भांति समझते थे कि एक तरह (उम्र के) छात्रो की बुद्धि (बौद्धिक क्षमता) में पर्याप्त अन्तर भी होता है। जिस कारण एक कक्षा के छात्र किसी भी उपदेश को एक समय में एक ही प्रकार से समझने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। आज भी इस संदर्भ मे समझा जा सकता है कि एक कक्षा के सभी छात्र एक ही प्रकार से तथा एक ही समय में किसी भी ज्ञान अथवा ज्ञान विशेष को नहीं समझ सकते हैं। विद्यार्थियों से भरी कक्षा के छात्रों की बौद्धिक क्षमता में अन्तर होता है। इस बौद्धिक अन्तर को समझते हुए आचार्यगण अपनी अध्यापन व्यवस्था में यथावश्यक परिवर्तन एवं पार्थक्य बनाते हुए अध्यापन करते हैं। मधुमक्खियों के माध्यम से ऋषि अर्थवा कहते हैं कि जिस प्रकार मधुमक्खियाँ विभिन्न पुष्पों से मधु एकत्र करती हैं उसी प्रकार ज्ञान की प्राप्ति भी नाना विद्वानों से ही की जा सकती है। ऋषि के अनुसार स्थान-स्थान से मधु एकत्र कर एक स्थान में भरने वाली मधुमक्खियों की तरह प्रयत्न एवं पुरुषार्थ कर ज्ञान का सचय करना चाहिए। मधुमक्खियाँ एकनिष्ठ होकर नाना पुष्पों से मात्र आवश्यक रस को ही लेती है उसी प्रकार छात्रो/अध्यापकों को भी विद्वानों से प्रयत्न, लगन और बुद्धिमानी से अपेक्षित रसवत ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

विवेक तथा अन्य नैतिक शिक्षाएँ

ऋषियों ने शिक्षा का अर्थ विवेक माना है। विवेक से युक्त होने पर ही व्यक्ति शिक्षित कहलाने योग्य होता है। ऐसे व्यक्ति ही उत्तम-अनुत्तम, उच्च्य-निम्न, सत-असत, स्तुत्य-निन्दय आदि का सम्यक बोध कर समाज में प्रतिष्ठा पा सकते हैं। वे ही समतुल्य परिस्थितियों में अपने जागृत विवेक से राजहस की भाति दूध का दूध और पानी का पानी कर सकने का निर्णय ले सकते हैं।

मन को एक महत्त्वपूर्ण नियामक बताया गया है जिसके द्वारा व्यक्ति सफल या विफल होता है। मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का प्रमुख कारण है। मन की एकाग्रता की आवश्यकता के साथ ही साथ मन और बुद्धि की अनुकूलता पर भी जोर दिया गया है। ऋषि कहते हैं कि मन, बुद्धि तथा वाणी एवं ज्ञान परस्पर अनुकूल हों। एक स्थान पर कहा गया है कि पवित्र बुद्धि से किए गए मनोरथ कभी विफल नहीं होते। सुकर्म तथा सुबुद्धि से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। इसी संदर्भ में अहंकार की भूरि-भूरि भर्त्सना भी की गई है। वाणी की मधुरता को सब सुखों का मूल माना गया है, परन्तु ऋषि यह चेतावनी भी देते हैं कि मीठी वाणी किन्तु कुटिल हृदय वालों से सावधान रहना चाहिए। विनम्र होना ऋषियों को परम अभीष्ट है। आधुनिक विद्वानों ने भी शिक्षा (विद्या) के प्रथम फल के रूप में विनम्रता को ही स्वीकार किया है। विनम्र व्यक्ति पूजनीय होता है। जो बड़ों के प्रति विनम्र होते हैं वे ही बुद्धिमान् कहे जाने योग्य हैं। बड़ों की सेवा करने वालों की आयु, विद्या, यश और शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

भारतीय मान्यता प्रातःकाल उठने की पक्षधर है। ऐसा माना जाता है कि उषाकाल में उठना सब प्रकार से उपयोगी है। श्रेष्ठजनों के मार्ग का अनुसरण करने से ज्ञानी बना जा सकता है। ऋषि उठने-बैठने के स्थानों की शुचिता पर भी बल देते हैं। उनकी मान्यता है कि तेजस्वी व्यक्ति सदा तेजयुक्त और प्रशंसनीय स्थानों पर ही बैठते हैं। जीवन में स्थान का बड़ा ही महत्व है। यशस्वी बनने के लिए उत्तम कर्म परमाधार माने जाते हैं। ऋषियों के अनुसार मनुष्य को अपने ही शरीर से कमाए गए अन्न का ही उपभोग करना चाहिए। वैदिक ऋषि नाना प्रकार से परिश्रम एवं कर्म की महत्ता का भी उपदेश देते हैं। व्यक्ति को सतत् कर्मशील होना चाहिए। उत्तम कर्मों के फलस्वरूप ही मनोरथों की सिद्धि होती है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना आवश्यक है। व्यक्ति को अपनी मदद स्वयं करनी चाहिए। परिश्रम से ही कार्य सिद्ध होता है। नियमानुसार चलने वाले का कल्याण होता है। नियम से सूर्य उदय होता है, समस्त जगत सूर्य से कल्याण प्राप्त करता है। नियम से वृक्ष फल देते हैं। दूसरों का उपकार करना ही पुण्य है और दूसरों को परेशान करना पाप है। अतः पुण्य से प्रीति करो। ऋषि ऋण लेकर जीवन व्यतीत करने वालों की निन्दा भी करते हैं। अत्याधिक कृपणता को उन्नति में दोष माना गया है। ऋषि धन बांटने के पक्षपाती हैं। उनके अनुसार धन को बांटने से धन की वृद्धि होती है।

शिक्षा पद्धति

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का मुख्य स्तम्भ आचार्य गुरु या उपाध्याय होता था। अध्यापन और अध्ययन सम्पूर्ण मौखिक था। विद्यार्थी को गुरु के पास ही रहना पड़ता था। विद्यार्थी आचार्य से अपने कर्तव्य (आचार) एकत्र करता था। इसी कारण अनुकरण करने योग्य विद्वान ही आचार्य कहलाते थे। शिष्य गुरु से उच्चासन पर नहीं बैठता था। बैठने की स्थिति में न तो वह किसी वस्तु का सहारा ही लेता था और न ही गुरु के आसन पर कदापि बैठता था।

अध्ययन के साथ-साथ ब्राह्मण का कर्त्तव्य पढाना भी होता था। अध्यापन कार्य के लिए प्रार्थना करने पर ज्ञान बाटने से मुकर जाने पर वह विफल माना जाता था। उस समय अध्ययन का साहित्य भी बहुत विशाल था।

प्रताड़न अथवा दंड के संदर्भ में कहा गया है कि शब्दों द्वारा विद्यार्थी को प्रताड़ित करना चाहिए। साथ ही अपराध की गुरुता के अनुसार धमकाना, भोजन न देना, शीतल जल में स्नान कराना तथा सामने न आने देना आदि दंडों में से कोई दंड दिया जा सकता है। सिर पर मारने का कोई विधान नहीं था।

वैदिक विद्यालय

आर्यो की शिक्षा प्रणाली का ब्रह्मचर्य आश्रम से अभिन्न सबध था। अथर्ववेद में कहा गया है कि जो ब्रह्मचारी तपपूर्वक वेद का स्वाध्याय करता है वह विद्या से पूर्ण होकर इस धराधाम पर प्रकाशित होता है। उत्तर वैदिक युग में सभी वर्गों के व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। यजुर्वेद में कहा गया है कि "हितकारिणी वाणी का प्रवर्तन सभी वर्णों के व्यक्तियों के लिए किया गया है।"

शुद्ध उच्चारण

ऋग्वेदकालीन शिक्षा पद्धति शुद्ध उच्चारण को विशेष महत्व देती है। उस काल में उच्चारण में स्वरों का विशिष्ट महत्व था। ऋग्वेद मे अर्थ को समझे बिना शब्द मात्र का अध्ययन निन्दित माना गया है। इस प्रकार वैदिक विद्यार्थी अत्यन्त शुद्ध उच्चारण, उचित शब्द प्रयोग एव अत्याधिक अभ्यास और अर्थानुसधान के कारण शिक्षा के उदात्त अर्थो को चरितार्थ करते थे।

वैदिक शिक्षा में श्रवण और स्वाध्याय की दो विधियाँ प्रचलित थीं। श्रवण शिक्षा प्रणाली में मत्रों के कंठस्थ करने की प्रक्रिया में मंत्रों के छन्दों, पदों, अक्षरों और ध्वनि के उच्चारण को समुचित रूप से स्पष्ट किया जाता था।

श्रवण विधि से सहस्त्रों वर्षों तक वेदों का अध्ययन होता रहा। गुरु के पढाए वाक्यों को अनुकरण करते हुए छात्रगण बार-बार दोहराते थे। बारम्बार अभ्यास से छात्रों की बुद्धि में पैनापन आता था। गुरुजन छात्रों की बुद्धि को विकसित करने के लिए वेद मत्रों का अभ्यास आठ प्रकार से कराते थे। जिन्हें अष्टौविकृतः कहा गया है।

भोजन, कृषि-कर्म, जल, स्वास्थ्य तथा जातिमुक्त व्यवसाय

भोजन

जीवन में भोजन का विशेष महत्त्व है। ऋषियों के अनुसार अच्छे भोजन का ही सेवन करना चाहिए, क्योंकि अच्छा भोजन ही सच्ची बुद्धि को विकसित करने में सहायक होता है। अन्न सभी का पालक है। अतः अन्न का सदुपयोग एव सदुत्पादन किया जाना चाहिए। भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे शक्ति का विकास हो, पोषण मिल सके, ऐश्वर्य की वृद्धि हो सके तथा बुद्धि किसी भी प्रकार से दूषित न होने पाए। अन्न की महत्ता को नकारना गलत होगा। अन्न की प्राप्ति हमें कृषि कर्म द्वारा होती है।

कृषि कर्म–पशु–पालन

वैदिक ऋषि "कृषि कर्म" की ओर भी सकेत करते हैं। ऋषि का कथन है कि अन्न प्राप्त्यर्थ 'कृषि कार्य' करना चाहिए। कृषि कर्म से सम्बद्ध सभी सुखी रहें। बैल सुखी रहें। सभी मनुष्य आनन्दित हों। उत्तम हल चलाकर आनन्द से कृषि की जाए। समुचित निर्धारित व्यवस्था के अनुरूप कृषि कर्म किया जाए। ऋषि भूमि की वन्दना करने की बात भी करता है। ऋग्वेद में कृषि कर्म की ओर संकेत किया गया है तथा जुआ खेलने की निन्दा की गई है। कृषि कर्म बहुत कुछ "पशु–पालन" की अपेक्षा रखता है। अनेकों मंत्र पशु-पालन के संदर्भ में मिलते हैं। पशु-पालन के वैशिष्ट्य को समझाते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं कि पशु-पालन से प्राणी हृस्ट-पुष्ट रहता है तथा उसका घर शोभायमान लगता है। वैदिक साहित्य में पशु-पालन विशेषकर गोपालन की बात अत्याधिक जोर देकर कही गई है। वैसे सिह, मृग, वृषभ, अश्व आदि पशुओं की बहुधा चर्चा की गई है।

जल स्वास्थ्य

प्रकृति की गोद में रहने वाले महामनीषियों के उपदेशों में 'जल' की चर्चा न हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वेद में जल से सम्बद्ध अनेक मंत्र विद्यमान हैं। ऋषियों के अनुसार 'जल सम्पूर्ण सृष्टि' को प्राणान्वित करते हैं, अतः जल का दुरुपयोग करना दोषपूर्ण है। जल का दुरुपयोग वास्तव में जल की हिंसा करना है। स्वास्थ्य के लिए जल का सही, उचित

एवं निर्धारित परिमाण में उपयोग करणीय है। आजकल 'जल' के प्रदूषण की भी महती समस्या है। लोग जल का प्रयोग तो करते हैं। जल के महत्व को जानते भी हैं किन्तु जल के विषय में जिस जागरुकता की अपेक्षा है वह लोगों में नहीं है। जल सभी का श्रेष्ठतम पालन-कर्ता है। अतः जल को माता कहा जाना सर्वथा समीचीन है। सूर्य से सम्पृक्त हुआ जल तुलनात्मक दृष्टि से अधिक लाभकारी एव गुणकारी होता है। ऋषि जल को अमृत कहते हैं। जल औषधि के समान है। ऋषि स्वस्थ रहने की आवश्यकता को भी नहीं भूलते। उनका कहना है कि 'सूर्य' से नाना रोगों का शमन होता है। अतः सूर्य की उपासना करनी चाहिए। सूर्य की किरणों के प्रयोग से रोगों को नष्ट किया जा सकता है। ऋषि रहने की सुविधा के लिए सुन्दर आवास की भी कल्पना या प्रार्थना करते हैं। तदनुसार सभी सुख सुविधाओं से सम्पन्न एवं शत्रुरहित आवास होना चाहिए।

जाति मुक्त व्यवसाय

वैदिक ऋषियों के मंत्रों द्वारा तत्कालीन समाज का अनुमान लगाया जा सकता है। वैदिक मत्रों में कहीं भी किसी व्यवसाय का किसी जाति विशेष के लोगों के साथ नैसर्गिक सम्बन्ध होना प्रतीत नहीं होता है। ऋषि के अनुसार व्यवसाय और जाति दोनों अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त नहीं समझे जा सकते। एक ही परिवार के अनेकों लोग अनेक प्रकार के व्यवसाय करने के लिए स्वतन्त्र थे। व्यवसाय में जातिगत बन्धन आड़े नहीं आता था।

राष्ट्रीयता

लोक कल्याण की महान भावना से अनुप्राणित वेदों में राष्ट्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। राष्ट्र संचालन में राजा की सहायता के लिए समिति तथा सभा नामक सगठनों का उल्लेख मिलता है। राज्याभिषेक के समय राजपुरोहित राष्ट्र नायक को उसके अधिकारों और कर्त्तव्यों का स्मरण कराते हुए उसे राष्ट्र को समर्पित करता था।

वैदिक ऋषियों में राष्ट्रीय भावना की उदात्तता भी देखने को मिलती है। जिस प्रकार पत्ता वृक्ष पर आश्रित होता है उसी प्रकार राष्ट्र प्रजा पर आश्रित होता है। वैदिक ऋषि जब राष्ट्र की चर्चा करता है तो उसके लिए राष्ट्र से अभिप्राय एक विशिष्ट भूखड पर अवस्थित मानवीय संस्कृति से होता है जिसकी वाहिका वहाँ की एक राष्ट्रभाषा होती है। राष्ट्रीयता का प्रथम लक्षण है कि व्यक्ति अपने को राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग माने। साथ ही वह राष्ट्र के प्रति गर्व का अनुभव करे जिसमें उसने जन्म लिया है। राष्ट्रीयता का तृतीय लक्षण है राष्ट्रभूमि में मातृत्व की भावना। इस प्रकार ऋषि ने भूमि की महानता का भी गान किया है।

पुस्तक समीक्षा

1

पुस्तक	·	**राजस्थान शिक्षा कर्मी प्रोजेक्ट–एक रिपोर्ट**
प्रकाशक	:	राजस्थान शिक्षा कर्मी बोर्ड जयपुर, राजस्थान
प्रकाशन वर्ष		1994
समीक्षक	:	**मंजीत सेन गुप्त**

राजस्थान के दूर-दराज के इलाकों तथा पिछड़े हुए गांवों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार व पुनर्जीवन हेतु स्वीडिश इन्टरनेशनल डेवेलपमेन्ट अथोरिटी (सीडा) के सहयोग से प्रदेश मे शिक्षा कर्मी परियोजना का शुभारम्भ किया गया। इस परियोजना का मुख्य ध्येय समुदाय के सहयोग व सहभागन द्वारा प्राथमिक शिक्षा की दो प्रमुख समस्याओं का समाधान करना है। ये समस्याएँ हैं– (क) दूर-दराज व दुर्गम इलाकों में स्थित विद्यालयों में अध्यापकों की अनुपस्थिति की समस्या, तथा (ख) बच्चों विशेषत' लड़कियों के भर्ती में नितांत कमी तथा बीच में ही विद्यालय छोड़ने के उच्चदर की समस्या।

शिक्षाकर्मी की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा के क्षेत्र में एक परिवर्तन लाने की भूमिका निभाने वाला तभी प्रभावी हो सकता है जबकि वह स्थानीय निवासी हो। यह रणनीति विशेष तौर पर उन दूर व पिछडे गॉवों के लिए महत्वपूर्ण है जहाँ किसी बाहरी व्यक्ति के लिए ठहरना या स्वीकृत होना अति कठिन हो। ऐसी स्थिति में अध्यापक की शैक्षिक योग्यताओं के स्थान पर उसके एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करने की तत्परता ही अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

यह परियोजना जो औपचारिक रूप से 1987 में प्रारंभ हुई राजस्थान के 23 जिलों के 57 ब्लॉकों के 940 विद्यालयों में लागू की जा चुकी है। भर्ती किए गए बच्चों की कुल संख्या 95,000 है जिनमें से 21,000 बच्चे रात्रिकालीन प्रहर पाठशालाओं (सुविधाजनक समय के विद्यालय) में उपस्थिति देते हैं। कुल मिलाकर 2205 शिक्षा कर्मी कार्यरत हैं। इन शिक्षा कर्मियों ने ग्राम समुदाय में न केवल सम्मान व मान्यता प्राप्त की है अपितु यह मॉग भी बढती जा रही है कि इस परियोजना का लाभ और अधिक ग्रामों को तथा राजस्थान के भीतरी व दूर स्थित गाँवों को भी मिले।

यह रिपोर्ट शिक्षाकर्मी परियोजना के प्रथम चरण की समाप्ति पर जारी की गई है जिसमें अब तक की उपलब्धियों, कमियों व रणनीतियों का मूल्यांकन किया गया है ताकि द्वितीय चरण में इस परियोजना को और बेहतर ढंग से लागू किया जा सके।

प्रस्तुत रिपोर्ट में सर्वप्रथम राजस्थान राज्य के शैक्षिक परिदृश्य का एक विहगावलोकन प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् इस परियोजना की पृष्ठभूमि देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि पूर्व में राज्य के 'सिलोरा ब्लॉक' में जिस नवाचार का सूत्रपात हुआ था, यह परियोजना मुख्य रूप से उसी पर आधारित है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ 'सिलोरा ब्लॉक' में प्राथमिक अध्यापक कार्यरत थे वहाँ इस परियोजना में उनको शैक्षिक कार्यकर्ताओं की एक टोली जिन्हें शिक्षाकर्मी कहा गया द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। साथ ही यह शिक्षाकर्मी गाँव के बाहर से आने वाले अध्यापक

न होकर स्थानीय समुदाय से ही लिए गए लोग हैं जो उसी गॉव के निवासी भी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा इसके 'प्रोग्राम ऑफ ऐक्शन' में प्राथमिक शिक्षा के जो उद्‌देश्य दिए गए हैं उन्हीं के अनुकूल प्रस्तुत परियोजना के उद्‌देश्य निम्न थे—

1 राजस्थान राज्य के दूर-दराज़ के इलाकों तथा सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछडे ग्रामों जहॉ वर्तमान प्राथमिक शिक्षा विशेष रूप से नाकाम सिद्ध हुई, मे प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण करना।

2 स्थानीय आवश्यकताओ और परिवेश को ध्यान मे रखते हुए शिक्षा की विषय वस्तु और उसके कलेवर में ऐसा परिवर्तन लाना ताकि इन गांवों मे प्राथमिक शिक्षा को गुणात्मक रूप से उन्नत बनाया जा सके।

3. परियोजनान्तर्गत गावो में लडकियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को कक्षा पॉच के सामान्य उपलब्धि स्तर तक लाना।

इन उद्‌देश्यो की प्राप्ति के लिए ग्रामीण समुदाय में से स्वयंसेवी शिक्षण कार्यकर्त्ताओं जिन्हें शिक्षाकर्मी नाम दिया गया का चयन कर उन्हे प्रशिक्षित किया गया ताकि वे प्राथमिक शिक्षा के दिवा और रात्रि केन्द्रों को चला सकें। परियोजना के कार्यान्वयन से सम्बन्धित ब्लॉक, जनपद तथा राज्य स्तर के सभी कार्यकर्त्ताओं को राज्य शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण सस्थान, उदयपुर, सधान (जयपुर), शिक्षाकर्मी बोर्ड के अकादमिक प्रभाग और अन्य गैर सरकारी संस्थाओं के सौजन्य से प्रशिक्षित किया गया। जिन शर्तों पर गावों का चयन किया गया वे थे गांव का दूरत्व, अध्यापक की कमी या अनियमित उपस्थिति, कम भर्ती और पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले छात्रों की अधिकता। स्थानीय समुदाय द्वारा परियोजना के लागू किए जाने में सहयोग की तत्परता को विशेष महत्त्व दिया गया। प्रशिक्षण तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षाकर्मियों को उनकी शैक्षिक योग्यता बढ़ाने में, अध्यापन को प्रभावी बनाने में तथा अन्य सहयोगी क्रियाकलापों को भली प्रकार करने में प्रशिक्षित किया गया। छात्रों को पुस्तकें, स्कूल बैग, अधिगम सामग्री तथा अन्य साज सामान नि:शुल्क प्रदान किया गया। महिला शिक्षाकर्मी प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए गए ताकि उत्साही और समर्पित महिलाओ को समुचित पूरक शिक्षा प्रदान कर उन्हे शिक्षाकर्मी के रूप में नियुक्त किया जा सके। परियोजना के प्रत्येक कदम पर कार्यक्रमो का निरीक्षण व मूल्यांकन सतत् और सघन रूप से किया गया।

परियोजना के प्रथम चरण के मूल्याकन द्वारा जो तथ्य सामने आए उनमे कुछ प्रमुख है —

1 परियोजना के अन्तर्गत 23 जिलों के 57 ब्लॉक मे 940 गावों को सम्मिलित किया गया।

2 2205 समर्पित और उत्साही शिक्षाकर्मियों का चयन और प्रशिक्षित कर उन्हें कार्य में लगाया गया। इन शिक्षाकर्मियों में 41 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के थे।

3. शिक्षाकर्मी विद्यालयो और पहर पाठशालाओं में 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के छात्रो की भर्ती में 300 प्रतिशत वृद्धि पाई गई, जबकि लडकों की भर्ती 50 प्रतिशत से 88 प्रतिशत तक बढी, वहीं लड़कियों की भर्ती 21 प्रतिशत से 65 प्रतिशत तक बढ़ी।

4. समुदाय के सहयोग और सहभागन से प्राथमिक विद्यालयों के परिवेश में काफी उन्नति हुई।

5 अध्ययनो के आधार पर यह भी पाया गया कि पंचायती राज विद्यालयों के मुकाबले शिक्षाकर्मी विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि कहीं अच्छी थी।

रिपोर्ट में, अनुभव के आधार पर, प्रथम चरण में पाये गये कार्यान्वयन की अच्छाइयो और कमियों को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है। जगह-जगह पर रंगीन फोटोग्राफो को सम्मिलित किए जाने के कारण रिपोर्ट का स्वरूप अत्यन्त ही भव्य बन पड़ा है। अन्त में परियोजना के विभिन्न आयामों जैसे– प्रहर पाठशाला, दिवा पाठशाला, महिला शिक्षाकर्मी, प्रशिक्षण, आधारभूत सुविधाएं, मूल्याकन प्रबधन आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए आने वाले पॉच वर्षो की चुनौतियों का लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार राजस्थान शिक्षाकर्मी परियोजना की यह रिपोर्ट शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में मरुभूमि में एक स्वच्छ, शीतल वायु के झोंके के समान आया है जिससे न केवल शिक्षा जगत को अपितु पूरे भारतीय समाज को अनेक अपेक्षाएँ हैं। गावों का उत्थान ही भारत के उत्थान की दिशा में पहला रचनात्मक कदम है।

2

पुस्तक	:	**डीयर टीचर**
लेखक	·	**एम.के. शर्मा** प्रो. ऑफ एजुकेशन, डिब्रूगढ़ यूनीवर्सिटी, डिब्रूगढ, असम।
प्रकाशक	:	ट्रायोग्राफ आफसेट, गणेश चन्द्र दत्त पथ, वैस्ट चौकी डिंगी, डिब्रूगढ, असम।
सस्करण	·	प्रथम
प्रकाशन वर्ष	·	1994
पृष्ठ	:	50
मूल्य	:	25 रुपए
समीक्षक	·	**कृष्ण मुरारी गुप्त**

समाज को अच्छे शिक्षकों की हमेशा आवश्यकता रहेगी। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में अच्छे शिक्षक तैयार करने की प्रक्रिया कठिन है। प्रशिक्षण सामग्री की भाषा विशेष में उपलब्धता एव उसका अध्ययन और भी दुर्लभ है। प्राय अनुभवी शिक्षक-प्रशिक्षक अच्छे शिक्षण के बारे में मौन रहना ही उचित समझते हैं। जब कभी अनुभवी शिक्षक-प्रशिक्षक शिक्षकों से कुछ कहना चाहते हैं तब हमारे सामने "डीयर टीचर" जैसी पुस्तक आती है। यहॉं यह बताना उचित होगा कि अच्छे शिक्षण से क्या तात्पर्य है। विषय को तर्कसगत एव क्रमबद्धता से व्यवस्थित करते हुए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर उपयुक्त उदाहरणों द्वारा यदि कोई शिक्षक कठिन परिश्रम और स्नेह के साथ अपने छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करे तो ऐसे प्रस्तुतिकरण को अच्छा शिक्षण कह सकते हैं।

'डीयर टीचर' में अच्छे शिक्षण को ध्यान में रखते हुए विषयवस्तु को प्रस्तुत किया गया है। प्रायः शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक साहित्य का प्रचुर मात्रा में एक साधारण शिक्षक के लिए अध्ययन करना कठिन है। सामग्री की उपलब्धता भाषा विशेष मे हमारे संदर्भ में और भी कठिन है। अच्छे शिक्षण के लिए आवश्यक साहित्य का अध्ययन कर लेखक ने सरल अग्रेजी भाषा में उदाहरण के साथ अपने विचार 'डीयर टीचर' में प्रस्तुत किए हैं। शिक्षक के लिए आवश्यक तेरह प्रकरणों को क्रमबद्ध कर उदाहरण सहित पुस्तक में दिया गया है।

प्रथम प्रकरण "कंटैक्स्ट कॅन्फर्स मीनिंग" में लेखक ने उदाहरण के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि प्रसंग के अभाव में कोई भी तथ्य या कथन अपना सही अर्थ नहीं रखता या अर्थ खो देता है या अर्थ स्पष्ट नहीं रहता है। यही कारण है कि छात्र किसी भी विषयवस्तु को ठीक से समझ नहीं पाते। अत· प्रत्येक शिक्षक का यह दायित्व है कि वह शिक्षण को आरभ करने से पहले प्रयुक्त शब्द, पद, अवधारणा, विधि एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से छात्रों के पूर्व ज्ञान से संबद्ध करे। अच्छे प्रस्तुतीकरण से छात्र ज्ञान को ठीक से समझकर अंगीकृत कर लेते हैं।

अगले प्रकरण "ऑर्डर एंड केओस" में लेखक ने व्याख्या की है कि मुख्य रूप से सगठित और क्रमबद्ध ज्ञान को सोचना छात्रों के लिए आसान होता है। वे इस ज्ञान का प्रयोग बाद में भी कर सकते हैं। जबकि असंगठित तत्व

छात्रों के अभ्यास मे कठिनाई पैदा करते हैं। पाठ समाप्ति के बाद छात्रो को ज्ञान की क्रमबद्धता संगठित रूप से समझ में आनी चाहिए और उन्हें इस ज्ञान को अपने पूर्व ज्ञान के साथ जोडने में सफल होना चाहिए। एक अच्छे शिक्षक की सतुष्टि इसी में छिपी है। लेखक ने यह अनुभव किया है कि अधिकतर शिक्षक किसी न किसी स्तर पर कक्षा के अन्दर अपने विषय की क्रमबद्धता एव संगठन को छात्रों के पूर्व ज्ञान के साथ नहीं जोड़ पाते है। क्या इसका कोई हल है ? लेखक ने सलाह दी है कि शिक्षक को लगातार छ· माह तक प्रतिदिन छ· घंटे अपने विषय का अध्ययन करना चाहिए। विषय का पूर्ण ज्ञान होना एक अच्छे शिक्षक के लिए आवश्यक है। प्रकरण 'प्रायोरिटी ऑफ दी होल' में व्याख्या की गई है कि अवयवों को केवल साथ रखने से ही पूर्ण नहीं बन जाता है। अवयवों को एक विशेष क्रम और स्थान पर रखकर ही पूर्ण की संकल्पना संभव है। संरचना का अर्थ ही अवयवों को सुव्यवस्थित रूप से रखना है। इस अर्थ में पूर्ण को हिस्से करके नहीं देख सकते हैं। शिक्षक का दायित्व है कि वह अवयवो को इस प्रकार से समायोजित करे कि छात्र विषयवस्तु के सदर्भ की इकाई को पूर्ण रूप से समझ सकें। लेखक ने इतिहास का उदाहरण देकर बताया है कि हमारी कक्षाओं में इतिहास को समग्र रूप से प्रस्तुत नहीं किया जाता है। शिक्षण में केवल असंबद्ध और अलग-अलग घटनाओ और व्यक्तियों का वर्णन किया जाता है। 'द नाइन डॉट प्रोबलेम' में सम्पूर्ण के हल की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। कक्षा में ऐसी परिस्थितियां पैदा की जाती है या हो जाती हैं कि सभी का ध्यान स्वनिर्धारित सीमाओ मे सिमट कर रह जाता है। एक शिक्षक के नाते इन सीमाओ को समाप्त करना शिक्षक एव प्रधानाचार्य दोनों का दायित्व है। कक्षा में शिक्षण एव छात्रों का अधिगम दैनिक अनुभव से पूरी तरह कट कर रह गया है। इस स्थिति को सुधारने की आवश्यकता है। 'द इंपोर्ट आफ फॉर्म एड आर्डर' में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि परिचित शब्दों एव तथ्यों को एक क्रम में रखकर भावपूर्ण बनाया जा सकता है और समझा जा सकता है। यदि शब्दों का क्रम बिगाड़ दिया जाए तो वे अर्थहीन हो जाते है। 'कट्रोल्ड नोइज इज़ वैल्कम' में कक्षा मे कराए जाने वाले कार्यकलापों का वर्णन किया गया है। इन क्रियाओं का अभ्यास कक्षा में करने पर कुछ शोर अवश्य होगा। हमारी शिक्षा व्यवस्था को यह सहन करना सीखना होगा। 'स्विमिंग एंड स्केटिंग' मे समय, स्थान और परिस्थितियों का अधिगम से संबध स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

प्रकरण 'कन्वरजैट एण्ड डाइवरजैट थिंकिंग' में शिक्षक से छात्रों द्वारा दिए गए उत्तरों पर विशेष ध्यान देने को कहा गया है। कभी भी और किन्हीं भी परिस्थितियो में कक्षा के छात्रों द्वारा दिए गए उत्तर पर परिहास नहीं करना चाहिए और न ही छात्र के साथियों को ही उत्तर पर परिहास करने का अवसर देना चाहिए। इससे छात्रो की सृजनात्मक शक्ति प्रभावित होती है। कक्षा में प्रश्न पूछकर शिक्षक छात्रों का पूर्ण सहयोग पा सकते हैं। 'ऑफ चेक्स एण्ड बिल्स्' मे विस्तृत रूप से इस पर प्रकाश डाला गया है। इस सदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हम सभी सुखद अनुभव याद रखते है और दुखद बातें भूल जाते हैं। अत· शिक्षक को कक्षा मे सुखद अनुभव देने का सतत् प्रयास करना चाहिए। 'इंटर पर्सनल रिलेशनशिप' मे यह चेतावनी दी गई है कि शिक्षक की गतिविधियाँ छात्रों को निष्क्रिय बनाती हैं। अत· शिक्षक को सतत् सावधान रहकर छात्रों को सक्रिय करने के लिए प्रयास करना चाहिए। 'ए ब्लाक ऑफ मार्मलेड' में शिक्षक को यह सलाह दी गई है कि सभी शब्द, अवधारणा, तथ्य, प्रकरण और सूत्र का पूर्ण रूप से वर्णन करना चाहिए। छात्रो की ग्राह्यता पर ध्यान देना चाहिए और उनकी उपलब्धि बढ़ाने के लिए हमे विषयवस्तु को उचित रूप से प्रस्तुत करना चाहिए।

प्रकरण 'टैक्सोनोमी ऑफ आब्जेक्टिब्स' मे लेखक ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि सामान्यतया कक्षा में केवल सज्ञानात्मक शिक्षण ही होता है, भावात्मक पक्ष प्राय उपेक्षित रहता है। उद्देश्यों के तीनों पक्ष–संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक के बीच मे संतुलन रखना शिक्षक के लिए आवश्यक है। न केवल शिक्षण अपितु परीक्षण में भी इसकी झलक मिलनी चाहिए।

अतिम प्रकरण 'मार्क्स आर डिसेप्टिव' में लेखक ने यह

बताने का प्रयास किया है कि हमारी परीक्षा प्रणाली ही दूषित हैं। सूझ या उपयोग मापने के लिए भी हम ज्ञान के प्रश्न ही पूछते हैं।

शिक्षा मे तीनों-शिक्षण विधि, परीक्षा के प्रश्न और छात्रो के अध्ययन की आदतें परस्पर सम्बद्ध हैं। वे न केवल छात्रो मे उपलब्धि को प्रभावित करती है बल्कि शिक्षक की संप्रेषण सामर्थ्य के बारे मे भी बताती है।

यह पुस्तक प्रत्येक शिक्षक को पढ़नी चाहिए। प्रत्येक पुस्तकालय मे यह पुस्तक होनी चाहिए। पुस्तक मे बताए गए उदाहरणो को कक्षा मे सतत् प्रयासों द्वारा लागू किया जा सकता है। कुछ प्रकरणों में बताए गए सिद्धान्तों का अनुकरण करने के लिए शिक्षक मे लगन एव सतत् अभ्यास का होना जरूरी है। पुस्तक सरल अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है। वे लोग जो शिक्षक बनना चाहते है उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ होगा। माता-पिता जो अपने बच्चो को गृहकार्य स्वयं कराते हैं, इन सिद्धान्तो का अनुसरण कर लाभान्वित हो सकते है। 'डीयर टीचर' सही रूप मे एक अनुभवी शिक्षक-प्रशिक्षण द्वारा अपने श्रद्धेय शिक्षक को समर्पित सफल प्रयास है।

वर्ष : त्रयोदश अंक : द्वितीय अक्तूबर 1995

भारतीय

आधुनिक शिक्षा



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको, शैक्षिक प्रशासको तथा शोधकर्त्ताओ को एक मच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामो, जैसे—शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याए, पाठ्यक्रम एव प्राविधि सम्बन्धी नवीन विकास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यो मे शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार और विकास को बढावा देना।

इस पत्रिका की विषय-सामग्री मे विख्यात शिक्षाशास्त्रियो द्वारा लिखे गए लेख, चुनौतीपूर्ण वाद-विवाद, शैक्षिक समस्याओ की आलोचनात्मक विवेचना, शिक्षाशास्त्रियो से भेटवार्ता, नवाचार, पाठको के पत्र तथा पुस्तक-समीक्षा आदि शामिल है। लेखको के द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने है तथा ये किसी भी प्रकार परिषद् की नीतियो को प्रस्तुत नही करते।

प्रकाशन सहयोग

यू. प्रभाकर राव *अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग*

आर एस सक्सेना *प्रभारी मुख्य सपादक*
मीरा कात *सपादक*
राजपाल *सहायक सपादक*
शिव कुमार *उत्पादन अधिकारी*
अरुण चितकारा *सहायक उत्पादन अधि*
जहानलाल *उत्पादन सहायक*

मूल्य एक प्रति : 8.50 रुपये; वार्षिक : 34.00 रुपये

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष : 13 | अंक : 2 | अक्तूबर 1995

विषय-सूची

लेखकों से निवेदन

लेखको से निवेदन है कि रचनाए डबल स्पेस मे टाईप की हुई हों तथा रचनाओ की दो हस्ताक्षरित प्रतिया भेजे। साथ ही यह अवश्य सूचित करे कि प्रेषित रचना अप्रकाशित/अप्रसारित है।

पुस्तक-समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतिया भेजना आवश्यक है। पत्रिका मे प्रकाशित पाडुलिपि का कापीराइट परिषद् के अधीन रहेगा और परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना कोई भी अश पुन प्रकाशित नही किया जा सकेगा।

रचनाएं कृपया इस पते पर भेजे–अकादमिक सपादक, **भारतीय आधुनिक शिक्षा**, शैक्षिक अनुसधान और नीतिगत सदर्श विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली – 110016

जे. कृष्णमूर्ति के दार्शनिक विचारों के शैक्षिक अभिप्रेतार्थ

डा. एन.पी. सिंह

रीडर, शिक्षा विभाग
रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,
बरेली, उत्तर प्रदेश

जे. कृष्णमूर्ति समकालीन भारतीय दार्शनिको में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है। उनके अनुसार मनुष्य अपने भविष्य का निर्माता स्वय है। वह जो बनना चाहता है, बनने के लिए स्वतन्त्र है। आज वह जिन परिस्थितियो मे है, उसका कारण भी वह स्वय है। उन्होंने शिक्षा के एक ऐसे स्वरूप की कल्पना की जो बालक को आत्मविश्वासी बनाए, उसे स्वय का बोध कर सकने की क्षमता प्रदान करे व चयन की स्वतन्त्रता दे। साथ ही जीवन की तैयारी हेतु अवसर प्रदान करे। प्रस्तुत लेख मे लेखक ने जिद्दू कृष्णमूर्ति के यत्र-तत्र फैले हुए विचारो के आधार पर शैक्षिक लक्ष्यों, शिक्षण विधि तथा शैक्षिक निहितार्थ को सरल भाषा एवं बोधगम्य शैली में रखने का प्रयास किया है।

एक स्वतन्त्र विचारक के रूप मे प्रतिष्ठित जे कृष्णमूर्ति समकालीन भारतीय दार्शनिको मे विशिष्ट स्थान रखते है। परम्परा विरोधी के रूप मे अधिष्ठापित उनके दृष्टिकोण का गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि वे महान क्रान्तिकारी ही नही, वरन् महान विद्वान व विचारक भी थे। उनकी विशेषता यह रही है कि वे कोरे आदर्शवादी नहीं रहे, उनका आदर्श व्यवहार मे उतरा और व्यवहार का आदर्श से एकात्म्य स्थापित हुआ। बहुधा बडे-बडे विचारक बडे-बडे आदर्शों का प्रतिपादन करते रहे है परन्तु दिन-प्रतिदिन के जीवन से मान्य आदर्शों को व्यवहार मे उतारने की कोशिश करना जे कृष्णमूर्ति की विशेषता रही है।

श्री कृष्णमूर्ति ने किसी विशेष दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। वे किसी विशेष दार्शनिक सम्प्रदाय से अपने को जोडते भी नहीं। हां, उनके दर्शन का सम्बन्ध व्यावहारिक जीवन से अवश्य है। यदि देखा जाए तो वे प्रत्ययवाद का आश्रय लेकर अध्यात्मवाद की ओर प्रवर्तन करते प्रतीत होते है तथा उन्होने ईश्वरवाद, गुरूवाद एव मोक्षवाद का खण्डन किया है। विचारो की स्वतन्त्रता पर इन्होने अत्यधिक बल दिया। मानव एव उसकी स्वतन्त्रता को एक नए दृष्टिकोण से देखने वाले जिद्दू कृष्णमूर्ति ने यद्यपि शिक्षा के बारे मे परम्परागत ढग से बहुत कुछ नही लिखा है तथापि उनके दार्शनिक विचारो मे कतिपय महत्वपूर्ण शैक्षिक तत्व निहित है। वस्तुत आवश्यकता होती है उन्हे खोजने की तथा विचारो का शैक्षिक सन्दर्भ मे विश्लेषण करने की, जिससे प्रगति तथा नीति निर्देशन मे सहायता प्राप्त हो। प्रस्तुत अध्ययन मे ऐतिहासिक–आलोचनात्मक विश्लेषण विधि के आधार पर प्राथमिक तथा द्वितीयक प्रदत्तो का प्रयोग किया गया है।

जीवन परिचय

जे कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 को आन्ध्र प्रदेश के मदनापल्ली मे एक तेलुगु ब्राह्मण परिवार मे आठवीं सन्तान के रूप मे हुआ। बाल्यकाल से ही उनमें रहस्यपूर्ण स्वभाव के लक्षण दिखाई देने लगे। बचपन मे ही उनकी मा का देहान्त हो जाने के कारण परवरिश उनके पिता नारायनिया द्वारा की गई। पढाई मे विशेष रुचि न लेते हुए भी बालक जिद्दू बचपन से ही शान्त चित्त होने के साथ-साथ पर्यवेक्षण और लगनशीलता में असाधारण क्षमता के धनी थे। थियोसोफिकल सोसायटी का इनकी शिक्षा पर विशेष प्रभाव रहा। श्रीमती एनी बेसेन्ट

और उनके अनुयायियो के सक्रिय योगदान के कारण ही जिद्दू विश्व के महान शिक्षक के रूप मे उभरे। वर्ष 1929 मे थियोसोफिकल सोसायटी से उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया और वे विश्व के एक अग्रणी धार्मिक शिक्षक के रूप मे अधिष्ठापित हुए।

श्री अल्डुअस हक्सले ने लिखा है — "जिन लोगो को मैंने आज तक सुना है, उनमे श्री कृष्णमूर्ति सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति है।' उनके विचारो को सुनना महात्मा बुद्ध के विचारो को सुनने जैसा है। उनके विचारो मे जो शक्ति, प्रभाव व अधिकार है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्हे न किसी सामान्य व्यक्ति की पलायनवादिता स्वीकार्य है, और न वे किन्हीं धर्माधिकारियो, गुरुओ, उद्धारको, अधिनायको या चर्चों के पक्षपातपूर्ण फतवो के कायल है। मै आपका दु ख और इसे समाप्त करने की विधि से साक्षात्कार कराता हू, वे कहते है।"

महान चिन्तकों से साम्यता

अस्तित्ववादियो से यदि तुलना की जाए तो जे कृष्णमूर्ति के विचारो के केन्द्र मे भी मनुष्य ही स्थापित है। यहा पर अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र से अधिक साम्यता प्रतीत होती है। जे कृष्णमूर्ति का मानना है कि मनुष्य की सचेतना ही वह मूल बिन्दु है जिसमे स्थायी स्थिति सम्भव होती है, जो विश्व के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने मे अन्तत उसे आश्वस्त करती है। वेदान्तवादियो से भी अनेक बिन्दुओ पर स्पष्ट साम्यता दृष्टिगत होती है। विशेषकर जे कृष्णमूर्ति के विचारो मे वेदान्तवादी स्वामी विवेकानन्द की स्पष्ट छाप मिलती है, क्योकि अनेक सन्दर्भो मे स्वामी जी की भाति जे. कृष्णमूर्ति ने भी धर्म की आतरिकता पर जोर देते हुए धर्म की बाध्यता एव आडम्बरो से मुक्ति का आह्वान किया है।

मानव प्रकृति तथा दार्शनिक बिन्दु

युगो-युगो से मनुष्य स्वय से परे, भौतिक कल्याण से परे कोई चीज खोजता चला आ रहा है। ऐसी चीज जिसे हम सत्य, परमात्मा, यथार्थ या "कालातीत" अवस्था के नाम से पुकारते है। ऐसी चीज जिसे परिस्थितिया, विचार या मानव-भ्रष्टाचार छू तक न पाए।

मनुष्य हमेशा यह प्रश्न पूछता है कि आखिर यह सत्य है क्या? जीवन का अर्थ भी है क्या? नजर डालने पर यह दिखता है कि चारो ओर क्रूरताओ, विद्रोहो, युद्धो, धर्म के अनन्त विभाजनो, विभिन्न विचारधाराओ और राष्ट्रीयता का ही बोलबाला है। जीवन एक महाउपद्रव बनकर रह गया है, एक गहन आन्तरिक कुण्ठाबद्ध विचारो से भरकर वह पूछ बैठता है कि वह करे क्या? जिसे हम जीना कहते है वह है क्या? और इससे भी परे कुछ है क्या?

.. और हजार नाम वाली इस नाम रहित चीज को सदा खोजने पर भी न पाकर वह किसी एक धारक या आदर्श मे आस्था पैदा कर लेता है और यह आस्था ही सारी हिंसा की जड है। इन मानवीय स्थितियो से उत्पन्न समस्याओ को ही जे कृष्णमूर्ति ने अपने तरीके से सुलझाने का प्रयत्न किया।

शिक्षा कैसी हो

जे कृष्णमूर्ति ने मनुष्य की स्वतन्त्रता पर सबसे अधिक बल दिया। उनके अनुसार शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जो मनुष्य को समस्याओ के समाधान के लिए तैयार कर सके। यह तैयारी किसी बाहरी प्रभाव या कृत्रिम परिस्थितियो से मुक्त होनी चाहिए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो बालक को आत्मविश्वासी बनाए। उसे स्वय का बोध कर सकने की क्षमता प्रदान करे व चयन की स्वतन्त्रता दे। साथ ही जीवन की तैयारी हेतु अवसर प्रदान करे।

शैक्षिक लक्ष्य

कृष्णमूर्ति के अनुसार मनुष्य अपने भविष्य का निर्माता स्वय है। वह जो बनना चाहता है, बनने के लिए स्वतन्त्र है। आज वह जिन परिस्थितियो मे है, उसका कारण भी वह स्वय है। जे कृष्णमूर्ति बालक द्वारा स्वय अपने भविष्य की योजना तैयार करने पर बल देते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि वह अपनी स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र चयन प्रक्रिया तथा उसके परिणामो के प्रति स्वय को

उत्तरदायी माने। सक्षेप मे, कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के बारे मे कहा कि शिक्षा व्यक्ति पर लादी नही जानी चाहिए वरन् वातावरण एव आवश्यकताओ के अनुकूल प्रदान की जानी चाहिए।

जिद्दू कृष्णमूर्ति के यत्र-तत्र फैले हुए विचारो के आधार पर शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य उभरते प्रतीत होते है .

□ आत्मज्ञान की प्राप्ति

श्री कृष्णमूर्ति के अनुसार ज्ञान अनन्त है। वे कहते है "आत्म ज्ञान का कोई अन्त नही है, यह एक अनन्त नदी है।" मनुष्य जितना अधिक ज्ञान प्राप्त करता है उसे उतनी अधिक शान्ति मिलती है। इसमे कोई सन्देह नही कि कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है – आत्मज्ञान प्राप्त करना। आत्मज्ञान से ही परम् ज्ञान मिलता है अत वे आत्मज्ञान की महत्ता पर बल देते है। उनके अनुसार – "हमारा परिचय अपने स्व के समग्र क्षेत्र से होना चाहिए जो कि व्यक्ति की चेतना है और साम्राज्ञी भी। जब मन वैयक्तिक चेतना और सामाजिक चेतना के पार चला जाता है, तब हम स्वय अपने लिए एक ज्योति बन सकते है जो कभी बुझती नही।"

□ स्वतन्त्र चिन्तन का विकास

परिपक्वता के लिए कृष्णमूर्ति स्वतन्त्रता का होना आवश्यक समझते थे। इस प्रकार हम देखते है कि कृष्णमूर्ति हमारे प्राचीन ऋषियो-मुनियो से भिन्न नही हैं। उन्होने भी स्वतन्त्र चिन्तन पर बल दिया है और स्वय को पहचानने के लिए कहा है। आत्म-दर्शन से ही मनुष्य सत्य का दर्शन करता है। उनके दर्शन में हम कही भी यह नही पाते कि उन्होने शाश्वत मूल्यो को अस्वीकार किया हो या किसी ऐसे विचार को जन्म दिया हो जिससे वे अन्य दार्शनिकों से बिल्कुल भिन्न हो जाए।

□ समग्र व्यक्तित्व का विकास

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। यह मनुष्य को वह सब प्राप्त करने मे सहायता प्रदान करती है जिसकी वह आकाक्षा करता है। जे कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य के समग्र व्यक्तित्त्व का विकास होता है। अत शिक्षा का उद्देश्य समग्र व्यक्तित्व का विकास करना भी है जिसमे जन्मजात शक्तिया, सामाजिक गुण, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एव सास्कृतिक पक्ष समाहित होते है।

□ व्यावसायिकता एवं व्यावहारिकता का विकास

जे कृष्णमूर्ति का व्यावसायिकता एव व्यावहारिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण तकनीकी पक्ष के महत्त्व को अस्वीकार नही करता। कम्प्यूटर की यान्त्रिक कार्य-प्रणाली और तदुपरान्त व्यक्ति के कार्यो मे हो रही कमी को देखते हुए उन्हे चिन्ता थी, परन्तु वर्तमान स्थिति मे जो सकट निहित दिखाई दे रहे है, उन्हे देखते हुए उनका यह सुझाव था कि मानव मस्तिष्क यह विचार करे कि कही यन्त्र, स्वामी की अमानुषिक भूमिका न अपना ले। इससे स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता को ध्यान मे रखते हुए व्यवहार को परिमार्जित करके ही व्यक्ति अपना और अपने माध्यम से विश्व का कल्याण करने मे समर्थ और सक्षम होता है।

□ ज्ञात से मुक्ति

कृष्णमूर्ति का मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए 'ज्ञात से मुक्ति'। ज्ञात से मुक्ति का तात्पर्य है–ज्ञान के पूर्णत्व को प्राप्त करना। इस सन्दर्भ मे जे कृष्णमूर्ति का विचार है "मरने का अर्थ है मन का पूर्णत शून्य और खाली हो जाना – अपने प्रतिदिन की आकाक्षाओ, सुखो और दुखो से खाली। मृत्यु एक रूपान्तरण, एक नवीनीकरण है जहा विचार का अस्तित्व नहीं होता क्योकि विचार पुराना है। जहा मृत्यु है, वही कुछ नया जन्म लेता है। ज्ञात से मुक्ति ही मृत्यु है -- और तब आपका जीवन आरम्भ होता है।"

पाठ्यक्रम

जे कृष्णमूर्ति के अनुसार पाठ्यक्रम की कोई

निश्चितता नही होनी चाहिए, क्योकि सत्य अनन्त नदी के समान है। किसी समूह विशेष या आयु विशेष के लिए कोई निश्चित पाठ्यक्रम नही चलाया जा सकता। इनका विचार है कि पाठ्यक्रम प्रत्येक व्यक्ति के अनुसार विविध होना चाहिए तभी मानव-स्वतन्त्रता कायम रह सकती है। वे मानवीय विषयो को पाठ्यक्रम मे शामिल करने को प्रमुखता देते है। कृष्णमूर्ति के अनुसार छात्र अपने पाठ्यक्रम चुनने के लिए स्वतन्त्र है। वे चयन की स्वतन्त्रता बालक पर छोडते है क्योकि इससे उसका अस्तित्व सुरक्षित रह सकेगा।

शिक्षण विधि

स्वानुभूति का ज्ञान के लिए बडा महत्व है। इसी प्रकार ज्ञान और शिक्षण प्रक्रिया अन्त सम्बन्धित है। शिक्षण प्रक्रिया व्यक्ति केन्द्रित होनी चाहिए, सामूहिक शिक्षण मे वैयक्तिकता नष्ट हो जाती है। इसलिए जे कृष्णमूर्ति विद्यालय के पक्षधर नही थे। वे ऐसी शिक्षण पद्धति पर बल देते है जो व्यक्ति को अपने निर्णयो तथा अनुभवो के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने मे सहायक हो। अत ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णमूर्ति सहज अनुभूति विधि, व्यक्तित्व अध्ययन विधि, स्वय करके सीखने तथा प्रत्यक्ष विधि द्वारा शिक्षण दिए जाने का समर्थन करते है।

अनुशासन

जे कृष्णमूर्ति व्यक्ति को स्व-अनुशासित देखना चाहते है, इसके लिए वे कोई पूर्ण निर्धारित नियम तथा कट्टरता से उसके पालन का विरोध करते है। उनका मानना है कि पूर्व निर्धारित नियम व्यक्ति की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देते है। तथा किसी एक व्यक्ति के नियमो का आरोपण सभी व्यक्तियो पर हो जाता है। परतन्त्रता एव बाह्य उपागमो द्वारा कायम अनुशासन अस्थाई होता है। स्थाई अनुशासन हेतु व्यक्ति को अपने लिए स्वय नियमो का निर्माण करना चाहिए। उनके अनुसार स्वतन्त्रता का प्रतिमान ही सर्वोच्च नैतिकता है तथा उसका परिणाम ही आदर्श है।

अध्यापक एवं विद्यालय

कृष्णमूर्ति का विचार है कि स्वतन्त्रता मे सबसे बडी बाधा है दूसरे के अस्तित्व का आरोपण। उनका मानना है कि व्यक्ति का पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब वह पूर्ण स्वतन्त्र हो। उनका विचार था कि शिक्षक छात्र के साथ कोई पूर्व निश्चित व्यवहार न करे बल्कि छात्रो को उनकी अनुभूतियो के आधार पर दिशा बोध कराए।

जे कृष्णमूर्ति वैयक्तिकता के लिए विद्यालय को घातक मानते थे। वस्तुत वे जिस विद्यालय की कल्पना करते है, वह सामूहिक शिक्षा का साधन नही है। उनके अनुसार वास्तविक विद्यालय वह होता है जिस स्थान पर बालक की शैक्षिक आवश्यकताओ की पूर्ति तथा अन्य मानवीय समस्याओ का हल ढूढने का प्रयास कराया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ

जिद्दू कृष्णमूर्ति के शैक्षिक दर्शन मे निर्हित तत्व मनुष्य मे ऐसे स्थाई विश्वास जाग्रत करने हेतु मार्ग निर्देशित करते है जो उसे उचित जीवन मूल्य की ओर अग्रसर कर सके। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिसमे स्वतन्त्र चयन पर बल हो तथा आत्मानुभूति को रेखाकित किया गया हो। उन्होने शिक्षा के उद्देश्यो का एक सोचा-समझा गया रूप प्रस्तुत किया जो व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास की दिशा मे होगा। वे किसी पूर्व निश्चित पाठ्यक्रम, शिक्षक द्वारा अनुदेशन अथवा व्यवस्था के विरोधी थे। समस्याओं से जूझने अथवा सामन्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता को रेखाकित करते हुए, अपने वैचारिक परिवृत्त मे मानव को केन्द्रवत मानते हुए उन्होने उसकी गरिमा को स्थापित करने का प्रयास किया।

जे कृष्णमूर्ति की साम्यता न केवल कमोबेश अस्तित्ववादियो से वरन् वेदान्तवादियो से भी प्रतीत होती है। शिक्षण, विद्यालय और अनुदेशन मे प्रकृतिवाद की तरफ झुकाव रखने वाले जे कृष्णमूर्ति ने आत्म-अनुशासन एव स्वतन्त्र चिन्तन के विकास की

आवश्यकता को रेखाकित करने वाली शिक्षा व्यवस्था का वैचारिक प्रारूपण किया, जो आत्मबल तथा समस्याओ से तादात्मीकरण की क्षमता मे आज के युवको के लिए कल की अपेक्षा अधिक उपादेय प्रतीत होती है। निष्कर्षत आवश्यकता है वर्तमान शिक्षण प्रणाली मे मनुष्य को केन्द्र मे रखने की, उसके स्वतन्त्र विकास और स्वानुभूति को रेखाकित करते हुए छात्र को स्वानुशासन की परिधि मे उसकी शक्तियो का भान कराने की जिससे परिस्थितियो के साथ उसका तादात्म्य होता रहे। □□

सन्दर्भ

1 कृष्णमूर्ति, जे, 1933, **स्टार बुलेटिन**, जुलाई– अगस्त, पृ 130

2 "सर्वकालीन महान व्यक्ति", **प्रतियोगिता विकास**, अगस्त 1995, पृ 60

3 कृष्णमूर्ति, जे, **फ्रीडम फ्राम द नोन**, पृ 1–29

4 वर्मा, अनिल कुमार, **1995, जे. कृष्णमूर्ति के विचारों का शैक्षिक अध्ययन**, लघुशोध ग्रन्थ, एम एड, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय

5 **कृष्णमूर्ति टाक्स**, कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इन इण्डिया 1958, कृष्णमूर्ति राइटिग आई.एन ई 1960, पृ 18

6 कृष्णमूर्ति, जे, **एजूकेशन एण्ड सिगनीफिकेन्स ऑफ लाइफ**।

शिक्षित बेरोज़गारों की अनुभूति – एक अध्ययन

डा. जयनारायण मिश्र

प्राध्यापक, शिक्षा विभाग
रतन सेन महाविद्यालय, बासी
सिद्धार्थ नगर, उ प्र.

वर्तमान समाज में शिक्षित बेरोजगारों की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। इस बहुआयामी समस्या के अनेक व्यक्तिगत, सामाजिक, शासकीय तथा आर्थिक कारण हैं। शिक्षा जगत और कार्य जगत के बीच खाई को पाटने के लिए यद्यपि अनेक प्रयास किए जा रहे है तथापि शिक्षित बेराजगारों की सख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। प्रारम्भ मे यह भले ही एक निजी समस्या हो परन्तु कालान्तर में यह एक विकट सामाजिक समस्या का रूप धारण कर लेती है। लम्बे समय तक चलने वाली बेरोजगारी शिक्षित व्यक्ति की मानसिक शक्ति को असन्तुलित कर सवेगात्मक समस्याए उत्पन्न कर देती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधकर्त्ता ने सेवा प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासो, सेवा प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों, बेकारी की दशा मे शिक्षितो के मनोभावों, समाज, परिवार एव अन्य संबंधियो के व्यवहार में परिवर्तन से सम्बन्धित उनकी अनुभूति का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया है। शोधकर्त्ता ने प्रदत्तो के आधार पर पुरुष एवं महिला शिक्षित बेरोजगारों की अनुभूतियों का एक सजीव तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है।

प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अन्य व्यक्ति पर निर्भर रहे बिना अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति या जीविकोपार्जन कर सके तथा बिना किसी पर बोझ बने समाज की उन्नति मे सहायक हो सके। गाधी (1937) के अनुसार भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। वर्तमान काल मे जीविका प्रदायी शिक्षा का महत्व अधिक बढ गया है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1949) के अनुसार व्यक्तित्त्व निर्माण मे व्यक्ति की उपार्जन क्षमता का महत्वपूर्ण स्थान है। इससे साहस, आत्मविश्वास एव आत्मनिर्भरता आदि गुणो का प्रादुर्भाव होता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) एवम् कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) ने भी शिक्षा के इस दायित्व को महत्त्वपूर्ण बताया है।

"शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर एवम् व्यवसायपूर्ण बनाती है," यह अवधारणा दिन-प्रतिदिन मात्र सैद्धान्तिक होती जा रही है। इसका व्यावहारिक रूप कुछ दूसरा ही दिखाई पडता है। अशिक्षित व्यक्ति शारीरिक श्रम करके कुछ जीविकोपार्जन तो कर लेता है, किन्तु शिक्षित व्यक्ति को शारीरिक श्रम साध्य कार्यो को करने मे हिचक एव कठिनाई होती है। इस प्रकार शिक्षा नवयुवको में आत्मनिर्भरता विकसित करने मे असफल होती जा रही है। फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारो की संख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा

भट्टाचार्य (1965) के अनुसार बेरोजगारी की अवस्था मे शिक्षित युवको मे 77 00 प्रतिशत परिवार की सहायता, 7 71 प्रतिशत शासकीय सहायता, 2 29 प्रतिशत ऋण एव 1 89 प्रतिशत धार्मिक सहायता पर जीवन व्यतीत करते है तथा शेष अनिश्चय की स्थिति मे रहते है। घोष (1974) के अनुसार बेरोजगारी का एक बहुत बडा भाग दिखाई नही देता। मिश्र (1988) ने अपने अध्ययन मे स्पष्ट किया कि सेवाकार्य की प्राप्ति के लिए शिक्षितो ने प्रयास किया किन्तु परिवार की असतोषजनक आर्थिक स्थिति, जातिगत भेदभाव, अनुपयुक्त मार्गदर्शन, अभ्यर्थियो की अपेक्षा रिक्तियो

की कम सख्या एव कठोर प्रतिद्वन्द्विता के कारण उन्हे बेरोजगार रहना पडा।

शिक्षितो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि एव उनके अनुरूप सेवा हेतु रिक्तियो की अत्यल्प सख्या होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति या नवयुवक को रोजगार अथवा सेवाकार्य मे सलग्न करना अत्यन्त कठिन होता जा रहा है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या दिन-प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। फ्लोरेन्स (1942), पीगू (1949), फेयर चाइल्ड (1962), मदन (1969), डिमेलो (1980), गुप्ता एव शर्मा (1980) तथा अग्रवाल (1986) ने बेरोजगारी के अभिप्राय को स्पष्ट किया। उनके अनुसार "बेरोजगारी वह अवस्था है जिसमे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एव समर्थ व्यक्ति को, जो कार्य करने की इच्छा रखता है, उचित पारिश्रमिक दर पर कार्य न मिलता हो।" शिक्षितो को जब यह अनुभव होता है कि उन्हे प्राप्त शिक्षा नौकरी दिलाने मे असमर्थ है और इस प्रकार जब अधिक दिनो तक बेरोजगार रहते है तो उनकी प्रतिष्ठा स्वय अपने परिजनो एव समाज की दृष्टि मे कम हो जाती है। वे अपना आत्मसम्मान एव आत्मविश्वास खोने लगते है। उनमे निराशा की भावना बलवती होने लगती है। इसके अतिरिक्त जीवन के प्रति निराश हो जाना, परिवार और समाज पर अपने को बोझ समझना तथा परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण सेवा प्राप्ति मे कठिनाई होना आदि समस्याओ की उन्हे अनुभूति होने लगती है।

अध्ययन की आवश्यकता

पूर्वी उत्तर प्रदेश की गणना भारत के पिछडे हुए क्षेत्रो मे की जाती है। यह क्षेत्र औद्योगिक, आर्थिक एव सास्कृतिक दृष्टि से पिछडा हुआ है। परम्परागत कृषि कार्य के अतिरिक्त औद्योगिक विकास कम होने के कारण यहा शिक्षित व्यक्तियो के रोजगार एवं व्यवसाय प्राप्ति की सम्भावना अति क्षीण है। फलस्वरूप बेरोजगारी शिक्षित व्यक्ति की मानसिक शक्ति को असतुलित करके सवेगात्मक समस्या उत्पन्न कर देती है। सेवा प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासो, सेवा प्राप्ति मे कठिनाइयो, बेकारी की दशा मे उनके मनोभावो, समाज, परिवार एव अन्य सम्बन्धियो के व्यवहार मे परिवर्तन से सम्बन्धित शिक्षितो की अनुभूति का अध्ययन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अत "शिक्षित बेरोजगारो की अनुभूति" विषय अध्ययन हेतु चुना गया।

अध्ययन का उद्देश्य

यह अध्ययन निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यो को दृष्टि में रखकर सम्पन्न किया गया

- सेवा प्राप्ति हेतु किए गए प्रयास सम्बन्धी शिक्षित बेरोजगारो की अनुभूति का अध्ययन करना।
- सेवा प्राप्ति मे असफलता सम्बन्धी शिक्षित बेरोजगारो की अनुभूति का अध्ययन करना।
- बेकारी की स्थिति मे शिक्षितो की भावनात्मक अनुभूति का अध्ययन करना।
- पुरुषो एव महिला शिक्षित बेरोजगारो की अनुभूतियो का तुलनात्मक अध्ययन करना ।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

शिक्षित बेरोजगारो के अनुभवो को ज्ञात करने के लिए एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया, इसमे सेवा प्राप्ति हेतु प्रयास से सम्बन्धित (9), सेवा प्राप्ति में असफलता से सम्बन्धित (9), एव भावनात्मक अनुभव से सम्बन्धित(9)— कुल 27 प्रश्न रखे गये। जिनका उत्तर हा अथवा नही मे देना था। प्रश्नो के उत्तर शिक्षितो के व्यक्तिगत अनुभवो पर आधारित होने के कारण इस प्रश्नावली की विश्वसनीयता, वैधता एव मानक ज्ञात करने की आवश्यकता प्रतीत नही हुई।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि

प्रस्तुत अध्ययन मे मात्र प्रतिशत एव उनके अन्तर की सार्थकता हेतु क्रान्तिक अनुपात के आधार पर प्रदत्तो का साख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

न्यादर्श

अध्ययन से सम्बन्धित जनसख्या के अन्तर्गत पूर्वी

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर एव वाराणसी मण्डलो के समस्त जनपदो के हाई स्कूल या इससे उच्च शिक्षा प्राप्त सभी महिला एव पुरुष बेरोजगार आते है। किन्तु अध्ययन की सुविधा हेतु इसमे से स्तरित यादृच्छिक विधि से न्यादर्श के रूप मे 720 शिक्षित बेरोजगारो (महिला एव पुरुष) का चयन किया गया।

समंकों का विश्लेषण

प्रश्नावली के आधार पर पुरुष एव महिला शिक्षित बेरोजगारो की सेवा प्राप्ति हेतु प्रयास सम्बन्धी अनुभूति, रोजगार प्राप्ति मे असफलता सम्बन्धी अनुभूति एव अन्य समस्याओं से उत्पन्न भावनात्मक अनुभूति से सम्बन्धित प्रश्नो के सकारात्मक उत्तरो की आवृत्ति ज्ञात की गई। प्रश्नो के उत्तर की आवृत्ति के आधार पर प्रतिशत ज्ञात किया। पुरुष एव महिला शिक्षित बेरोजगारो के सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत मे अन्तर की सार्थकता हेतु क्रान्तिक अनुपात ज्ञात किया गया। समको के विश्लेषण का विवरण तालिका 1, 2 एव 3 मे प्रदर्शित है।

(अ) सेवा प्राप्ति के लिए प्रयास सम्बन्धी अनुभूति

शिक्षित बेरोजगारो द्वारा सेवा प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास सबधी प्रश्नो के सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत तालिका 1 मे है।

(ब) सेवा प्राप्ति में असफलता से सम्बन्धित अनुभूति

शिक्षित बेरोजगारो द्वारा सेवा प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासो के उपरान्त उनकी असफलता के अनुभव से सबधित प्रश्नो के सकारात्मक उत्तरो का प्रतिशत तालिका 2 मे है

तालिका 1

पुरुष एव महिला शिक्षित बेरोजगारो की सख्याए, उनके द्वारा सेवा प्राप्ति हेतु किए गए प्रयास सबधी प्रश्नो के क्रमाक, प्रश्नगत तथ्य एव उनके सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत एव क्रान्तिक अनुपात

प्रश्नो के क्रमाक	प्रश्नगत तथ्य	पुरुष (सख्या 360) प्रतिशत	महिलाए(सख्या 360) प्रतिशत	क्रान्तिक अनुपात
1	नौकरी ढूंढने हेतु प्रयास	83 6	45 8	6 09*
2	प्रतियोगी परीक्षा का सामना करना	72 5	20 0	8 76*
3	घर के निकट ही सेवाकार्य को वरीयता	52 8	70 0	2 45*
4	श्वेत वसन कार्यो के लिए आवेदन	20 0	32 0	1 95
5	जोखिमपूर्ण कार्यो के लिए प्रयास	64 0	57 0	1 01
6.	नौकरी के अभाव मे स्वनियोजन की इच्छा	73 9	59 2	2 23*
7	रोजगार हेतु आशान्वित रहना	80 3	75 5	.82
8	शिक्षा प्राप्ति की अपेक्षा स्वनियोजन उचित	61 0	49.4	1.66
9	साक्षात्कार हेतु आमन्त्रित किया जाना	46 0	22 2	3 67*

* 05 स्तर पर सार्थक क्रान्तिक अनुपात का मूल्य (1 96 या इससे अधिक)

तालिका 2

शिक्षित बेरोजगारो की सख्या, सेवा प्राप्ति मे असफलता से सबधित प्रश्नो के क्रमाक, प्रश्नगत तथ्य एव उनके सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत एव क्रान्तिक अनुपात

प्रश्नो के क्रमाक	प्रश्नगत तथ्य	पुरुष (संख्या 360) प्रतिशत	महिलाए(सख्या 360) प्रतिशत	क्रान्तिक अनुपात
10	लिखित स्पर्धाओ मे असफलता	27 5	17 5	1 71
11	योग्यता एव स्तरानुकूल सेवा का अभाव	19 0	22 5	61
12	अनुचित माध्यम के बिना सेवा प्राप्ति सम्भव	50 0	51 0	14
13	शिक्षा प्रणाली का अनुपयुक्त होना	71 0	45 0	3 86*
14	असफलता का कारण जातिगत पक्षपात	37 0	19 5	2 80*
15	अनुपयुक्त मार्गदर्शन के कारण असफलता	80 0	39.0	3 04*
16	उपाधियो से रोजगार का सम्बन्ध नही	49 5	40 0	1 36
17	तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण असफलता	58 5	29 5	4 32*
18	कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन का अभाव	63 5	68.5	75

* 05 स्तर पर क्रान्तिक अनुपात का मूल्य (1 96 या इससे अधिक)

तालिका 3

शिक्षित बेरोजगारो (पुरुष एव महिला) की सख्या, बेकारी की स्थिति से उत्पन्न समस्या सम्बन्धी प्रश्नो के क्रमाक, प्रश्नगत तथ्य एव उनके सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत एव क्रान्तिक अनुपात

प्रश्नो के क्रमाक	प्रश्नगत तथ्य	पुरुष (सख्या 360) प्रतिशत	महिलाए(सख्या 360) प्रतिशत	क्रान्तिक अनुपात
19	समाज एव परिवार पर अपने को बोझ समझना	74.0	59 0	2.28*
20	असफलता के कारण सेवा प्राप्ति से निराशा	26 0	29 5	39
21	परिचितो एव परिवार द्वारा उपेक्षा	63 5	31 5	4 78*
22	समाज के प्रति आस्था कम होना	61 0	44 0	2 54*
23	परिचितो से मिलने-जुलने मे झिझक होना	58 0	32 0	3 89*
24	परिवार के सदस्यो का व्यवहार परिवर्तन	61 5	46 0	2 22*
25	उच्च पदारूढ लोगो द्वारा ध्यान न देना	62 0	60 0	29
26	बेरोजगारो के प्रति शासन की उपेक्षा	66 0	42.0	3 51*
27	स्वभावानुकूल सेवाकार्य का अभाव	70 5	68 5	31

*05 स्तर पर सार्थक क्रान्तिक अनुपात (मान 1 96 या इससे अधिक)

(स) बेरोज़गारी की स्थिति में शिक्षितों की भावनात्मक अनुभूति

बेरोजगारी की स्थिति के कारण उत्पन्न समस्याओ से ग्रस्त शिक्षितो की भावनात्मक अनुभूति से सम्बन्धित प्रश्नो के सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत तालिका 3 मे है

प्रदत्तों का निरीक्षण एवं विवेचना

पुरुष एव महिला शिक्षित बेरोजगारो द्वारा सेवा प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासो, सेवा प्राप्ति मे असफलताओ तथा दीर्घकाल तक बेकारी की अवस्था मे रहने पर निकट सम्बन्धियो के व्यवहार परिवर्तन तथा स्वय की मनोदशा सम्बन्धी अनुभूति की जानकारी हेतु पूछे गए प्रश्नो के सकारात्मक उत्तरो के प्रतिशत के आधार पर विवेचना प्रस्तुत है। पुरुषो एव महिलाओ के प्रतिशत के अन्तर की सार्थकता क्रान्तिक अनुपात के मूल्य के आधार पर 05 स्तर पर ही वर्णित है।

(अ) सेवा प्राप्ति हेतु प्रयास सम्बन्धी अनुभूति

सेवा प्राप्ति हेतु शिक्षित बेरोजगारो ने जो प्रयास किया, इससे उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुए उनका विश्लेषण तालिका 1 मे वर्णित है। प्रश्नगत तथ्यो, उनके क्रमांक एव प्रतिशत के आधार पर इसका निम्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया गया है

1 नौकरी ढूंढने हेतु प्रयास

अधिकाश शिक्षित बेरोजगारो ने नौकरी ढूढने या व्यवसाय करने का प्रयास किया। पुरुष बेरोजगारो ने महिला बेरोजगारो से अधिक प्रयास किया।

प्रश्न 1, के अनुसार 83 6 प्रतिशत शिक्षित पुरुषो एव 45 8 प्रतिशत महिलाओ ने नौकरी ढूढने का प्रयास किया। इससे प्रतीत होता है कि जीविका जुटाने के लिए पुरुषो को ही अधिक प्रयत्नशील रहना पडता है। सभवत यह दायित्व महिलाओ पर विशेष परिस्थितियो मे ही आता है। क्रान्तिक अनुपात (6 09) के अनुसार यह सार्थक अन्तर है।

2 प्रतियोगी परीक्षा का सामना करना

अधिकाश शिक्षित पुरुष बेरोजगारो ने प्रतियोगी परीक्षाओ मे सम्मिलित होना स्वीकार किया, किन्तु बहुत कम महिलाओ को प्रतियोगी परीक्षाओ का सामना करना पडा। प्रश्न 2, के अनुसार 72 5 प्रतिशत पुरुष एवं 20 0 प्रतिशत महिलाओ को ही प्रतियोगी परीक्षाओ का सामना करना पडा। महिलाओ एव पुरुषो मे अन्तर सार्थक है, (क्रान्तिक अनुपात 8 76)।

3 घर के निकट ही सेवाकार्य को वरीयता

प्रश्न 3, के अनुसार 52 8 प्रतिशत शिक्षित पुरुष एव 70 0 प्रतिशत महिलाओ ने अपने घर के पास ही सेवाकार्य मे सलग्न होना पसन्द किया। महिलाओ का अधिक प्रतिशत होने का कारण यह हो सकता है कि पुरुषो की अपेक्षा उनके साथ अनेक प्रकार की विवशताए तथा समस्याए हो सकती है जिनके कारण घर से दूर नौकरी करना उनके लिए कठिन होता है। किन्तु अधिकांश पुरुषों का यह स्वीकार करना कि वे घर से दूर सेवाकार्य करना नही चाहते, वर्तमान समय मे यातायात आदि की सुविधा के सदर्भ मे उचित नही प्रतीत होता है। पुरुषो एव महिलाओं की अनुभूति मे सार्थक अन्तर है। (क्रातिक अनुपात 2 54)।

4 श्वेत वसन कार्यो के लिए आवेदन

श्वेत वसन कार्यो के लिए 20.0 प्रतिशत शिक्षित बेरोजगार पुरुषो तथा 32 0 प्रतिशत शिक्षित बेरोजगार महिलाओ ने आवेदन किया। इस अन्तर का क्रान्तिक अनुपात का मान 1 95 है जो लगभग सार्थक है। अर्थात् पुरुषो की अपेक्षा अधिक महिलाओ ने श्वेत वसन कार्यो के लिए आवेदन किया है। इससे प्रतीत होता है कि अधिकाश पुरुषो ने रोजगार प्राप्ति पर ही ध्यान दिया है। रोजगार का स्वरूप चाहे जैसा हो।

5 जोखिमपूर्ण कार्यो हेतु प्रयास

अधिकाश शिक्षित बेरोजगारो ने जोखिमपूर्ण कार्यो

के लिए प्रयास किया। प्रश्न 5, से प्राप्त अनुक्रिया के अनुसार 640 प्रतिशत पुरुषो एव 570 प्रतिशत महिलाओ ने जोखिम भरे कार्यो को करने के लिए अपनी सहमति दी। यह एक शुभ लक्षण है कि बेरोजगार अपनी बेरोजगारी की समाप्ति के लिए किसी भी जोखिम वाले सेवाकार्य मे सलग्न होने से घबराते नही। 05 स्तर पर यह कहा जा सकता है कि पुरुषो व महिलाओ मे यह अन्तर संयोगवश है (क्रान्तिक अनुपात 1 01)।

6 निजी व्यवसाय हेतु प्रयास

प्रश्न 6 द्वारा प्राप्त उत्तरो के अनुसार 73 9 प्रतिशत शिक्षित पुरुषो तथा 59 2 प्रतिशत शिक्षित महिलाओ ने नौकरी के अभाव मे निजी व्यवसाय मै सलग्न होने की इच्छा प्रकट की। आवश्यकता है निजी व्यवसाय आरम्भ करने के लिए सुविधा प्रदान करने की जिससे वे अपने रोजगार के साथ ही दूसरो को भी रोजगार प्रदान कर सके। पुरुषो एव महिलाओ की अनुभूति मे यह सार्थक अन्तर है (क्रान्तिक अनुपात 2 23)।

7 रोजगार हेतु आशान्वित रहना

अनेक प्रयत्नो के उपरान्त रोजगार न मिलने पर भी शिक्षित बेरोजगार निराश नही होते। वे भविष्य मे किसी न किसी सेवा मे सलग्न होने की प्रत्याशा मे प्रयास करते रहे। पुरुष एव महिला शिक्षित बेरोजगारो के क्रमश 80 3 एव 75 5 प्रतिशत ने लगभग समान रूप से यह स्पष्ट किया कि वे रोजगार प्राप्त करने मे असफल होते हुए भी निराश न होकर आशान्वित है कि भविष्य मे कोई न कोई सेवाकार्य अवश्य मिल जायेगा (क्रान्तिक अनुपात 82)।

8 शिक्षा प्राप्ति की अपेक्षा निजी व्यवसाय उचित

प्रश्न 8 के आधार पर 61 0 प्रतिशत शिक्षित पुरुषो एव 49 4 प्रतिशत महिलाओ ने यह स्वीकार किया कि अब तक उन्होने जो शिक्षा प्राप्त की उसकी अपेक्षा किसी निजी व्यवसाय मे सलग्न होना अधिक उचित था। इस प्रकरण पर पुरुषो एव महिलाओ के अनुभव समान है। (क्रान्तिक अनुपात 1 66)।

9 साक्षात्कार हेतु आमन्त्रित किया जाना

46 0 प्रतिशत पुरुष बेरोजगारो तथा 22.2 प्रतिशत महिला बेरोजगारो ने सहमति व्यक्त की कि उन्हे आवेदन के पश्चात् साक्षात्कार हेतु आमन्त्रित किया गया। क्रान्तिक अनुपात (3 67) के मान के अनुसार यह अन्तर सार्थक है। पूर्वी उत्तर प्रदेश आर्थिक एव शैक्षिक दृष्टिकोण से पिछडा क्षेत्र है। सभव है प्रतियोगी परीक्षा अथवा शैक्षिक परीक्षा मे प्राप्ताक कम होने के कारण महिलाओ को साक्षात्कार हेतु कम आमन्त्रित किया गया हो।

(ब) सेवा प्राप्ति में असफलता सम्बन्धी अनुभूति

सेवा प्राप्ति मे असफलता से शिक्षित बेराजगारो को जो अनुभव हुआ उससे सम्बन्धित विवेचना, तालिका 2 मे उल्लिखित प्रश्नगत तथ्यो एव उनके उत्तरो के प्रतिशत एव क्रान्तिक अनुपात के मानो के आधार पर निम्न उपशीर्षको के अन्तर्गत वर्णित है

10. लिखित स्पर्द्धाओं में असफलता

बहुत कम शिक्षित बेराजगारो ने यह अनुभूति व्यक्त की कि वे लिखित प्रतियोगिताओ मे असफल होने के कारण सेवा कार्य से वचित रहे। मात्र 27.5 प्रतिशत पुरुष शिक्षित बेरोजगारो तथा 17 5 प्रतिशत महिला बेरोजगारो ने स्वीकार किया कि वे लिखित प्रतियोगिताओ मे असफल हुए। पुरुषो और महिलाओ के प्रतिशत का यह अन्तर (क्रान्तिक अनुपात 1 71) सयोगवश है।

11. स्तरानुकूल सेवा कार्य का अभाव

शिक्षित व्यक्तियो की अपनी योग्यता एव स्तर के अनुकूल सेवा कार्य करने की इच्छा होती है। स्तर से निम्न कोटि की नौकरी मिलने की अपेक्षा वे बेरोजगार रहना अधिक पसन्द करते है। किन्तु इस अध्ययन मे मात्र 19 0 प्रतिशत पुरुषो एव 22.5 प्रतिशत महिलाओ को स्तरानुकूल सेवा के अभाव की अनुभूति हुई। अर्थात् अधिकाश शिक्षित बेरोजगार अपनी योग्यता एव स्तर से निम्न कोटि की सेवा प्राप्ति हेतु प्रयासरत है।

महिलाओ एव पुरुषो के प्रतिशत का अन्तर सयोगवश ही है (क्रान्तिक अनुपात का मान 61)।

12 नौकरी प्राप्त करने में अनुचित माध्यम

प्रश्न 12 के उत्तरो के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षित बेरोजगारो मे 50 0 प्रतिशत पुरुषो एव 51.0 प्रतिशत महिलाओ ने यह अनुभव किया कि बिना किसी सिफारिश अथवा अनुचित माध्यम के कोई नौकरी मिलना सम्भव नही है। क्रान्तिक अनुपात (14) से भी ज्ञात होता है कि सेवा कार्य की प्राप्ति मे अनुचित माध्यमो के प्रभाव को पुरुषों एव महिलाओ ने समान रूप से अनुभव किया।

13. वर्तमान शिक्षा प्रणाली का अनुपयुक्त होना

शिक्षित बेरोजगारो मे 71 0 प्रतिशत पुरुषो एव 45 0 प्रतिशत महिलाओ ने अनुभव किया कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सेवाकार्य उपलब्ध कराने मे अक्षम है, क्रान्तिक अनुपात (3 86) के अनुसार पुरुषो एव महिलाओ की अनुभूति का यह अन्तर 05 स्तर पर सार्थक है। अर्थात पुरुषो ने शिक्षा प्रणाली को अधिक अनुपयुक्त माना और महिलाओं ने अपेक्षाकृत कम। इसका कारण यह हो सकता है कि पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ को सेवा प्राप्त करने मे वरीयता अधिक मिलती है तथा शिक्षा प्राप्ति मे पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ को कुछ न कुछ अधिक सुविधा अवश्य मिलती है, इसलिए शिक्षा के प्रति महिलाओ की अपेक्षाकृत अधिक आस्था होना स्वाभाविक है।

14. असफलता का कारण जातिगत पक्षपात

बहुत कम शिक्षित बेरोजगारो ने यह अनुभव किया कि उन्हे सेवा कार्य इसलिए नही मिल सका कि वे चयन कर्ताओ की जाति के नही थे। मात्र 37 0 प्रतिशत पुरुषो एव 19 5 प्रतिशत महिलाओ ने यह स्वीकार किया कि जातिगत पक्षपात की सेवा प्राप्ति मे प्रबल भूमिका होती है। पुरुषों एवं महिलाओं की अनुभूति का यह अन्तर 05 स्तर पर सार्थक है। (क्रान्तिक अनुपात 2 80)।

15. अनुपयुक्त मार्गदर्शन के कारण असफलता

शिक्षित बेरोजगार पुरुषो (80 0 प्रतिशत) एव महिलाओ (39 0 प्रतिशत) ने यह अनुभव किया कि वे उपयुक्त मार्गदर्शन के अभाव मे बेरोजगार है, क्रान्तिक अनुपात (3 04) के अनुसार पुरुषो एव महिलाओ की अनुभूति मे यह अन्तर सार्थक है। उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता महिलाओ की अपेक्षा पुरुषो को ही अधिक होती है क्योकि अधिकाश महिलाए परिवार द्वारा अनुमति एव निर्देशन मिलने पर ही सेवाकार्य के लिए प्रयास करती है जबकि पुरुषो को यह दायित्व स्वय निभाना पडता है।

16 उपाधियो रो रोजगार का सम्बन्ध नहीं

पुरुष (49 5) प्रतिशत एव महिला (40.0 प्रतिशत) शिक्षित बेरोजगारो ने समान रूप से अनुभव किया कि रोजगार अथवा सेवा प्राप्ति से उपाधियो का कोई सम्बन्ध नही है। (क्रान्तिक अनुपात 1 36) महिलाओ एव पुरुषो की सोच मे अन्तर मात्र सयोगवश ही है।

17 तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण असफलता

58 5 प्रतिशत शिक्षित बेरोजगारो ने अनुभव किया कि उनकी बेरोजगारी का मुख्य कारण तकनीकी शिक्षा का अभाव है जबकि 29 5 प्रतिशत महिलाओ ने तकनीकी शिक्षा के अभाव को रोजगार प्राप्ति मे असफलता का कारण स्वीकारा। पुरुषो एव महिलाओ के प्रतिशत मे सार्थक अन्तर (क्रान्तिक अनुपात 4.32) है। आज के शैक्षिक परिवेश मे महिलाओ की अपेक्षा पुरुषो पर सामान्य शिक्षा का दबाव अधिक है।

18. कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन का अभाव

63 5 प्रतिशत पुरुष एव 68 5 प्रतिशत महिला बेरोजगारो ने अनुभव किया कि उनकी बेरोजगारी का कारण कुटीर उद्योगो के उचित प्रोत्साहन का अभाव है। इस तथ्य से सम्बन्धित महिला एवं पुरुषो के प्रतिशत मे अन्तर सयोगवश ही है। अर्थात दोनो ने कुटीर उद्योगो के प्रोत्साहन के अभाव को समान रूप से अनुभव

किया (क्रान्तिक अनुपात 0 75)।

(स) बेरोजगारों की स्थिति में शिक्षितों की भावनात्मक अनुभूति

अधिक समय तक बेरोजगारो की स्थिति मे रहने की अनुभूति से सम्बन्धित प्रश्नो के उत्तरो के प्रतिशत एव क्रान्तिक अनुपात के आधार पर विवेचना निम्नवत है

19. समाज एवं परिवार पर अपने को बोझ समझना

अधिक दिनो तक बेरोजगारी की स्थिति मे रहने पर 74 0 प्रतिशत पुरुषो एव 59 0 प्रतिशत महिलाओ ने अनुभव किया कि वे समाज एव परिवार पर बोझ बन गए है। महिलाओ की अपेक्षा अधिक पुरुषो (क्रान्तिक अनुपात 2 28) ने अपने को बोझ समझा। परिवार एव समाज की सेवा न कर सकने के कारण उन पर नकारात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है।

20 असफलता के कारण निराशा

सेवा प्राप्ति मे बार-बार असफल होने पर नौकरी के प्रति निराशा उत्पन्न होना स्वाभाविक है किन्तु शिक्षित बेरोजगार इस समस्या का बडे धैर्य एव आशावादी दृष्टिकोण से सामना करते है। निराश होने वाले शिक्षितो की सख्या कम है, मात्र 26 0 प्रतिशत पुरुषो एव 29 5 प्रतिशत महिलाओ मे असफल होने के पश्चात् निराशा उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध मे महिलाओ एव पुरुषो की अनुभूतिया लगभग समान (क्रान्तिक अनुपात 39) है।

21. परिचितों एवं परिवारो द्वारा उपेक्षा

बेरोजगारी की अवस्था मे शिक्षितो ने यह अनुभव किया कि उनके परिचित एव परिवार के लोग उनकी उपेक्षा करने लगे है। 63 5 प्रतिशत पुरुषो एव 31 5 प्रतिशत महिलाओ ने यह स्वीकार किया कि उनके परिवार के लोग या अन्य परिचित लोग उनकी उपेक्षा करते है। महिलाओ एव पुरुषो की इस अनुभूति का अन्तर 05 स्तर पर सार्थक (क्रान्तिक अनुपात 4.78) है। इसका कारण यह हो सकता है कि परिवार के भरण-पोषण का दायित्त्व महिलाओ की अपेक्षा पुरुषो पर अधिक है और अधिकाश परिवार महिलाओ का नौकरी करना पसन्द भी नही करते है।

22 समाज के प्रति आस्था कम होना

61 0 प्रतिशत पुरुषो एव 44 0 प्रतिशत महिलाओ ने अनुभव किया कि उनकी समाज के प्रति आस्था कम होती जा रही है। महिलाओ एव पुरुषो की अनुभूति मे 0 05 स्तर पर सार्थक अन्तर (क्रान्तिक अनुपात 2 54) है, व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध है। व्यक्ति यह अपेक्षा करता है कि समाज उसको हर प्रकार की सुरक्षा प्रदान करेगा, किन्तु बेरोजगार व्यक्ति जीविका न पा सकने के कारण अपने को असुरक्षित अनुभव करता है।

23 परिचितों से मिलने-जुलने में झिझक होना

अधिक दिनो तक बेकार रहने से व्यक्ति पर नकारात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। कुल 58 0 प्रतिशत शिक्षित बेरोजगार पुरुषो ने यह अनुभव किया कि उन्हे अपने परिचितो से मिलने-जुलने मे झिझक होती है। बेरोजगारी के कारण उनमे हीन भावना उत्पन्न हो जाती है, किन्तु महिलाओ पर यह नकारात्मक प्रभाव कम पडता है। मात्र 32 0 प्रतिशत महिलाओं ने परिचितो से मिलने-जुलने मे झिझक की अनुभूति को स्वीकार किया है। पुरुषो एव महिलाओ की अनुभूति मे यह सार्थक अन्तर है (क्रान्तिक अनुपात 3 89) क्योकि आज भी महिलाओ की अपेक्षा पुरुषो पर रोजी-रोटी का दायित्त्व अधिक है।

24. परिवार के सदस्यों का व्यवहार परिवर्तन

पुरुषो (61 5 प्रतिशत) एव महिलाओ (46 0 प्रतिशत) ने यह अनुभव किया कि अध्ययन काल समाप्त होने पर परिवार के लोगो की अपेक्षाए बढ जाती हैं और बेरोजगार रहने के कारण वे इन अपेक्षाओ को पूरा नही कर पाते जिससे परिवार के लोगो के व्यवहार मे

नकारात्मक परिवर्तन आ जाता है। इस समस्या की अनुभूति पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ को कम होती है। (क्रान्तिक अनुपात 2 22)।

25 उच्च पदारूढ लोगों द्वारा ध्यान न देना

620 प्रतिशत पुरुष एव 60 प्रतिशत महिला शिक्षितो ने समान रूप से (क्रान्तिक अनुपात 29) अनुभव किया कि उनकी ओर सम्बन्धित विभागो एव शासन मे उच्च पदो पर आरूढ लोगो के उचित ध्यान के अभाव मे वे बेरोजगार है।

26 बेरोजगारों के प्रति शासन की उपेक्षा

660 प्रतिशत पुरुषों एव 420 प्रतिशत महिलाओ ने स्वीकार किया कि वे शासन की ओर से उपेक्षित है। पुरुषो एव महिलाओ की अनुभूति मे 05 स्तर पर सार्थक अन्तर (क्रान्तिक अनुपात 3.51) है। इसका कारण यह हो सकता है कि पुरुष बेरोजगारो की सख्या अधिक है और उनके ऊपर दायित्व भी अधिक है तथा शासन पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है।

27. स्वभावानुकूल सेवा कार्य का अभाव

शिक्षित बेराजगारों ने यह अनुभव किया कि अब तक उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा एव स्वय के स्वभाव के अनुकूल सेवा कार्य का अभाव रहा है। 70 5 प्रतिशत पुरुषो एव 68 5 प्रतिशत महिलाओ ने समान रूप से (क्रान्तिक अनुपात 31) स्वीकार किया कि उन्हे उनके स्वभाव के अनुकूल सेवा कार्य अनुपलब्ध रहे।

निष्कर्ष

अधिकांश शिक्षित महिला एवं पुरुष बेराजगारो ने समान रूप से नौकरी प्राप्ति हेतु प्रयास सम्बन्धी अनुभव व्यक्त करते हुए स्वीकार किया कि उन्होने जोखिम पूर्ण कार्यों के लिए प्रयास किया। रोजगार प्राप्ति हेतु वे आशान्वित रहे। शिक्षा प्राप्ति की अपेक्षा उन्होने स्वनियोजन को उचित समझा। कम शिक्षित बेरोजगारो (महिला एव पुरुष) ने श्वेत वसन कार्यो के लिए आवेदन किया तथा उन्हे साक्षात्कार हेतु आमन्त्रित किया गया।

शिक्षित महिलाओ की अपेक्षा अधिक पुरुष शिक्षितों ने नौकरी ढूढने का प्रयास किया व प्रतियोगी परीक्षा का सामना किया। नौकरी के अभाव मे स्वनियोजन की इच्छा व्यक्त की। उन्हे साक्षात्कार हेतु आमत्रित किया गया, किन्तु पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ ने घर के निकट ही सेवा प्राप्ति को वरीयता प्रदान की।

कम महिला एव पुरुष शिक्षितो ने समान रूप से सेवा प्राप्ति मे असफलता का कारण लिखित स्पर्द्धाओ मे असफलता, योग्यता एव स्तरानुकूल सेवा का अभाव तथा रोजगार से उपाधियो की असम्बद्धता को माना। अधिकाश महिला एव पुरुष शिक्षितो ने समान रूप से सेवा प्राप्ति मे असफलता का कारण उचित माध्यम की कमी तथा कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन का अभाव माना।

महिलाओ की अपेक्षा अधिक पुरुष शिक्षितो ने अपनी बेरोजगारी का कारण शिक्षा प्रणाली का अनुपयुक्त होना, जातिगत पक्षपात, अनुपयुक्त मार्गदर्शन तथा तकनीकी शिक्षा के अभाव को स्वीकार किया।

बेरोजगारी की स्थिति मे भावनात्मक अनुभूति को व्यक्त करते हुए कम पुरुषो एव महिलाओ ने समान रूप से स्वीकार किया कि उन्हे असफलता के कारण निराशा हुई। अधिकाश शिक्षितो को यह शिकायत रही कि उन पर उच्च पदारूढ लोगो द्वारा उचित ध्यान नहीं दिया गया तथा उनके लिए स्वभावानुकूल सेवा कार्य का सर्वथा अभाव रहा।

बेरोजगार रहते हुए महिलाओ की अपेक्षा अधिकाश पुरुष शिक्षितो ने अपने को समाज एव परिवार पर बोझ समझा, उनकी समाज के प्रति आस्था कम हुई, उन्हे परिचितो से मिलने मे झिझक होती रही, उनके प्रति पारिवारिक सदस्यो के व्यवहार मे नकारात्मक परिवर्तन हो गया तथा परिचित लोगो एव शासन ने उनकी उपेक्षा की। □□

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, गो क 1986–"**सामाजिक विघटन**" आगरा बुक स्टोर, आगरा।
2. गाधी, एम के 1930–हरिजन, अप्रैल।
3. गुप्ता एव शर्मा 1980–"भारतीय समाज एव सामाजिक समस्याएँ", साहित्य भवन, आगरा।
4. पीगू, पी सी 1949–"**अनएम्प्लायमेन्ट एण्ड वर्क फोर्स**" मैकमिलन एण्ड क., लन्दन।
5. पेपर चाइल्ड एच पी 1962–"**डिक्शनरी आफ सोसियोलोजी एण्ड रिलेटेड साइन्सेज** एन जे लिटिल फील्ड, ऐडम्स एण्ड कम्पनी इन्का।
6. फ्लोरेन्स, पी सीरजेण्ट 1924–"**इकोनामिक्स आफ फैटिग एण्ड अनरेस्ट एण्ड दि एफीसिएन्सी आफ इंगलिश लेबर इण्डस्ट्री**" एलेन एण्ड अनविन, लन्दन।
7. भट्टाचार्य, ए के 1965 –"**दि एजूकेशनल पैटर्न एण्ड दि एम्पलायमेन्ट स्ट्रक्चर आफ मध्य प्रदेश**" पी एच डी इकनामिक्स, सागर यूनिवर्सिटी।
8. मदान, जी आर 1969–"भारतीय सामाजिक संस्थाए", सरस्वती सदन, दिल्ली।
9. माध्यमिक शिक्षा आयोग – 1953 की रिपोर्ट।
10. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग – (1948–49) की रिपोर्ट।

ग्रामीण अंचल के प्राथमिक छात्रों में पर्यावरणीय जागरूकता उत्पन्न करना : एक सुझाव

डा रामसूरत त्रिपाठी

रीडर, भूगोल विभाग
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा
बांदा, उ. प्र.

प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण प्रयोग, बढती जनसंख्या तथा बडी औद्योगिक इकाइयो से अवांछनीय पदार्थों के अनियन्त्रित निकास के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने एक विकराल रूप धारण कर लिया है। पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणामो तथा पर्यावरण को प्रदूषण रहित बनाने के उपायों के बारे में व्यापक जन जागरण की महती आवश्यकता है। लेखक के अनुसार जन जागरण की यह प्रक्रिया प्राथमिक कक्षाओं से ही प्रारम्भ की जानी चाहिए। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत लेख में ऐसे अनेक शैक्षिक क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है जो किसी भी प्राथमिक शाला में सहज ही लागू किए जा सकते है।

समाज और शिक्षा के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध होता है। प्रत्येक समाज अपने कल्याणार्थ आवश्यक शिक्षा व्यवस्था विकसित करता है। अत शिक्षण सस्थाओ का दायित्व हो जाता है कि वे समाज की समस्याओ को समझे और तदनुरूप समाधान खोजने का प्रयास करे। सम्प्रति हमारा समाज पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या से ग्रसित है। अपनी अधिकाधिक भौतिक प्रगति के लिए मनुष्य ने वनो व जल ससाधनो का अविवेकपूर्ण उपयोग किया है। बडी-बडी औद्योगिक इकाइया स्थापित कर वायुमण्डल मे विषैली गैसे छोडकर वायु को प्रदूषित किया है तथा इन इकाइयो का गन्दा जल नदियो मे बहा कर जल को भी दूषित किया है। वन-विनाश के कारण जलवायु चक्र मे अवाछनीय परिवर्तन तथा भारी मृदा अपरदन हुआ है जिसकी क्षतिपूर्ति निकट भविष्य मे सम्भव नही है। मनुष्य के इन कुकृत्यो ने हमारे चतुर्दिक व्याप्त पर्यावरण को इस सीमा तक असन्तुलित बना दिया है कि आज विश्व स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण चर्चा-परिचर्चा का विषय बन गया है। यदि हमने अभी से पर्यावरण प्रदूषण रोकने का प्रयास न किया तो हमारी भावी पीढी का जीवन अन्धकारमय हो जाएगा। अतएव प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि पर्यावरण को दूषित होने से बचाए। इसके लिए एक ऐसी व्यूह रचना निर्मित करने की आवश्यकता है जो पर्यावरण को शुद्ध व जीने योग्य बनाने मे अपना सक्रिय योगदान दे सके। एतदर्थ प्रथम आवश्यकता है कि हम छात्रो को पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान कर उनमे पर्यावरणीय जागरूकता उत्पन्न करे।

अनेक विद्वानो ने पर्यावरणीय शिक्षा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सभी परिभाषाओ का सार यह है कि व्यक्ति मे उसके चतुर्दिक व्याप्त भौतिक व सास्कृतिक तत्वो के मध्य विद्यमान सामजस्य के महत्त्व की समझ उत्पन्न करना ही पर्यावरणीय शिक्षा का मूल उद्देश्य है (कोठारी, 1989)।

पर्यावरणीय जागरूकता उत्पन्न करने के उपाय

हाल ही मे सचालित नई शिक्षा नीति मे शिक्षा मे गुणात्मक सुधार लाने के लिए अनेक सुझाव दिए गए है। उनमे छात्रो को पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान करना भी

एक महत्वपूर्ण व सामयिक सुझाव है। नई शिक्षा नीति मे कहा गया है कि सम्पूर्ण शिक्षा तत्र मे पर्यावरण की शिक्षा को एकीकृत किया जाए। पर्यावरण एक अन्तर्वैषयिक विषय है अत. सभी पाठ्यक्रमो मे पर्यावरण की शिक्षा को समाहित किया जाए। छात्रो द्वारा पर्यावरण से सम्बन्धित क्षेत्रीय कार्य भी कराया जाए। विभिन्न विषयो मे पर्यावरणीय शिक्षा को निम्नवत सम्मिलित किया जा सकता है

(अ) भाषा

भाषायी विषयो मे हमारी भूमि, हमारे लोग, हमारी जलराशिया, हमारे ऊचे पर्वत, हमारे मनमोहक वन आदि पाठ निबन्ध, नाटक व गीत के रूप मे सम्मिलित किए जाए। सबसे आवश्यक यह है कि छात्रो को ऐसी शैली मे पढाया जाए कि उनके मन मे प्रकृति के प्रति मोह व आकर्षण जाग्रत हो सके।

(ब) इतिहास

इस विषय के माध्यम से छात्रो को यह बताया जाए कि अनुकूल पर्यावरण मे ही विश्व की प्राचीन सभ्यताए विकसित हुई हे। उन्हे अनुकूलतम सामाजिक–आर्थिक विकास हेतु पर्यावरण की भूमिका बताई जाए।

(स) भूगोल

इस विषय मे भूमि, जल तथा वन ससाधनो की उपलब्धता एवम् उपयोग, जनसख्या वृद्धि, जनसख्या एव ससाधनो के मध्य सह-सम्बन्ध आदि पाठो को पढाया जाए।

(द) विज्ञान

इस विषय मे रसायनो का उपयोग व अधिकाधिक उपयोग के दुष्प्रभाव, जलवायु व भूमि की शुद्धता का महत्त्व, उनकी भूमिका, हमारे सहयोगी जीव–जन्तु, पोषण एवम् स्वास्थ्य आदि पाठो को प्रभावशाली शैली मे पढाया जाए।

क्षेत्रीय कार्य

छात्रो को जो कुछ पर्यावरणीय ज्ञान प्रदान किया जाए उससे सम्बन्धित यथासम्भव क्षेत्रीय कार्य भी कराया जाए। छात्रो के द्वारा निम्न क्षेत्रीय कार्य किए जा सकते है –

(अ) स्वच्छता सम्बन्धी कार्य

स्वच्छता सम्बन्धी कार्यों के अन्तर्गत अपने शरीर, घर, विद्यालय व गाव की सफाई का कार्य सम्मिलित किया जाए। इस कार्यक्रम मे छात्र कुछ कार्य तो व्यक्तिगत रूप से करे तथा कुछ कार्य सामूहिक रूप से। छात्रो द्वारा निम्न कार्य कराया जाना चाहिए–

□ **व्यक्तिगत कार्य**

- दैनिक कार्यक्रम मे अपने शरीर को स्वच्छ रखना।
- अपने निवास स्थान को स्वच्छ रखना।

□ **सामूहिक कार्य**

- विद्यालय परिसर को स्वच्छ रखना।
- गाव की गलियो को स्वच्छ बनाना।
- पानी के सार्वजनिक स्रोतो जैसे कुए, हैण्डपम्प, तालाब आदि को प्रदूषण रहित बनाना।
- सार्वजनिक स्थानो जैसे देवालय, न्याय पचायत भवन आदि को स्वच्छ रखना।

(ब) हरियाली सम्बन्धी कार्य

इस कार्य मे वृक्ष लगाना व उनका रख-रखाव सम्मिलित है। वृक्षारोपण कार्य छात्र निजी व सार्वजनिक स्थानो मे करे। हरियाली कार्यक्रम के अंतर्गत छात्रो द्वारा निम्न कार्य कराया जाए

□ **व्यक्तिगत कार्य**

- अपने घर के समीप या अपनी पैतृक भूमि मे कम से कम एक वृक्ष लगाना

□ **सामूहिक कार्य**

- उपयुक्त स्थान मे पौधशाला विकसित करना।
- सार्वजनिक स्थानो मे वृक्षारोपण।
- गांव मे उपलब्ध बजर भूमि मे वृक्षारोपण।
- रोपित वृक्षो का रखरखाव।

(स) ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण

भारतीय ग्रामो मे विद्युत व जल ही प्रमुख ऊर्जा ससाधन है। प्राय. देखा जाता है कि ग्रामीण लोग इन ससाधनो का दुरुपयोग करते हैं। साधारण प्रयासो के द्वारा इस दुरुपयोग को रोका जा सकता है। इस दिशा मे छात्रो को निम्न कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए

• विद्युत व जल को आवश्यकता से अधिक उपयोग न करने की आदत विकसित करना। अपने माता-पिता व पडोसियो से विद्युत व जल ससाधनो के सरक्षण के महत्त्व की चर्चा करना।

(द) अवशिष्ट पदार्थो का पुनरुपयोग

आजकल अवशिष्ट पदार्थो (कचरा) के पुनरुपयोग की वैज्ञानिक विधिया विकसित कर ली गई है। कम ससाधन वाले विकासशील देशो मे इन विधियो का महत्त्व बढता जा रहा है (मजूमदार, 1992)। प्रत्येक घर या प्रतिष्ठान से कुछ न कुछ अवशिष्ट पदार्थ निकलता है जिसे अनुपयोगी समझकर नष्ट कर दिया जाता है। यदि लोगो का उचित मार्गदर्शन किया जाए तो अवशिष्ट पदार्थो को उपयोगी बनाया जा सकता है। छात्रों को अवशिष्ट पदार्थों के पुनरुपयोग का आवश्यक ज्ञान देकर उनके द्वारा निम्न कार्य कराए जाए

□ **व्यक्तिगत कार्य**

• अवशिष्ट पदार्थो के पुनरुपयोग की विधियो की अपने माता-पिता से चर्चा करना।

• अपने माता-पिता को विधियो की विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देना।

• अपने माता-पिता को परम्परागत कम्पोस्ट गड्ढे को वैज्ञानिक विधि से निर्मित गड्ढे मे परिवर्तित करने को प्रेरित करना।

• अपने घर व आस-पास के अवशिष्ट पदार्थ को एकत्र कर कम्पोस्ट गड्ढे मे डालना।

□ **सामूहिक कार्य**

• विद्यालय परिसर मे वैज्ञानिक विधि से कम्पोस्ट गड्ढे का निर्माण करना।

• विद्यालय व आस-पास के क्षेत्रो मे उपलब्ध अवशिष्ट पदार्थ एकत्र कर कम्पोस्ट गड्ढे मे डालना।

पर्यवेक्षण कार्य

उपयुक्त सभी क्षेत्रीय कार्य प्रभारी शिक्षको के निर्देशन व पर्यवेक्षण मे किया जाए। किए गए कार्यो की एक विवरण-पुस्तिका तैयार की जाए जिसमे व्यक्तिगत व सामूहिक दैनिक कार्यो का अभिलेखन हो तथा प्रभारी शिक्षक कार्यो का भौतिक सत्यापन करे। समय-समय पर उच्च अधिकारी भी भौतिक सत्यापन करे। व्यक्तिगत कार्यो का सत्यापन छात्र के माता-पिता करे।

सरकार व अन्य संगठनों की भूमिका

प्रस्तावित कार्य योजना को पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने व उसे कार्य रूप मे परिणत करने मे सरकार व स्वयसेवी सगठनो का सहयोग आवश्यक है। सरकार उक्त कार्ययोजना हेतु आवश्यकतानुसार धन,तकनीकी ज्ञान व अन्य आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करे। शिक्षको को उचित प्रशिक्षण देने के लिए सरकार तकनीकी विशेषज्ञो की व्यवस्था करे। पर्यावरणीय प्रबधन के क्षेत्र मे कुछ स्वयसेवी सगठन महत्वपूर्ण कार्य कर रहे है। ऐसे सगठनो को आगे आकर छात्रो के कार्यो मे भागीदार बनना चाहिए। इससे छात्र व सम्बन्धित समुदाय उक्त कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होगे।

शिक्षक की भूमिका

छात्रो का वास्तविक नेता उनका शिक्षक है। शिक्षक पर ही प्रस्तावित कार्य योजना के क्रियान्वयन का दायित्व है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को उचित महत्त्व देते हुए शिक्षको को पूर्ण निष्ठा व कर्तव्य परायणता से छात्रो को अपेक्षित सहयोग व प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। उपर्युक्त योजना के कार्यान्वयन द्वारा छात्रो मे पर्यावरणीय जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है। □□

संदर्भ

1 कोठारी, आर (1989) , एनवायरनमेण्टल एजुकेशन– नीड ऑफ टाइम, सोशल साइन्स रिसोर्स लेटर, रीजनल कालेज ऑफ एजूकेशन, अजमेर, पृष्ठ 03।

2 मजूमदार, एन वी (1992) डिसेन्ट्रलाइज्ड रिसाइक्लिंग ऑफ ह्यूमन वेस्ट्स एण्ड गारबेज, कुरुक्षेत्र, अक्टूबर, पृष्ठ 62।

उच्च शिक्षा की कतिपय समस्याओं का समाधान : दूरवर्ती शिक्षा

सुनील कुमार सिंह

जे.आर एफ., कमरा नं 8
न्यू पी. जी. छात्रावास (शिक्षा)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - 221 005

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे दूरवर्ती शिक्षा ने शनैः शनैः प्रगति कर अपने लिए एक ऐसा स्थान बना लिया है जहां न केवल छात्रो की पहुंच सुलभ हुई है अपितु औपचारिक शिक्षा के कई दोष भी वहा पहुंचने मे सफल नहीं हो पाए हैं। प्रस्तुत लेख मे जहा एक ओर लेखक ने वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली की कमियों को स्पष्ट रूप से उजागर किया है वहीं यह दर्शाने का भी प्रयत्न किया है कि किस प्रकार दूरवर्ती शिक्षा के द्वारा इन कमियो से मुक्ति पाई जा सकती है।

भारतीय शिक्षण प्रणाली के त्रिस्तरीय ढाचे की नीव, यदि प्राथमिक शिक्षा है, दीवारे माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा हैं तो निश्चित ही उच्च शिक्षा इस भवन की छत के समान है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात इसे सुदृढ करने का प्रयास भी हुआ है, क्योकि "स्वतत्रता प्राप्ति के समय जहा भारत मे 20 विश्वविद्यालय और लगभग 900 कालेज थे" (चन्द्र, 1975), वहीं " 31 मार्च 1993 तक भारत मे 153 विश्वविद्यालय, 31 कार्यरत पर विचाराधीन विश्वविद्यालय और 7958 कालेज पूर्ण रूप से कार्य कर रहे थे" (यू जी सी वार्षिक रिपोर्ट, 1992–93)। इसके अतिरिक्त अनेक निजी सस्थाए भी उच्च शिक्षा मुहैया कराने मे लगी हुई है। इसके बावजूद क्या हम माध्यमिक स्तर पर पास होने वाले और उच्च शिक्षा की आकाक्षा रखने वाले सभी छात्रो को यह सुविधा उपलब्ध करा पाए है? शिक्षा की गुणवत्ता मे हुए ह्रास से, क्या उच्च शिक्षा की ऊची अट्टालिकाओ का खोखलापन नजर नही आता है? विश्वविद्यालयो और कालेजो की बढती भीड मे कही शिक्षक व्याधिया झलक रही है तो कही छात्र असतोष। क्या यह सब शिक्षा के बाजारीकरण का परिणाम है? या राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न आर्थिक सकट का प्रभाव जो भी हो पर इन कुछ सवालो के कारण उच्च शिक्षा कतिपय समस्याओ से घिरी हुई दृष्टिगोचर होती है, जिनका समाधान हमे ढूंढना है।

नामांकन की समस्या

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जी सी) की वार्षिक रिपोर्ट (1989–90, 1992-93) के अनुसार भारतीय उच्च शिक्षण सस्थानो मे नामाकित छात्रो की सख्या 1970–71 मे 19,53,700 थी, जबकि 1990-91 मे यह सख्या बढकर 44,25,247 हो गई और 1992–93 मे यह 48,04,773 तक पहुच गई है। परन्तु गत वर्षो की तुलना मे जहा 1970–71 के नामाकन मे 9% तक वृद्धि दर्ज की गई वही (1990–91) और 1992–93 तक आते-आते यह वृद्धि दर क्रमश (4 2%) पर ही स्थिर रह गई। जबकि साक्षरता आकडे (1951 मे 16 67% एव 1991 मे 52 11%) यह सकेत देते है कि जन-मानस मे शिक्षा के प्रति रुचि बढी है, जिसके फलस्वरूप "1990–91 मे प्राथमिक स्तर पर 10,15,77,089; माध्यमिक स्तर पर 3,44,45,763 एव उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 2,12,27,901 विद्यार्थी नामाकित थे" (मनोरमा ईयर बुक, 1995)। यही नही उच्चतर माध्यमिक स्तर पास करने वालो की सख्या मे भी भारी वृद्धि हुई है। सिह (1992) के अनुसार 1960–61 मे उच्चतर शिक्षा पूरी करने वाले विद्यार्थियो की सख्या 2 37 लाख थी। यह सन् 1981–82 मे बढकर 8 40 लाख हो गई। इनमे

से करीब 83 प्रतिशत बच्चे कालेजो और विश्वविद्यालयो मे प्रवेश लेना चाहते है। इनमे से केवल 20% विद्यार्थी ही व्यावसायिक या तकनीकी शिक्षा देने वाली सस्थाओ मे प्रवेश कर पाते है। यह भी एक कटु सत्य है कि विशेषकर उच्चतर माध्यमिक स्तर की दहलीज पार करने वालो मे एक वर्ग विशेष के छात्र अधिक रहे है, जबकि नई आरक्षण नीति लागू होने के पश्चात् उच्च शिक्षण सस्थानो मे आरक्षित भाग ने उस विशेष वर्ग के छात्रो के नामाकन को भी प्रभावित किया है, परिणामत एक बडा तबका सरकारी सस्थानो मे नामाकन से वचित रह गया है। यही नही आरक्षित वर्ग के कुछ छात्र भी इस सुविधा से वचित रह गए है। अत वर्तमान परिस्थितियो मे उच्च शिक्षण सस्थान आरक्षित अथवा अनारक्षित किसी भी वर्ग का पूर्ण नामाकन भार सह पाने मे असमर्थ है। ऐसे समस्त विद्यार्थी किन शिक्षण सस्थानो की शरण लेगे?

स्तर की समस्या

शिक्षा आयोग (1964–66) के अनुसार लोक सेवा आयोग की रिपोर्टो, कर्मचारियो एव अध्यापको के विचारो तथा शोध निष्कर्षो के आधार पर पाया गया कि भारत मे यह एक सामान्य अनुभव है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असतोषजनक है और कुछ मायनो मे भयप्रद भी, क्योकि सामान्य स्तर गिरा है और व्यापक प्रसार के कारण गुणवत्ता मे भी कमी आई है। शैक्षिक स्तर समिति (1965) के अनुसार तेज विद्यार्थियो का निष्पादन स्तर तो बरकरार रहा है पर औसत विद्यार्थी का स्तर गिरा है। "उसके प्रश्न करने, लिखने और नए स्रोतो से ग्रहण करने की रुचि और क्षमता दोनो मे ह्रास हुआ है" (पुनालेकर, 1993)। उसके सीखने, कर सकने और जीवन का अग बना सकने की योग्यता मे ह्रास हुआ है। सर्वोपरि उसका आत्मविश्वास कम हुआ है। परिणामत. जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण भग्नाशायुक्त हो गया है। वह कोल्हू के बैल की तरह डिग्री की धुरी पर घूमता रहता है। उसका उद्देश्य ज्ञानार्जन कम और डिग्री प्राप्त करना अधिक है। डिग्री प्राप्त करने के लिए वह साधन की चिता नही करता है, अत उसका नैतिक ह्रास भी हुआ है। शिक्षा–स्तर गिरने का कारण उच्च शिक्षा मे अयोग्य छात्रो का नामांकन एव डिग्री प्राप्त करने के बावजूद आम छात्र की अनिश्चित भविष्य की अवधारणा भी है। इसके अतिरिक्त "विश्वविद्यालयो एव कालेजो की बढती सख्या के साथ-साथ अयोग्य शिक्षको की नियुक्ति भी शिक्षा स्तर मे ह्रास का एक प्रमुख कारण है" (चन्द्र 1975 . पुनालेकर 1993)। अत उच्च शिक्षण सस्थानो की बढती सख्या के साथ ही शिक्षा के गिरते स्तर की समस्या जटिल होती जा रही है।

वित्तीय समस्या

"भारत के 7 प्राचीनतम विश्वविद्यालयो मे से एक पटना विश्वविद्यालय का आर्थिक दिवालियेपन तक पहुच जाना" (कुलदई स्वामी, 1995), एव देश के एक प्रमुख केन्द्रीय विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति का अपने त्यागपत्र मे लिखना कि, "शोचनीय स्रोत सकट और केन्द्रीय सरकार द्वारा आर्थिक सहायता मे कमी के कारण वह काम करने मे असहाय है" (राजपूत, 1995)—ये दोनो कथन अग्निहोत्री (1987) का यह मत आज भी पुष्ट करते है कि, "भारत मे आर्थिक सकट के शिकार राज्य विश्वविद्यालय तो हैं ही, इसके अतिरिक्त अन्य विश्वविद्यालय स्तर के सस्थान और केन्द्रीय विश्वविद्यालय भी इस सकट से ग्रस्त है।" दुर्भाग्य की बात यह है कि इन उच्च शिक्षा के मदिरो मे वित्तीय भ्रष्टाचार भी व्याप्त है, क्योकि हाल मे ही "केन्द्रीय विश्वविद्यालयो को ग्रन्थालय के लिए मिले 1–1 करोड रुपये के अनुदान का निर्धारित समयावधि मे भी प्रयोग नही हो पाया है। आपसी खीचतान और द्वेष की राजनीति मे पैसो का दुरुपयोग होता है या उपयोग ही नही होता है" (जनसत्ता, 1995)। दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्तर पर बढते वित्तीय सकट के दौर मे केन्द्र और राज्य सरकारे अपने आर्थिक अनुदान मे किसी भी प्रकार की बढोत्तरी नही कर पा रही है, बल्कि पूर्व निर्धारित अनुदान मे भी कटौती करती जा रही हैं। वे "इस बात पर जोर देती है कि उच्च शिक्षा

के सस्थानो को अपने आर्थिक स्रोत स्वय विकसित करने चाहिए" (राजपूत, 1995)। लेकिन इस वित्तीय सक्रमण के दौर मे यदि सरकारी आर्थिक अनुदान न बढे या शिक्षण सस्थानो ने अपने स्रोत विकसित न किए तो इन सस्थानो मे अराजकता बढेगी और वह टूटने के कगार पर पहुच जाएगे। ऐसी परिस्थिति मे वित्तीय समस्या का अन्य समाधान क्या हो सकता है?

शिक्षण विधि की समस्या

'सूचना विस्फोट' के इस दौर मे मानव-मस्तिष्क मे एक साथ सब कुछ भर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी उच्च शिक्षण सस्थानो मे आधुनिक शिक्षण तकनीकी का समुचित प्रयोग नहीं किया जा रहा है। वित्तीय अक्षमता के कारण आधुनिक उपकरणो की कमी इसका एक कारण है। परन्तु यह भी सच है कि अयोग्य शिक्षकों की बढती सख्या के कारण उपलब्ध शिक्षण उपकरणो का उचित प्रयोग भी नही हो पाया है। शिक्षको को आपसी रजिश से ऊपर उठकर पढने और पढाने की विधि पर विचार करने की फुर्सत नही है। सदियो पुरानी 'व्याख्यात्मक विधि' मे भी ह्रास हुआ है। पुराने एव लिखे-लिखाए नोट पढकर सुनाना शिक्षको की आम शिक्षण विधि का एक प्रमुख अग बन गया है। अत शिक्षक न तो पुरानी शिक्षण विधि को ही सुरक्षित रख पाए हैं न ही आधुनिक सप्रेषण तकनीकी को अपना पाए है। यही नही बल्कि," पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधि, शिक्षक एव मूल्याकन पद्धति मे तारतम्य न के बराबर है" (कुलदई स्वामी, 1995)। इन सबके फलस्वरूप उच्च शिक्षा और भी नीरस और अप्रासंगिक होती जा रही है।

अनुशासन की समस्या

शिक्षा आयोग (1964–66), अग्निहोत्री (1987), जोशी (1993), पुनालेकर (1993) एव मनोरमा इयर बुक (1995) आदि के अनुसार समाज मे बढते भ्रष्टाचार का प्रभाव शिक्षा पर भी पडा है। आपसी रजिश मे शिक्षको द्वारा छात्रो का अनुचित इस्तेमाल किया जाना, समय पर न पढाना एव अरुचिकर शिक्षण विधि का प्रयोग छात्रो के समक्ष गलत आदर्श प्रस्तुत करते है। राजनीतिक दबाव अथवा व्यक्तिगत सबधो के आधार पर परीक्षा मे नकल की छूट एव मूल्याकन मे अको को बढाना-घटाना, छात्र असतोष को बढावा देते है। छात्रों की शिक्षा मे अरुचि एव अनुशासनहीनता का एक प्रमुख कारण उनका अपनी रुचि के विषय मे दाखिला न पाना भी है। इन सबके अतिरिक्त रोजगार की कमी के कारण "छात्र एक कोर्स के बाद दूसरा-तीसरा कोर्स करते है। किसी के लिए विश्वविद्यालय समय बिताने का साधन तो किन्ही छात्रो के लिए राजनीति और रणनीति सीखने की भूमि बन जाता है और शिक्षण सस्थाए 'बेबी सिटिग' का काम करती रह जाती है (बख्शी, 1995)। अत शिक्षको के अनुचित मार्गदर्शन, छात्रों मे उत्तरदायित्व की कमी एव वित्तीय समस्याओ के कारण उच्च शिक्षा केन्द्र अनुशासनहीनता के प्रशिक्षण सस्थान बनते जा रहे हैं।

शिक्षा सत्र की समस्या

भारत मे अनियमित शिक्षा सत्र का होना एक आम बात है। पढने वाले छात्रो को तीन वर्ष का कोर्स पूरा करने मे सात-सात वर्ष तक लग जाते है। बिहार राज्य इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके विपरीत तीन-तीन वर्ष तक कोर्स की किताबो से दूर रहने वाले छात्र तीन महीनो से भी कम समय मे पाच-पाच सवालो को चुनकर प्रथम श्रेणी मे पास हो जाते हैं। यदि तीन वर्ष का कोर्स तीन महीने मे पढा जा सकता है तो फिर हमारी पूरी शैक्षिक योजना सरासर गलत है। यदि नही तो पूरी मूल्याकन पद्धति गलत है और भ्रष्ट लोगों द्वारा सचालित है। कभी शिक्षक हडताल, कभी कर्मचारी हडताल तो कभी छात्र बन्दी—तीन वर्ष की डिग्री सात वर्ष मे मिलती है। तब तक छात्र प्रतियोगी परीक्षाओ मे सम्मिलित होने की उम्र भी पार कर जाता है। व्यवस्था से हताश, निराश एव भग्नाशायुक्त होकर वह बेवक्त बूढा हो जाता है। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा केन्द्र राजनीतिक चरागाह मे भी तब्दील हो गए है। राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियो के सरक्षण मे भी असामाजिक तत्व छात्र सघ की मठाधीशी करते है और

भ्रष्ट छात्र राजनीति को सीचते है, जिसका परिणाम परीक्षा का बहिष्कार, पेपर आउट होना, शिक्षको की पिटाई, बमबाजी और अतत साइने–डाई (अनिश्चितकालीन स्थगन) होता है। इन सबके परिणामस्वरूप सत्र का अनियमित होना स्वाभाविक है। पर उच्च शिक्षा के मदिरो मे इस समस्या से निपटने के लिए कोई कारगर व्यवस्था नही हो पा रही है।

अन्य समस्याएं

उपर्युक्त समस्याओ के अतिरिक्त भी उच्च शिक्षा अनेक व्याधियो से ग्रस्त है जिनका एक साथ हवाला दे पाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु यह निश्चित है कि शिक्षा व्यक्तिगत स्तर पर महगी हुई है अत कमजोर आर्थिक स्तर के छात्रो का प्रतिनिधित्व प्रभावित हो रहा है। उच्च शिक्षा मे महिलाओ और कमजोर वर्गो का प्रतिनिधित्व अभी भी कम है। मानव ससाधन विकास मत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1990–91) के अनुसार वर्ष 1989–90 मे उच्च शिक्षा स्तर पर कुल नामाकन के अनुपात मे लडकियो का नामाकन 32 5 प्रतिशत है। "उच्च शिक्षा मे ग्रामीण छात्रो का भी उचित प्रतिनिधित्व नही है" (सिह, 1992)।

अत प्रतिदिन समस्याओ की सख्या, विषमता और जटिलता बढती ही जा रही है। शिक्षा आयोग (1964–66, पृ 505) का यह निष्कर्ष अभी भी प्रासगिक है कि "यह स्वाभाविक है कि, यदि उच्च शिक्षा मे व्यापक परिवर्तन नहीं किया गया तो हमारा प्रशासनिक और तकनीकी विकास, हमारा बौद्धिक स्तर और सामाजिक उन्नति सभी बाधित हो–जाएगे।" अत वर्तमान समस्याओ को ध्यान मे रखते हुए एक ऐसी वैकल्पिक विधि के सरक्षण एवं सवर्धन की आवश्यकता है जिसमे वर्तमान समस्याओ को निगलने अथवा कम करने की क्षमता निहित हो।

समस्याओं का समाधान : दूरवर्ती शिक्षा

भारत मे 1962 मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पहली बार "पत्राचार शिक्षा" शुरू की गई। इसकी सफलता और आवश्यकता के आधार पर एव शिक्षा आयोग (1964–66) के सुझाव पर यह पजाब, मेरठ एव मैसूर मे भी शुरू की गई। "अब तक भारत मे 7 खुले विश्वविद्यालय और 43 द्विविधि (ड्यूवल मोड) विश्वविद्यालय है" (खनका, 1994)। पत्राचार शिक्षा की व्यापक एव आधुनिकीकृत विधि ही दूरवर्ती विधि है। पारपरिक उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे व्याप्त कतिपय व्याधियो के समाधान मे दूरवर्ती विधि किस सीमा तक सफल हुई है, इसका आकलन निम्न विश्लेषण के आधार पर किया गया है

नामांकन की समस्या का समाधान

उम्र, लिग, वर्ग, जाति, समुदाय, धर्म और भौगोलिक सीमाओ को पार कर दूरवर्ती शिक्षा, शिक्षा के प्रत्येक जिज्ञासु के दरवाजे तक पहुची है। जहा 1962-63 मे इस क्षेत्र मे मात्र 1,112 विद्यार्थी नामाकित थे वही "1990–91 मे 5,71,258 विद्यार्थी पत्राचार दूरवर्ती शिक्षा के क्षेत्र मे नामाकित थे" (यू जी सी वार्षिक रिपोर्ट, 1990–91)। योजना (1994) के अनुसार अकेले इदिरा गाधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मे 1986–87 मे 4381 विद्यार्थी थे जबकि अब यह सख्या बढकर 2,25,000 हो गई है। यही नही बल्कि, "यह भी अनुमानित है कि आठवी योजना के दौरान 40% अतिरिक्त नामाकन भार को भी दूरवर्ती शिक्षण सस्थान ही वहन करेगे और इस योजना के अन्त तक उच्च शिक्षा मे कुल नामाकन के 16 5% के लिए दूरवर्ती शिक्षा ही उत्तरदायी होगी" (योजना 1994, कुलदई स्वामी और श्रीनिवासन 1994)। अत समस्त भेदभाव की सीमाओ को पारकर दूरवर्ती शिक्षा मे तेजी से बढते एव अपेक्षित नामाकन से यह उजागर होता है कि उच्च शिक्षा मे बढते नामाकन भार को सहने की दूरवर्ती शिक्षा मे असीम शक्ति है।

स्तर की समस्या का समाधान

दूरवर्ती शिक्षा मे अधिकाशत वे ही विद्यार्थी नामांकन कराते है जो शिक्षा की आवश्यकता महसूस करते है।

अत वे अपनी रुचि के कोर्स मे ही नामाकन कराते है। इसके अतिरिक्त "इन शिक्षण सस्थानो मे स्वाध्याय के लिए दी जाने वाली पाठ्य सामग्री की उत्तम और स्तरीय बनाने के लिए अनुभवी और कुशल विद्वानो की सेवाए प्राप्त की जाती हैं" (कुलदई स्वामी, 1995)। इसके साथ ही विद्यार्थी बिना किसी दबाव के अपनी रुचि क्षमता, और गति के अनुसार पढने के लिए स्वतत्र रहते है। इन्ही कारणो से कुरुक्षेत्र जैसे द्विविधि विश्वविद्यालयो मे पारपरिक विधि से पढने वालो की अपेक्षा पत्राचार शिक्षा के विद्यार्थियो की उपलब्धि बेहतर रही है (टाइम्स आफ इडिया, 1993)। उच्च शिक्षा के पारम्परिक शिक्षण सस्थानो मे अच्छे स्तर को बनाए रखने के लिए शिक्षको एवं विद्यार्थियो पर दबाव रखना पडता है, परन्तु दूरवर्ती शिक्षा मे शिक्षण सस्थान एव विद्यार्थी दोनो ही अच्छा स्तर प्राप्त करने के लिए स्वय ही प्रतिबद्ध रहते है। यही कारण है कि, "मुक्त विश्वविद्यालय पारपरिक शिक्षण संस्थाओ की अपेक्षा अधिक स्तरीय है" (कुलदई स्वामी, 1995)।

वित्तीय समस्या का समाधान

वित्तीय सक्रमण के इस दौर मे कई पारपरिक उच्च शिक्षण सस्थान पत्राचार शिक्षा की शरण ले रहे है और वह द्विविधि उच्च शिक्षण सस्थानो मे परिवर्तित हो गए है। वाराणसी काशी विद्यापीठ इसके सबसे नए उदाहरणों मे से एक है। दूसरी तरफ यह भी सर्वविदित है कि दूरवर्ती शिक्षण सस्थानो को पारपरिक उच्च शिक्षण सस्थाओ की अपेक्षा सरकारी कोष से कम धन उपलब्ध कराया जाता है। खर्नका (1994) के अनुसार स्नातक के नीचे स्तर पर इन सस्थानो मे प्रति विद्यार्थी व्यय 600 रुपये है वही पारपरिक शिक्षण सस्थानो मे यह 4800 रुपये है जबकि भटनागर (1989) के अनुसार पारंपरिक शिक्षा की सामाजिक लागत दूरवर्ती शिक्षा से अपेक्षाकृत तीन गुनी है। योजना (1994) के अनुसार इंदिरा गाधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मे अत्याधुनिक शिक्षण तकनीकी का प्रयोग करने पर भी स्नातक डिग्री पर आने वाली लागत उसी तरह के शिक्षण के लिए पारपरिक शिक्षा मे आने वाली लागत के आधे से भी कम है। इन सस्थानो मे "छात्रो की सख्या जितनी ही बढेगी, प्रति विद्यार्थी व्यय भी उतनी ही कम होती जाएगी" (दत्त 1993, कुलदई स्वामी और अनुशासन 1995)। अत वर्तमान एव भविष्य दोनो की ही वित्तीय समस्या को ध्यान मे रखते हुए शिक्षा की दूरवर्ती विधि लाभप्रद है।

शिक्षण विधि की समस्या का समाधान

शिक्षण के आधुनिक सिद्धान्तो के आधार पर एक से अधिक माध्यमो का समुचित प्रयोग कर शिक्षा को रुचिकर और सर्वग्राह्य बनाना दूरवर्ती विधि की विशेषता है। इसमे यदि आर्थिक स्रोतो से प्राप्त धन का प्रयोग मात्र शिक्षण सुविधा बेहतर बनाने मे हो तो शिक्षण और भी आकर्षक बनाया जा सकता है। परन्तु मुखोपाध्याय (1989) के अनुसार अधिकतर पत्राचार शिक्षण सस्थानो मे ऐसा नही होता है। फिर भी हम कह सकते है कि दूरवर्ती शिक्षा मे उपलब्ध पाठ्य सामग्री स्तरीय होती है और विद्यार्थी अपनी आवश्यकता एव सुविधा के अनुसार शिक्षकों से व्यक्तिगत सम्पर्क बना सकते हैं अथवा निकटतम पठन केन्द्र से आवश्यकतानुसार आधुनिक साधनो का उपयोग कर ज्ञान-प्राप्त कर सकते है। अत बेहतर शिक्षण विधि का प्रयोग कर ज्ञान को विद्यार्थी तक पहुचाने मे दूरवर्ती विधि कारगर सिद्ध हुई है।

अनुशासन की समस्या का समाधान

अपने उद्देश्य के प्रति सजग और व्यस्त व्यक्ति को अन्यथा सोचने अथवा गलत कार्यो मे सलग्न होने की फुर्सत नही रहती है। ठीक उसी प्रकार दूरवर्ती शिक्षा मे नामाकित विद्यार्थी अपने उद्देश्य के प्रति सजग और चैतन्य रहते है। इसके अतिरिक्त उन्हे जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी संलग्न रहना पडता है। अत न तो उनके पास फालतू समय होता है, न ही ये शिक्षण सस्थान उन्हे कोई ऐसा अवसर प्रदान करते है। विद्यार्थी ही नही बल्कि पाठय सामग्री तैयार करने वाले विद्वतजनों एव

पठन केन्द्र पर उपलब्ध शिक्षको को भी पारम्परिक शिक्षा के शिक्षको की तरह राजनीति करने या छात्रो को राजनीति मे घसीटने की न तो फुर्सत मिल पाती है न ही कोई अवसर प्राप्त हो पाता है। अत अनुशासनहीनता का सवाल ही नही उठता।

शिक्षा सत्र की समस्या का समाधान

दूरवर्ती शिक्षा विद्यार्थी को सुविधानुसार सस्था द्वारा निर्धारित समय श्रेणी मे कभी भी सस्था को सूचित कर एव निर्धारित योग्यता प्राप्त कर डिग्री अर्जित करने का पूर्ण अवसर देती है। दूसरी तरफ शिक्षण सस्थान भी आसानी से समय पर डिग्री उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध रहते है। अत अनियमित शिक्षा सत्र की समस्या दूरवर्ती शिक्षा मे संभव ही नही है।

अन्य समस्याओं का समाधान

भटनागर (1989) ने पजाब विश्वविद्यालय के एक अध्ययन मे यह पाया है कि पारम्परिक शिक्षा मे सामाजिक एव व्यक्तिगत दोनो ही स्तर पर कम आर्थिक लागत आती है। अत विद्यार्थी के व्यक्तिगत आर्थिक दृष्टिकोण से भी दूरवर्ती शिक्षा को अपनाना बेहतर है। यही नही महिलाओ के लिए भी दूरवर्ती शिक्षा एक बेहतर माध्यम है। यू जी सी वार्षिक रिपोर्ट (1990–91) के अनुसार पत्राचार दूरवर्ती शिक्षा मे नामाकित कुल 5,71,258 विद्यार्थियो में 2,14,597 महिलाए थी, जो कि कुल नामाकन का 37 56% है। यह प्रतिशत महिलाओं के पारम्परिक शिक्षा मे कुल नामाकन प्रतिशत के मुकाबले 5% से अधिक है। इसके अतिरिक्त, "रूढिग्रस्त भारतीय समाज की ग्रामीण, पर्वतीय एव अन्य दूर–दराज क्षेत्रो की महिलाओ के लिए भी दूरवर्ती शिक्षा ने शिक्षा के दरवाजे खोल दिए है।" (सिह, 1995)।

निष्कर्ष

वर्तमान समय मे "भारत की कुल जनसंख्या के अनुपात मे विश्वविद्यालय की शिक्षा मात्र 7% लोगो को ही उपलब्ध है।" (योजना, 1994)। खनका (1994) के अनुसार 1982–83 से 1988–89 तक के समय मे दूरवर्ती शिक्षा मे नामाकन वृद्धि दर 16 2% रही है जबकि पारम्परिक शिक्षा मे यह दर मात्र 3 9% ही रही है। अत विद्यार्थियो के बढते नामाकन ज्वार को सह पाने मे जहा उच्च शिक्षा अक्षम दिखाई देती है वही दूरवर्ती शिक्षा ने इस अतिरिक्त नामाकन भार को काफी कम ही नही किया है बल्कि यह अतिरिक्त नामाकन की अभूतपूर्व क्षमता भी रखती है।

उच्च शिक्षा मे बढते कालेजो एव विश्वविद्यालयो के अयोग्य शिक्षको एव विद्या के अनिच्छु विद्यार्थियो के कारण जहा शिक्षा का स्तर गिरा है वहीं दूरवर्ती शिक्षा ने अत्याधुनिक तकनीकी का प्रयोग कर शिक्षा का स्तर बरकरार रखा है। दिन–दिन बढते आर्थिक बोझ के दौर मे नए विश्वविद्यालय खोलने कठिन है, साथ ही उच्च शिक्षण सस्थान जब वित्तीय समस्याओ से घिरे हुए है तो दूरवर्ती शिक्षा कम लागत मे अच्छे स्तर की शिक्षा देने मे सफल रही है। छात्र–शिक्षक अनुशासनहीनता एव अनियमित सत्र उच्च शिक्षण सस्थानो को प्रदूषित किए हुए है पर दूरवर्ती शिक्षा मे इन समस्याओ की कोई सम्भावना ही नही है। उच्च शिक्षण सस्थानो पर लिग भेद, जाति भेद एव क्षेत्र भेद का आरोप है, पर दूरवली शिक्षा इन सब भेदो से परे शिक्षा के हर जिज्ञासु के दरवाजे तक स्वय पहुचने मे कामयाब रही है।

निष्कर्षत प्रमाणिक रूप से हम कह सकते है कि पारम्परिक उच्च शिक्षा मे जहा पुरानी समस्याए जटिल हुई है, और नई समस्याए उभरती जा रही है, वही दूरवर्ती शिक्षा ने पारम्परिक उच्च शिक्षा की पुरानी अथवा नई दोनो प्रकार की कतिपय समस्याओ को निगलने अथवा कम करने मे भरपूर योगदान दिया है। अत. इसकी विशेष क्षमता का ध्यान रखते हुए, इस अपेक्षाकृत नई शिक्षण विधि के सस्थानो के सरक्षण एवं सवर्धन पर सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिए।□□

सन्दर्भ

1 शिक्षा मत्रालय 1966 "शिक्षा और राष्ट्रीय विकास" **शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन** 1964–66, दिल्ली, पृ. 497–630

2 गवर्नमेट आफ इण्डिया, **1965. यू.जी.सी. रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन एजूकेशन स्टेडर्ड्स**, दिल्ली

3. चन्द, एस. (1975) "हायर एजूकेशन इन इण्डिया प्लान्स एण्ड प्रास्पेक्टस", **जरनल ऑफ हायर एजूकेशन**, यू जी सी , नई दिल्ली, मानसून, 1975 पृ 8

4 अग्निहोत्री, आर (1987) **आधुनिक भारतीय शिक्षा: समस्याएं और समाधान**, जयपुर राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ 114–145

5 भटनागर, एस, (1989) " कॉस्ट आफ एजूकेशन ए कम्पेरेटिव विहयू आफ डिस्टेन्स एण्ड कन्वेन्शनल सिस्टम (ए केस स्टडी ऑफ पजाब यूनिवर्सिटी, चडीगढ़, इण्डिया)", **इण्डियन जरनल ऑफ डिस्टेन्स एजूकेशन**, 3, पृ 11–17

6 मुखोपाध्याय, एम (1989) " नेटवर्किंग इन डिस्टेन्स एजूकेशन", **इण्डियन जरनल ऑफ डिस्टेन्स एजूकेशन**, 3, पृ 1–5

7 **वार्षिक रिपोर्ट यू.जी.सी 1989-90**, नई दिल्ली, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया

8 **वार्षिक रिपोर्ट यू.जी सी. 1990-91**, नई दिल्ली, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया

9 **वार्षिक रिपोर्ट मानव ससाधन विकास मंत्रालय 1990-91**, नई दिल्ली, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया

10 **वार्षिक रिपोर्ट यू.जी सी. 1992-93**, नई दिल्ली, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया

11 सिह, एम एन (1992) "स्कूली शिक्षा और आधुनिक समाज" गवर्नमेट" **योजना**, 36'14, 15 सितम्बर, 1992, पृ 2–4

12 दत्त, आर (1993) " कास्ट एनालिसिस आफ डिस्टेन्स एजूकेशन इन्स्टीट्यूशन विद डिफरेन्ट साइज क्लासेज इन इण्डिया मेन फाइन्डिगस आफ ए स्टडी" **काकटिया जरनल ऑफ डिस्टेन्स एजूकेशन इन सर्च ऑफ एन अल्टरनेटीव पर्सपेक्टीव**, 21, पृ 109–132.

13 जोशी, ए (1993) "भारत मे उच्च शिक्षा की स्थिति का मूल्याकन", **योजना** 37'14, 15 सितम्बर, 1993, पृ. 13–14

14 पुनात्तेकर, एस० पी० (1993) हायर एजूकेशन एण्ड इण्डियन सोसल रिएलिटी एन ओवरव्हयू **एम्पलायमेन्ट न्यूज़**, 14-20 अगस्त 1993

15 **टाइम्स ऑफ इण्डिया**, दिसम्बर, 1993

16 कुलदई स्वामी, वी सी और श्रीनिवासन, टी आर (1994) "फेसिग न्यू चैलेन्जेज थ्रू डिस्टेन्स एजूकेशन" **योजना**, 38 12,26 जनवरी, 1994 पृ 42–46

17 कुलदई स्वामी, वी सी (1995) "नजरिया और रवैया बदलना चाहिए", **मनोरमा इयर बुक** 1995, पृ 22–25

18 **योजना** (1994) डिस्टेन्स एजूकेशन – न्यू विस्टास आफ नालेज **योजना**, 38 11, 30 जून, 1994, पृ 21,25

19 खनका, एस एस (1994) "इन्क्रीजिंग एसेस टू डिस्टेन्स एजूकेशन", **योजना**, 38 22, 15 दिसम्बर, 1994, पृ. 19–21

20 राजपूत, जे एस. (1995) "दिल्ली फिलहाल उच्च शिक्षा का केन्द्र", **मनोरमा इयर बुक 1995**, पृ. 16–17

21 बख्शी, यू (1995) "हमारी शिक्षा मे सवैधानिक मूल्यो को नही लिया गया" **मनोरमा इयर बुक 1995**, पृ 18–19

22 **मनोरमा इयर बुक 1995** (उच्च शिक्षा विशेषाक), कोट्टयम पृ 15–36, 525–532

23. सिह, एम (1995) "ए स्टडी ऑफ ओमेन एज बेनिफिसियरीज ऑफ डिस्टेन्स एजूकेशन इन इण्डिया", **अप्रकाशित शोध ग्रथ**, वाराणसी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

24 **जनसत्ता**, अक्टूबर, 1995

प्रयोजनमूलक हिंदी का स्वरूप

डा. हीरालाल बाछोतिया

के 40 एफ, साकेत
नई दिल्ली 110 017

साहित्यिक हिन्दी के अतिरिक्त हिन्दी का एक अपेक्षाकृत नवीन रूप उभर कर सामने आ रहा है जिसे प्रस्तुत लेख मे प्रयोजन मूलक हिन्दी की संज्ञा दी गई है। हिन्दी भाषा को राजभाषा के पद पर सही रूप मे प्रतिष्ठित करने के लिए इसी व्यावसायिक हिन्दी, कामकाजी हिन्दी या प्रयोजनमूलक हिन्दी को अधिक समृद्धशाली और व्यापक बनाने की आवश्यकता है। लेखक ने इस लेख में प्रयोजनमूलक हिन्दी के वास्तविक अर्थ और उसके रूपों को वर्णित किया है।

प्रयोजनमूलक हिंदी, कामकाजी हिंदी, व्यावहारिक हिंदी आदि ऐसे शब्द है जिनका आजकल प्राय प्रयोग किया जा रहा है। प्रशासनिक और प्रशासन से जुडे कार्य-व्यापारो के लिए इन शब्दो का प्रयोग विशेष रूप से देखा जा सकता है। इस तरह हिंदी के दो रूप देखे जा सकते है

- साहित्यिक रूप जिसकी परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है तथा जिसने भाव रूप व अभिव्यक्ति की अनेक भगिमाओ, शैलियो एव पद्धतियो को विकसित किया है। हिंदी का यह साहित्यिक रूप बहुत समृद्ध तथा सम्पन्न है।
- हिंदी का एक अन्य रूप जिसे प्रयोजनमूलक हिंदी कहा जाता है अपेक्षाकृत नया है। किन्तु यही उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप भी है। यह जीवन की विविध स्थितियो और आवश्यकताओ के सपादन हेतु प्रयोग मे आने वाला रूप है। बदली हुई स्थितियो मे प्रयोजन विशेष अथवा कार्य विशेष के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भाषा प्रयोजनमूलक भाषा होती है। इस प्रकार प्रयोजनमूलक हिन्दी का अर्थ हुआ हिदी का उपयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए करना। अधिकारियो, इजीनियरो, वकीलो, व्यापारियो आदि के विशिष्ट समूह होते है, जिनमें विशिष्ट प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है। किसी भी भाषा के दो पक्ष होते है। एक का सम्बन्ध हमारी सस्कृति की अभिव्यक्ति और आनन्दानुभूति से है तो दूसरे का सबध विशेष रूप से सामाजिक आवश्यकता और व्यवस्था से है। भाषा का यह गुण समाज सापेक्ष है और रोजमर्रा के काम-काज के लिए सम्प्रेषण का माध्यम है। यही भाषा का प्रयोजनमूलक पक्ष है।

वैचारिक पक्ष

आज वैज्ञानिक, औद्योगिक, वाणिज्यिक और प्रशासनिक आदि सभी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भाषा का जो रूप उभर रहा है, वह 'प्रयुक्ति' के रूप मे सामने आ रहा है। इसी कारण 'वैज्ञानिक हिदी', 'तकनीकी हिदी', 'कार्यालयीन हिदी' जैसे शब्दो का प्रयोग आम हो रहा है। विषय-विशेष से सबद्ध शब्दावली की सरचना हो रही है। नवीन शब्दो के साथ-साथ शब्द की सरचना भी प्रभावित हो रही है। वैज्ञानिक विषयो की तटस्थता से व्यक्त करने के लिए कर्मवाच्य और भाववाच्य सरचनाए ही अधिक उपयुक्त है। तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक, औद्योगिक तकनीकी, प्रशासनिक आदि क्षेत्रो मे प्रयुक्त हिदी के विविध रूप 'प्रयोजन मूलक हिंदी' के ही विविध रूप है, जिनकी शैली सामान्य भाषा की शैली से भिन्न देखी जा सकती है।

भाषा, व्यक्ति और समाज का सबध त्रिभुज की तीन भुजाओं जैसा है। भाषा, व्यक्ति को समाज से जोडती है तथा व्यक्ति और समाज के बीच भाषा एक कडी का

कार्य करती है। समाज के सदर्भ बदलते रहते हैं। वैज्ञानिक अनुसधान से सबद्ध सस्थान का समाज एक अलग समाज है और प्रशासनिक कार्यालय का समाज एक दूसरा समाज है। इसी प्रकार वाणिज्य, बैक, उद्योग का अपना अलग समाज है। समाज के इन भिन्न समूहो के विषय एक-दूसरे से अलग होते है। विशिष्ट समाज की अपनी भाषा भी एक सीमा तक अलग-अलग होते है। प्रयोग के विशिष्ट प्रयोजन के कारण उस भाषा के सर्वमान्य रूप मे भी भिन्नता आ जाती है। किसी भाषा के ये विविध रूप उस प्रयोजन विशेष पर ही आधारित है। विभिन्न प्रयोजनो के लिए गठित समाज या समूह की भाषा के विभिन्न रूप ही भाषा के प्रयोजनमूलक पक्ष है।

इधर प्रयोजनमूलक हिंदी के प्रति सजगता आई है किन्तु उसके स्वरूप को हिंदी भाषा के अन्य रूपो से अलग कर देखने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से हिंदी के ये रूप देखे जा सकते है (क) सामान्य हिदी, (ख) साहित्यिक हिंदी, (ग) व्यावसायिक हिदी।

□ **सामान्य हिंदी** व्यक्तिगत स्तर पर प्रयुक्त हिदी के बोलचाल का रूप ही सामान्य हिदी है। इसकी स्थिति मूलत हिदी के मातृभाषिक क्षेत्र तथा उसके आस-पास के क्षेत्रो तथा अन्य शहरी क्षेत्रो मे देखी जा सकती है। इनमे ऐसे क्षेत्र भी है जो सीधी तरह हिदी के क्षेत्र नही कहे जा सकते किंतु अनेक कारणो से, मातृभाषिक क्षेत्र की भूमिका निभाते है। उदाहरण के तौर पर हैदराबाद, मुम्बई, कलकत्ता आदि शहरो मे भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी आपस मे टूटी-फूटी हिदी मे ही बातचीत करते है। ऐसे शहरो मे काफी सख्या मे ऐसे परिवार है, जिनके घरो मे अब हिदी ही घर की भाषा बन चुकी है। इस सामान्य हिदी के प्रयोग मे व्याकरण के नियमो अथवा भाषा के मानकीकरण के नियमो का अभाव आम बात है। यहा भाषा निर्बाध होती है और अलग–अलग स्थानो मे अनायास इसके अलग-अलग रूप भी प्रचलित है जैसे– बनारसी हिदी, लखनवी हिंदी, हैदराबादी हिदी आदि। स्थानीय प्रयोगपरक रूप के चलते भाषा अलग-अलग नामो से पुकारी जाती है।

□ **साहित्यिक हिंदी :** इसका तात्पर्य उस हिदी से है जिसका प्रयोग साहित्य मे होता है। यह हिदी सामान्य हिदी से भिन्न कलात्मक, लालित्यपूर्ण, रोचक तथा शब्दशक्ति और अलकार आदि के चमत्कारपूर्ण कौशल से सम्पन्न होती है।

साहित्यिक हिदी का सबध मूलत मानव हृदय या हमारे भाव पक्ष व कला पक्ष से है। महान साहित्यकारो, कलाकारो की कृतियो मे इसका आस्वादन सुलभ होता है। जीवन के व्यावसायिक और तकनीकी पक्ष के साथ यह भाषा नही चल सकती।

□ **व्यावसायिक हिंदी** · व्यावसायिक हिदी को व्यावहारिक हिदी, कामकाजी हिदी अथवा प्रयोजनमूलक हिदी के नाम से भी अभिहित किया जाता है। तथापि इसके लिए अधिक प्रचलित नाम प्रयोजनमूलक हिदी ही है।

व्यावसायिक हिंदी व्यवसाय अर्थात–रोजी-रोटी तथा जीवन के अभिप्रेत लक्ष्यो से सबद्ध क्षेत्रो, यथा प्रशासन, समाज, राजनीति, कृषि, व्यापार,उद्योग, विधि, अर्थ, प्रशिक्षण, चिकित्सा, अभियात्रिकी, ज्योतिष, दर्शन, मनोविज्ञान आदि के लिए चितन, मनन एव अभिव्यक्ति की हिंदी है। यह जीवन की दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तो उपयोग मे आती ही है भविष्य की योजनाओ को रूपायित करने एवं तत्सम्बन्धी तकनीकी तथा व्यावसायिक क्रियाकलापो के सपादन की भूमिका भी निभाती है। अत हम कह सकते है कि व्यावसायिक हिदी, वह हिदी है जिसका सबध हमारे व्यावसायिक कार्यकलापो, कार्यालयीन व्यवहारो, ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र एव व्यवहार से है। फलस्वरूप इसे विशिष्ट प्रयोजनपरक अथवा प्रयोजनमूलक हिदी की सज्ञा दी जाती है। प्रयोजनमूलक हिदी अपनी सामर्थ्य और सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से आज पर्याप्त सम्पन्न हो चुकी है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि प्रयोजनमूलक हिदी का प्रयोग प्रयोजन विशेष से अर्थात उद्देश्य विशेष से प्रयुक्त होने वाली हिंदी से ही है। यह तो निर्विवाद है कि सामान्य

हिंदी तथा साहित्यिक हिंदी से भिन्न जो हिंदी है वही प्रयोजनमूलक हिंदी है। परन्तु ऐसी हिंदी के लिए प्रयोजनमूलक शब्द पर यदि विचार करे तो उसमे भी ऐसी अनेक बाते देखने को मिलेगी जो भ्रम पैदा कर सकती है। अथवा इसके अन्तर्गत आने वाले विशाल और विशद साहित्यो की व्यापकता को अपने मे समेटने मे असमर्थ हो सकती है। दूसरी बात यह है कि प्रयोजनमूलक हिदी के शब्दार्थ को स्वीकार करने पर सामान्य बोलचाल की हिन्दी और साहित्यिक हिदी भी इसके दायरे मे आ जाती है। यही कारण है कि कुछ विद्वानो ने साहित्यिक हिदी को, तो कुछ विद्वानो ने सामान्य व्यवहार की हिदी को प्रयोजनमूलक हिदी के अन्तर्गत लिया है। किंतु उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयोजनमूलक हिदी की एक निश्चित पहचान बनती जा रही है।

प्रत्येक भाषा का एक आधारभूत व्याकरण होता है, जो विभिन्न सामाजिक सदर्भो मे समरूप दृष्टिगोचर होता है, किंतु अगर भाषा जीवत है, तो विभिन्न रूपों मे विभिन्न स्वरूप धारण करने मे भी समर्थ होती है। भाषा एक सामाजिक यथार्थ है तथा हिदी एक जीवत भाषा के रूप मे प्रचलित और प्रयुक्त है। अत' इसके प्रचलन और प्रयोग के अनेक रूप समाज मे उपलब्ध है। हिदी-भाषा इस समय अनेक सामाजिक, सास्कृतिक, शास्त्रीय या वैज्ञानिक और शैक्षिक सदर्भो मे उपयोग मे आ रही है।

प्रयोजनमूलक हिंदी के भेद

प्रयोजनमूलक हिदी के स्वरूप की व्याख्या भिन्न-भिन्न किंतु सार्थक, सामाजिक, सास्कृतिक प्रशासकीय तथा शैक्षिक आधारो पर करनी होगी। केवल साहित्यिक दृष्टि से भाषा शिक्षण की व्यवस्था न व्यावहारिक होगी और न सार्थक। कुल मिलाकर हिदी के मुख्य प्रयोजनमूलक रूप निम्नलिखित माने जा सकते है (1) सामान्य बोलचाल की हिदी, (2) वाणिज्यिक हिदी . इसके अनेक उपभेद सभव है, जैसे–विविध मडियो का भाषा रूप, सर्राफो–सुनारो–दलालो की भाषा, सट्टा–शेयर बाजार की भाषा आदि, (3) कार्यालयीन हिदी इसके अतर्गत भी भाषा के कई उपरूप दृष्टिगोचर होते है ससद, मत्रालय, सेना, बैक आदि मे प्रयुक्त भाषा मे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है, (4) शास्त्रीय हिदी विभिन्न शास्त्रो मे प्रयुक्त भाषा भी पारिभाषिक शब्द-प्रयोग के स्तर पर भिन्न होती है। इसके अन्तर्गत सगीत, समीक्षा, दर्शनशास्त्र, योग, राजनीति, विधि, चिकित्सा आदि शास्त्रो की भाषा का रूप देखा जा सकता है, (5) तकनीकी हिदी अभियात्रिकी, बढईगिरी, लुहारी, छापाखाना, फैक्टरी, मिल आदि की तकनीकी भाषा के रूप मे प्रयुक्त होती है, (6) सामाजिक/साहित्यिक हिदी।

- **कार्यालयी हिंदी :** सरकारी कार्यालयो मे प्रशासनिक कार्यो तथा कार्मिक प्रबधन व औद्योगिक सबध आदि से सबद्ध कार्यव्यापारो को निपटाने के लिए प्रयुक्त होने वाली हिदी कार्यालयी हिदी है। कार्यालयी हिदी के अन्तर्गत टिप्पणिया, पत्राचार, बैठको की कार्यसूची, कार्यवृत्त, ज्ञापन, अनुस्मारक, कार्यालय आदेश, निविदा–सूचना तथा निविदा सबधी अन्य कागजात, करार, ठेका आदि से सबधित कागज पत्रो को सम्मिलित किया जा सकता है।
- **सूचनापरक एवं प्रचारात्मक हिंदी :** सूचनापरक एव प्रचारात्मक हिदी के अतर्गत प्रेस-विज्ञप्ति, विज्ञापन, समाचार, रिपोर्ट, आकाशवाणी एव दूरदर्शन से प्रसारित विभिन्न सूचनापरक सामग्री आ सकती है।
- **औद्योगिक अथवा व्यावसायिक हिंदी :** औद्योगिक हिदी के अतर्गत उद्योगो, व्यापारो, बाजारो आदि की हिदी सम्मिलित है। इसके अतर्गत छोटे–छोटे ग्रामीण हाट–बाजारो से लेकर सट्टा बाजारो, मीडिया से लेकर अनाज, कपड़े, बर्तन, साज–सामान आदि सभी तरह के व्यापारो के क्रय-विक्रय को सम्पादित करने वाली हिदी शब्दावली को शामिल किया जा सकता है।
- **शास्त्रीय हिंदी :** शास्त्रीय हिदी का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत समाज शास्त्री, काव्य, भाषा, विधि

आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। निश्चित ही इन शास्त्रो की अपनी शब्दावलिया है और उनके अपने-अपने पृथक सदर्भ भी है।

□ **वैज्ञानिक/तकनीकी हिंदी** : वैज्ञानिक क्षेत्र बडा ही विशद और व्यापक है। आज के वैज्ञानिक युग मे इस क्षेत्र मे नए-नए प्रयोगो और नई-नई खोजो के परिणामस्वरूप नई-नई सकल्पनाओ का तेजी से विकास हो रहा है। अत: इसका महत्त्व और भी अधिक हो गया है। विज्ञान की तीव्र गति के कारण रोज नए शब्द प्रयोग मे आ रहे है लिहाजा हिंदी मे भी नई-नई सकल्पनाओ को अभिव्यक्ति देने वाली नई-नई शब्दावलिया अनायास ही आती जा रही है। हमारा वैज्ञानिक साहित्य इनसे सपुष्ट होकर और भी सबल होता जा रहा है। वैज्ञानिक हिंदी के अतर्गत भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, नृ-विज्ञान, मनोविज्ञान, ध्वनि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि का समावेश अपेक्षित है।

इसी के साथ बढईगिरी, लुहारगिरी आदि से लेकर वैमानिकी, खनिजकर्म आदि कार्यों से सबद्ध हिंदी भी विकसित हो रही है। कर्मशाला (वर्कशाप), रेफ्रीजरेशन, सयत्र तकनीकी आदि से संबद्ध हिंदी इसी के अतर्गत आती है।

□ **साहित्यिक हिंदी** : साहित्यिक तथा आध्यात्मिक विषयों के लिए प्रयुक्त भाषा को साहित्यिक हिन्दी कहा जाता है। कुछ विद्वानो ने इस साहित्यिक हिन्दी को अलग माना है कितु बदले हुए जिन सदर्भों मे प्रयोजनमूलक हिंदी की चर्चा की जाती है उसमे वैज्ञानिक तकनीकी एव वाणिज्य सम्बन्धी व्यवसायो के प्रयोजन के लिए काम मे आ रही हिंदी को ही शामिल करना समीचीन होगा। □□

पर्यावरण-संरक्षण : एक शैक्षिक समस्या

रमेशचन्द्र पारीक

अध्यापक
केन्द्रीय विद्यालय नं. 1
मोती डुंगरी के नजदीक
अलवर-301001

शिक्षा समाज का दर्पण है। यही कारण है कि समकालीन सामाजिक समस्याओ के समाधान का दायित्व काफी हद तक शिक्षा को ही वहन करना पडता है। पर्यावरणीय सरक्षण भी इसी शृखला में समसामयिक और विकट समस्या है। प्रस्तुत लेख मे लेखक ने पर्यावरण व मानव समाज के बीच घनिष्ठ संबन्ध का विस्तृत वर्णन करते हुए ऐसे कई शैक्षिक उपायों की ओर इगित किया है, जिनको न केवल शैक्षिक समाज अपितु जन साधारण भी सरलता से कार्यान्वित कर सकता है।

पर्यावरण व शिक्षा का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अच्छा व शुद्ध पर्यावरण प्रसन्नता का आधार होता है, पल-पल खुशियो की सौगात बरसाता है तथा तन व मन से स्वस्थ होने का ठोस प्रमाण प्रस्तुत करता है। पर्यावरण हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य से सीधे जुडा होता है। प्रकृति व जीवो के बीच मधुर सामजस्य होने से समृद्धि के प्रतिमान प्रबल हो जाते है। दोनो मे दोस्ती व पहचान को अभयदान मिलता रहता है। प्रकृति हमेशा जीवो पर असीम दया करती है, अगाध स्नेह लुटाती है, लेकिन प्रतिकार मे मानव द्वारा प्राप्त अशोभनीय व्यवहार से निराश हो उठती है। मानव पल-पल प्रकृति के साथ शराफत के बजाए शरारतपूर्ण व्यवहार करता रहता है। ऐसा करके वह इतराता है। तथापि प्रकृति की सहनशीलता और क्षमाशीलता का कोई पार नही है। मानव स्वय बार-बार गलतिया करके अपने पैरो पर स्वय ही कुल्हाडी मार रहा है। अगर बरबादी का यही ताडव नृत्य चलता रहा तो आने वाली सदी मे बहुत ही शोचनीय व बेबस स्थिति बन जाएगी।

यदि हम अपने आसपास गली-मोहल्लो, सडको, चौराहो, खेतो, पार्को आदि स्थानों पर एक नजर डाले तो पाएगे कि आज सजीवो व पर्यावरण के बीच सबध अच्छा नही है क्योकि भौतिक सुखो की लालसा मे मनुष्य प्राकृतिक ससाधनो का बर्बरतापूर्ण दोहन व प्रकृति से मनमानी छेडछाड कर रहा है। इससे पर्यावरण को गभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। उदाहरण के लिए हाल ही मे केन्द्रीय प्रदूषण नियत्रण मडल ने अपने सर्वेक्षण व रपट मे प्रदूषण फैलाने मे अलवर को देश मे चौथे स्थान पर व राजस्थान मे प्रथम स्थान पर माना है। अपने निष्कर्ष मे मंडल ने यह भी स्पष्ट इगित किया है कि यहां की वायु मे ऑक्साइड का प्रदूषण व्याप्त है जिसके मुख्य कारण औद्योगीकरण, वृक्षो की बेरहम कटाई व अनियत्रित खनन प्रक्रिया है। इससे सरिस्का बाघ परियोजना के वन्य जीव भी प्रभावित हो रहे है। ऐसी चिताजनक व भयानक स्थिति से निपटने के लिए प्रकृति-प्रेमियो व पर्यावरणविदो को आगे आने व पर्यावरणीय विकास कार्यक्रमो को सच्चे मन से कार्यान्वित करने की सख्त आवश्यकता है।

वर्तमान मे इस सबध के बिगडते स्वरूप, सतुलन व ताने-बाने को परिष्कृत करने के लिए पारिस्थितिकी विकास की खास आवश्यकता महसूस हो रही है। ऐसी भयावह स्थिति मे वृक्ष ही हमारी सबसे अधिक मदद कर सकते है। हम सब मिलकर सघन वृक्षारोपण कर, उद्योगो के जहरीले धुए व मलबे को नियत्रित करके, वनो की कटाई रोके तभी पर्यावरण को बचा सकते है। और यह सबकी सामूहिक जिम्मेदारी व नैतिक दायित्व भी होना चाहिए।

एक ओर जनसख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति बनी

हुई है क्योकि आज देश की जनसख्या 91 करोड को पार कर चुकी है तथा दूसरी ओर हम प्राकृतिक ससाधनो का अपने स्वार्थ मे डूबकर गलत तरीके से दोहन कर रहे है। नदियो के साफ जल को गदा कर रहे है, शुद्ध व ताजी हवा को प्रतिपल विविध तरीको से अशुद्ध व बासी बना रहे है, प्राणवायु (ऑक्सीजन) को कार्बन-डाई-आक्साइड मे बदल रहे है, धरती के कृषि योग्य क्षेत्र को निरन्तर घटा रहे है, उपजाऊ भूमि व घने जगलो को साफ करके भव्य इमारते बना रहे है, वाहनो से अनियत्रित प्रदूषण फैला रहे है। हमे इस स्थिति से बचने के उपाय सोचने होंगे। पर्यावरण सबधी विभिन्न समस्याओ के समाधान मिलकर ढूढने के प्रयास करने होगे। आज दिखावे व ढोग से बचकर अपने ध्येय व दायित्व को निष्ठा व आस्था के साथ सच्चे मन से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। पर्यावरण सरक्षण को एक प्रमुख दायित्व समझकर दृढ निश्चय लेने व विश्वसनीयता को पुन. स्थापित करने की प्रबल आवश्यकता है अन्यथा भावी पीढिया हमे कतई क्षमा नहीं करेगी।

सजीवो व प्रकृति के बीच आपसी सबधो के ताने-बाने के अध्ययन को पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) कहते हैं। पारिस्थितिक तत्र मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है – पहला होता है जलीय तत्र जिसमे झील, नदी, तालाब, निर्झर, समुद्र आदि आते है। दूसरा स्थलीय तत्र कहलाता है व इसमे मैदान, वन, पहाड, गुफ़ाए, मरूस्थल इत्यादि आते है। साथ ही मनुष्य के द्वारा निर्मित पारिस्थितिक तंत्र भी होते है जैसे तालाब, नहर, बाध, पार्क, गाव, शहर, ख़ेत इत्यादि। इसी प्रकार प्रदूषण भी विभिन्न प्रकार के होते है जिनमे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, अध्यात्म प्रदूषण, सस्कृति प्रदूषण, वैचारिकी प्रदूषण इत्यादि मुख्य है। गांधी जी ने कहा था कि प्रत्येक मुनष्य की आवश्यकता के लिए हमारी दुनिया मे पर्याप्त ससाधन है परन्तु उसके लालच के लिए नही। हमे यह सोचना होगा कि हम प्रकृति से कितना ग्रहण करे, किस मात्रा व अनुपात मे लें यानी जितना हमारे गुजारे के लिए आवश्यक हो उतना ही ले। हमे प्रकृति के अनुपम उपहारो का सही तरीके से प्रयोग करना चाहिए।

पर्यावरण की दृष्टि से विकृत क्षेत्र के पुनरुद्धार, बढते प्रदूषण की रोकथाम, पर्यावरण विकास, सरक्षण व जनचेतना जाग्रत करने के लिए पर्यावरण व पारिस्थितिकी विकास शिविर आयोजित करने की नितान्त आवश्यकता है। विद्यालयो की भूमिका व सहयोग इस आदोलन को अधिक उत्साह व गति प्रदान कर सकता है। इस जन आदोलन मे बच्चो, युवाओ, प्रौढों व बुजुर्गो सभी का अपनी रुचि, समझ, क्षमता व सामर्थ्य के अनुसार सहयोग अपेक्षित है।

पारिस्थितिकी विकास शिविर के आयोजन की व्यावहारिक गतिविधिया विद्यालय मे अच्छी तरह से क्रियान्वित हो सकती है। स्कूल के छात्रो को इस कार्यक्रम से जोडकर हम पर्यावरण सुधार की दिशा मे क्रियात्मक कदम उठा सकते है। पारिस्थितिकी विकास शिविर के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हो सकते है –

(1) गाव, शहर, स्थान, क्षेत्र को प्रदूषण मुक्त, हरा–भरा व शुद्ध बनाना, (2)छात्र-छात्राओ, समाज व जनसाधारण को पर्यावरण से सबधित जानकारी देना, (3) युवा शक्ति को पर्यावरण सुधार की ओर उन्मुख करना, (4) पर्यावरण सरक्षण के महत्व एव प्राकृतिक ससाधनो के उचित प्रयोग की भावना जगाना, (5) समाज के लोगो का रहन-सहन, खानपान, क्रियाकलाप आदि प्रकृति के अनुकूल बनाने का भाव जाग्रत करना, (6) युवा पीढी एव जन साधारण मे राष्ट्रीय एव भावनात्मक एकता की भावना उत्पन्न करना इत्यादि।

प्रकृति हमारे जीवन को विविध स्वरूपो व आयामो से प्रभावित करती है। हम पूर्ण रूपेण प्रकृति पर निर्भर हैं, फिर भी हैरानी की बात यह है कि हम उसके साथ अच्छा सलूक नही कर रहे है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' मे स्पष्ट कहा था–"परहित सरिस धर्म नहि भाई", किन्तु आज की पीढी के लोग तो ठीक इसके विपरीत आचरण कर रहे है। यदि ऐसी ही स्थिति चलती रही तो आगे के कुछ ही वर्षों मे यानी 21वी सदी

के स्वागत समारोह मे ही प्रकृति भयावह व विकृत रूप धारण कर लेगी। उस समय हमारा जीना, हसना, खाना, पीना, सब कुछ नीरस व दूभर हो जाएगा। इसलिए अब भी हमे सावधान हो जाना चाहिए, सतर्क हो जाना चाहिए। पर्यावरण के प्रति चेतन होने व प्रदूषण को नियंत्रित करने मे ही सबकी भलाई निहित है। हमे अपनी प्रतिभा, समझ, क्षमता के अनुसार पर्यावरण सुधार के लिए जी-तोड प्रयास करने चाहिए। कबीर के शब्दो मे "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब" की तरह ये प्रयास इसी वक्त से प्रारभ कर देने चाहिए क्योकि समय, किसी की प्रतीक्षा नही करता। यदि हम सोते रहे, समय की कीमत से अनभिज्ञ बने रहे तो आने वाले समय मे बहुत पछताना पडेगा। हमे इसका प्रारम्भ घर, पडोस, मौहल्ले से करना चाहिए। हमे पौधे व वृक्ष लगाने, उनकी सुरक्षा (फैसिग) करने, उन्हे भरपूर सरक्षण देने का पुनीत दायित्व वहन करने का ह्रदय से सकल्प करना होगा, एक समर्पित कार्यकर्ता बनना होगा। साथ ही इस योगदान के लिए अधिक से अधिक लोगो को अभिप्रेरित करना होगा, उनका समुचित सहयोग व कुशल मार्गदर्शन लेना होगा। विविध गतिविधियो व व्यावहारिक कार्यक्रमो के माध्यम से (विकास शिविर, चर्चाए इत्यादि) उचित व रचनात्मक स्वरूप प्रदर्शित करना होगा। ऐसा करके ही हम भावी पीढी के सुनहरे भविष्य को बचाने का सपना आलोकित रख सकते है, उज्ज्वल व प्रदूषण मुक्त सवेरे की उम्मीद कर सकते है।

वर्तमान मे मानव ने अपने अथाह स्वार्थ के गर्त मे डूबकर, भौतिक सुख-सुविधाओ के लालच मे सिमटकर, सुविधा भोगी सस्कृति मे अधे होकर प्रकृति प्रदत्त ससाधनो का मनमाने तरीके से व अनुचित शैली मे दोहन करके पृथ्वी पर पर्यावरणीय असतुलन को बढाया है। उसने जल, वायु, भूमि को प्रदूषित करने मे कोई कसर नही छोडी है, यहा तक कि ध्वनि, अध्यात्म, सस्कृति, वैचारिक प्रदूषण को भी बढाया है। बढती जनसंख्या, अशिक्षा, होड की प्रवृत्ति, मन की तृष्णा, भविष्य के प्रति लापरवाही का भाव, प्रकृति प्रेम व जन-जागृति की न्यूनता इसमे सहायक बनी है। इस अविरल प्रदूषित होते पर्यावरणीय वातावरण को रोकने, पारिस्थितिकी के प्रति जनचेतना जाग्रत करने, विखंडित क्षेत्र का भौतिक सुधार करने, लोगो मे मानसिक जागरूकता उत्पन्न करने, सजीवो व प्रकृति के बीच मधुर सबध स्थापित करने, पर्यावरणविदो की खोज करने, उनकी सख्या बढाने, पारिस्थितिकी विकास शिविर आयोजित करने, चर्चाए, गोष्ठिया, सेमीनार व रचनात्मक पहलू उजागर करने की सख्त जरूरत है। मन की तृष्णा पर काबू रखने, वृक्षारोपण करने, उन्हे सरक्षण देने, खनन कार्य को मर्यादित करने, धुए व मलबे को नियत्रित रखने, प्राकृतिक ससाधनो का सदुपयोग करने, वृक्ष मित्र बनने, छात्रो, युवाओ व जनसामान्य को इस आदोलन से सक्रिय रूप मे जोडने की आवश्यकता है। हर पल पारिस्थितिकी विकास को प्रगाढ, सार्थक जनोपयोगी बनाने के दृढ सकल्प को सासो मे बसाने की परम आवश्यकता है। हममे एक अच्छे नागरिक व आदर्श प्रकृति प्रेमी के रूप मे जीने की उत्कठा होनी आवश्यक है। □□

ओपन स्कूल : शिक्षा की एक नवीन संकल्पना

डा. (श्रीमती) आदर्श मदान

आदर्श निकुन्ज, कचहरी रोड
अजमेर - 305001

आज की सामाजिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि मे मुक्त विद्यालय की सकल्पना केवल सैद्धान्तिक धरातल पर न रहकर एक अनिवार्य आवश्यकता-सी बनती जा रही है। ऐसे छात्र जो किसी कारणवश उचित समय पर शिक्षा ग्रहण करने मे असमर्थ रहे हों अथवा कार्य जगत में प्रवेश के पश्चात जो कर्मचारी अपनी पदोन्नति के लिए शैक्षिक उन्नति चाहते हों, उन शिक्षार्थियो के लिए मुक्त विद्यालय व आगे चलकर मुक्त विश्वविद्यालय वरदान सिद्ध हो रहे हैं। प्रस्तुत लेख मे लेखिका ने इसी सन्दर्भ मे राजस्थान बोर्ड द्वारा संचालित ओपन स्कूल की उपलब्धियो का संक्षेप मे वर्णन किया है।

मनुष्य जीवनपर्यन्त एक शिक्षार्थी रहता है। शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने अनुभवो से, अपने माता-पिता से एव अपने स्वजनो तथा आस-पास की परिस्थितियो और वातावरण से प्राप्त अनुभवो द्वारा कुछ न कुछ सीखता चलता है। इसीलिए माता को बच्चे का पहला गुरू माना गया है। प्रारम्भ मे इसी प्रकार के अनौपचारिक तरीको से शिक्षा प्रदान की जाती थी। कालान्तर मे शिक्षा ने एक औपचारिक रूप धारण कर लिया तथा आश्रमो, पाठशालाओ व मदरसो मे विद्यार्थियो को शिक्षा प्रदान की जाने लगी। यह शिक्षा चहार दीवारी मे एक निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार, एक निश्चित कालावधि मे दी जाती थी। सदियो से शिक्षा की यही प्रणाली प्रचलित है। आज इसे औपचारिक शिक्षा पद्धति कहा जाता है जो नियमो और बधनो से बधी हुई होती है।

आधुनिक काल मे शिक्षा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इस बधी हुई शिक्षा पद्धति से हटकर अनौपचारिक शिक्षा पद्धति के कई अन्य स्वरूप विकसित हुए है। वस्तुत शिक्षाविद् यह विचारने लगे है कि जो व्यक्ति किसी विवशता के कारण औपचारिक शिक्षा से वचित रहता है क्या उसे शिक्षा प्राप्ति का कोई अधिकार नही होता? मुक्त शिक्षा पद्धति उन्हे यही अधिकार प्रदान करने के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप मे उभरी है। बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे इसके लिए खुला विद्यालय, खुला विश्वविद्यालय, बिना दीवारो का महाविद्यालय आदि नामो का अधिक प्रचलन हुआ है। इसी क्रम मे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान ने भी माध्यमिक शिक्षा ओपन स्कूल की स्थापना की है।

अनौपचारिक शिक्षा विकास के क्रम मे विद्यालय की चहार दीवारी के बाहर शिक्षा देने के प्रारम्भिक स्वरूपो मे डाक द्वारा शिक्षा, पत्राचार पाठ्यक्रम आदि का विकास हुआ। यह एकल माध्यम पद्धति थी जिसमे मुद्रित विषय सामग्री प्रेषित की जाती थी। परन्तु आज ओपन स्कूल पद्धति एक बहुआयामी और बहुमाध्यमी प्रणाली के रूप मे विकास की ओर अग्रसर है। यह प्रत्येक नागरिक को शिक्षा से जोडने के अवसर प्रदान करती है। ऐसा ही अवसर प्रदान करने का सकल्प लिया है, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान ने जिसके तत्वावधान मे सत्र 1992-93 से ओपन स्कूल पद्धति का शुभारभ हुआ ।

राजस्थान एक ऐसा राज्य है जहा की जनसख्या ढाणियो, गावों एव शहरो मे दूर-दूर तक बिखरी हुई है। रेतीले टीलों मे जहा विद्यालय नही है वहा भी डाक की सुविधा तो है ही। जनसख्या के अनुरूप औपचारिक शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से होने के बावजूद वह हर व्यक्ति तक अभी नही पहुच पाई है। विद्यालयी शिक्षा के अभाव मे अनौपचारिक शिक्षा ऐसे ही दूर-दराज़ के क्षेत्रो, ढाणियो, गावो मे तथा छितरी जनसंख्या वाले क्षेत्रो मे एक वरदान है।

जो व्यक्ति विद्यालय जाने की उम्र पार कर चुके होते है उनके लिए भी ओपन शिक्षा एक और अवसर प्रदान करती है। यह शिक्षा पद्धति व्यक्ति को अपनी क्षमता, गति व सुविधा से, बिना किसी अध्यापक की व्यक्तिगत उपस्थिति के स्वत ही शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्रदान करती है। ओपन स्कूल देश की सामाजिक एव शैक्षिक आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयास है। निरक्षरता के अन्धकार को दूर करने तथा शिक्षा की निरतरता को बनाए रखने के लिए ओपन स्कूल आशा की एक किरण लेकर आए है। उल्लेखनीय है कि ओपन स्कूल पद्धति औपचारिक शिक्षा का एक पूरक साधन है न कि विरोधी।

ओपन स्कूल के उद्देश्य

ओपन स्कूल के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए है

- व्यक्तिगत या सामाजिक कारणो से औपचारिक शिक्षा बीच मे छोडने वालो को पुन शिक्षण सुविधा प्रदान करना।
- औपचारिक शिक्षा के सहयोगी व पूरक माध्यम के रूप मे कार्य करना।
- शैक्षिक स्तर को ऊपर उठाना।
- शिक्षा का प्रसार करना।

ओपन स्कूल प्रत्येक व्यक्ति के पास निर्बाध रूप से शिक्षा पहुचाता है तथा यह पद्धति व्यक्ति के इस स्वातत्र्य का पक्षधर हे कि वह कभी भी अपनी सुविधानुसार विभिन्न माध्यमों का प्रयोग कर सके। ओपन स्कूल प्रणाली के विभिन्न माध्यम इस प्रकार है

मुद्रित पाठ : जब दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र मे पत्राचार पाठ्यक्रम प्रणाली आरम्भ हुई तब मुद्रित पाठ केवल छात्रो के लिए विषय सामग्री का ही समावेश करते थे परन्तु स्वअधिगम की तकनीक ने पाठो का प्रारूप ही बदल दिया। ओपन स्कूल का छात्र अध्यापक के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे नही आता। स्वअधिगम तकनीक से लिखा गया पाठ गुरू का स्थानापन्न होता है जिसमे पाठ की शैली सरल, बोधगम्य व स्व-क्रियात्मक होती है। छात्र को ऐसा आभास होता है कि उसका अध्यापक उसके सम्मुख है। वह स्वय सीखता हुआ अपना सतत मूल्याकन करता जाता है तथा साथ ही अधिगम की प्रतिपुष्टि होती जाती है।

मूल्याकन व मार्ग-दर्शन : ओपन स्कूल पद्धति मे मूल्याकन एक सतत् प्रक्रिया है जो दो प्रकार से पूरी होती है। पहला स्व-मूल्याकन जो पाठो के अध्ययन के साथ-साथ चलता है तथा दूसरा, मूल्याकन जो किसी मूल्याकनकर्ता द्वारा किया जाता है। पाठय सामग्री के साथ लगे उत्तरपत्रो, अभ्यास प्रश्नो को छात्र द्वारा हल किया जाता है। मूल्याकनकर्ता उनका न केवल मूल्याकन करता है अपितु छात्र को उसकी कमजोरियो से अवगत करवा कर उसका उचित मार्ग-दर्शन भी करता है। छात्र अपने अध्यापक व ओपन स्कूल से जुडा रहता है परन्तु अध्यापक का उचित मार्ग-दर्शन व उसकी सकारात्मक टिप्पणी छात्र को सीखने के लिए उत्प्रेरित करती है। नकारात्मक टिप्पणी का इस व्यवस्था मे कोई स्थान नही है।

व्यक्तिगत सम्पर्क : पाठ्य सामग्री के अध्ययन के उपरान्त भी कुछ प्रकरण व स्थल ऐसे रह जाते है जो अध्यापक के व्यक्तिगत सम्पर्क से ही स्पष्ट हो सकते हैं या अध्ययन के दौरान छात्र के समक्ष कुछ कठिनाइया आ सकती है। इसके समाधान के लिए ओपन स्कूल द्वारा सदर्भ केन्द्र खोले जाते है या सम्पर्क कार्यक्रम भी चलाए जाते हैं। यह एक पूरक माध्यम है जो छात्रो के लिए उपयोगी है। इसकी सचालन व्यवस्था विभिन्न सस्थाओ मे भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है।

सचार माध्यम : आधुनिक तकनीकी सचार माध्यम जैसे रेडियो, टी वी और ऑडियो व वीडियो कैसेट ओपन स्कूल के आधुनिक आयामों मे से है। ये छात्र के व्यावहारिक ज्ञान मे वृद्धि करते है। इनसे अवधारणाओ की स्पष्टता सुनिश्चित होती है। मुद्रित पाठों के माध्यम से उद्देश्यो की पूर्ति मे जो कमी रही होती है उसकी भी ये पूर्ति करते है। छात्रो की ज्ञान सामग्री की दृष्टि से महत्वपूर्ण ये माध्यम जहा

रुचिकर है वही छात्रो के लिए उत्प्रेरक भी है।

ओपन स्कूल प्रणाली मे स्व-अनुदेशन पर आधारित मुद्रित सामग्री विद्यार्थियो को प्रेषित की जाती है। छात्रो को अधिक सुविधा देने की दृष्टि से 24 अध्ययन केन्द्र खोले गए जहा उन्हे तीन माह तक प्रत्यक्ष शिक्षण कराया जाता है। इसके अतिरिक्त बोर्ड 31 स्थानो पर शैक्षिक सुविधा के साथ 10 दिवसीय सम्पर्क कार्यक्रम भी आयोजित करता है जिसमे सघन प्रत्यक्ष शिक्षण कराया जाता है। छात्र उत्तर पुस्तिकाओ के मूल्याकन द्वारा लगातार अध्ययन की प्रतिपुष्टि की जाती है। गत वर्ष से ओपन स्कूल और शिक्षा कर्मी योजना मे सह-सम्बन्ध स्थापित किया गया है जिससे वे विद्यार्थी जो 5वी और 8वी पास हैं और अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते है, वे भी सैकण्डरी की परीक्षा दे सकते है। जब 1992-93 मे ओपन-स्कूल प्रारभ किया गया था तब इस व्यवस्था के तहत सै स्कूल परीक्षा देने वाले विद्यार्थियो की सख्या 10500 थी जो गत वर्ष 18100 हो गई। इस वर्ष यह सख्या 24000 होने का अनुमान है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के ओपन स्कूल का लचीलापन इसकी मुख्य विशेषता है। इस व्यवस्था मे पजीकृत विद्यार्थी को परीक्षा उत्तीर्ण करने हेतु छह अवसर प्राप्त होते है। पाठ्यक्रम, परीक्षा योजना तथा प्रमाण-पत्र माध्यमिक परीक्षा के समान है। विद्यार्थी शनै शनै खण्डो मे भी परीक्षा उत्तीर्ण कर सकता है, फिर भी माध्यमिक परीक्षा से इसकी समकक्षता बनी रहती है। ओपन स्कूल मे स्तर के साथ कही समझौता नहीं किया गया है। ओपन स्कूल के विद्यार्थियो को नियमित विद्यार्थियो के समकक्ष लाने हेतु कक्षा पाच उत्तीर्ण विद्यार्थियो के लिए प्रारम्भिक पाठ एव कक्षा आठ उत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए आधार पाठ तैयार किए गए है।

कुल मिलाकर ओपन स्कूल आज की एक सामाजिक शैक्षिक आवश्यकता है। सामान्यत ओपन स्कूल समाज के कमजोर व्यक्तियो की शैक्षिक व सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे सहायक होगा। यह स्पष्ट है कि भविष्य मे औपचारिक विद्यालयी शिक्षा प्रणाली के समकक्ष एक नवीन शैक्षिक प्रणाली को स्वीकारना पडेगा जिसका स्वरूप ओपन स्कूल होगा। इस प्रणाली की समग्रता मे वैयक्तिक अनुदेशन के साथ-साथ नवीन शिक्षा अधिगम विधिया और आधुनिक पाठ्यक्रम योजनाए होगी और इस प्रकार जनता के लिए उपलब्ध होगा शिक्षा प्राप्ति का एक अनूठा माध्यम तथा सुविधाजनक अवसर। □□

प्राथमिक स्तर पर बोझ रहित अधिगम के तहत गृह-कार्य का औचित्य : एक अध्ययन

प्रभा वाजपेयी

व्याख्याता
राजस्थान महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
उदयपुर

प्राथमिक स्तर पर, शिक्षा के बोझ व उसकी गुणवत्ता को लेकर विभिन्न मचो पर निरन्तर चर्चाएं-परिचर्चाएं होती रही है। इस सन्दर्भ मे छात्रों को गृह-कार्य न दिये जाने की सिफारिश भी की गई है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि गृह -कार्य दिया जाए परन्तु उसकी प्रकृति भिन्न हो। अभिभावकों व शिक्षकों के विचार इस विषय पर बहुत ही भिन्न है। इसी प्रकार के कई महत्वपूर्ण प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए प्राथमिक स्तर पर बोझ रहित अधिगम के तहत गृहकार्य के औचित्य पर एक अध्ययन किया गया जिसके निष्कर्षो को प्रस्तुत लेख मे वर्णित किया गया है।

पिछले दो दशको से प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के बोझ व उसकी गुणवत्ता को लेकर चर्चाए-परिचर्चाए निरन्तर होती रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के कार्यान्वयन हेतु प्राथमिक शिक्षा के लिए बनाए जाने वाले पाठ्यक्रम मे इस तथ्य का विशेष ध्यान रखे जाने की बात भी मात्र आश्वासन ही सिद्ध हुई। अत प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक बोझ की समस्या के सदर्भ मे नए सिरे से विचार करने के उद्देश्य को लेकर भारत सरकार के मानव ससाधन विकास मत्रालय द्वारा मार्च, 1992 मे एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन किया गया। समिति के सदर्भाधीन विषय निम्नलिखित हैं

'सभी स्तरो के स्कूली छात्रो विशेषकर छोटे बच्चो पर शिक्षा के भार को कम करते हुए जीवन-पर्यन्त स्वाध्याय व कौशल विकसित करने की क्षमता सहित अधिगम व गुणवत्ता मे सुधार के उपायो के बारे मे सलाह देना।'

प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता मे गठित इस समिति का कार्य शिक्षा व्यवस्था की एक बडी त्रुटि से सबधित था। वह था विद्यार्थियो पर लादा जाने वाला शैक्षिक बोझ, जो न केवल बस्ते के भार के रूप मे उनके कंधो पर होता है बल्कि सीखने का बोझ भी। इस सीखने के बोझ से लदे बच्चे अपनी रोजमर्रा की दिनचर्या मे भी गृह-कार्य, ट्यूशन और विभिन्न प्रकार की कोचिग कक्षाओ मे भाग लेने को विवश हो जाते है। अवकाश तो बच्चो के जीवन मे बडी ही दुर्लभ वस्तु हो गया है। बच्चो की रोज की दिनचर्या मे उन्हे अपनी सहज प्रकृति या क्षमताओ को दिखाने का कोई अवसर नही मिलता। उन्हे खेलने, साधारण आनन्द लेने, सोचने-समझने और विश्व को जानने का समय भी नही मिलता।

समस्या के अध्ययन की आवश्यकता

सभी स्तरो पर विशेषकर छोटी उम्र के विद्यार्थियो के लिए शैक्षिक बोझ को कम करने व उनमे स्वाध्याय व कौशल निर्माण की क्षमता विकसित करने की भावना को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर गठित समिति द्वारा जो अनुशसा की गई उनके आधार पर इस क्षेत्र मे भी राष्ट्रव्यापी चिन्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। खुले विचार-विमर्श हुए, विद्यालयो के प्रशासको एव क्षेत्रीय अनुसधान केन्द्रो के विभिन्न विभागो मे हलचल प्रारम्भ हुई। गोष्ठियो मे इसकी कुछ अनुशसाओ को प्रारम्भिक तौर पर अपनाने की योजना की क्रियान्विति हुई।

इस क्रियान्विति के परिणामस्वरूप राजस्थान महिला विद्यालय, उदयपुर के प्राथमिक विद्यालय मे राष्ट्रीय सलाहकार समिति द्वारा की गई सिफारिश सख्या 8 को लागू किया गया जो निम्नलिखित है

'गृह-कार्य की प्रकृति तथा स्वरूप मे आमूलचूल परिवर्तन करने की जरूरत है। प्राथमिक स्तर पर बच्चो को कोई गृह-कार्य नही दिया जाए। उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओ मे जहा गृह-कार्य आवश्यक हो वहा पाठ्यपुस्तक से हट कर गृह-कार्य दिया जाए तथा घर पर जब गृह-कार्य करना जरूरी हो, तो बारी-बारी के आधार पर पाठ्यपुस्तके बच्चो को उपलब्ध कराई जाए।'

इस सिफारिश को लागू करने व इसके प्रभाव को जानने के लिए ही राजस्थान महिला प्राथमिक विद्यालय मे प्राथमिक स्तर पर गृह-कार्य नही देने की प्रवृत्ति प्रारम्भ की गई व इस सत्र में इस विद्यालय मे इस स्तर के बालको को गृह-कार्य नही दिए जाने के निर्णय पर अमल किया गया।

सत्र के अवसान पर आवश्यकता महसूस की गई कि शिक्षको और अभिभावको पर इस निर्णय के प्रभाव का अध्ययन किया जाए। इसलिए इस विषय को इस लघु शोध का विषय चुना गया।

समस्या के सामान्य उद्देश्य

राजस्थान महिला विद्यालय द्वारा राष्ट्रीय सलाहकार समिति की सिफारिश सख्या 7 की अनुपालना करने का यहा के छात्रो के शिक्षको व अभिभावको पर क्या प्रभाव पड़ा इसके बारे मे विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ही इस समस्या का उद्देश्य रहा है।

विशिष्ट उद्देश्य

इस लघु शोध प्रायोजना के लिए शोधकर्ता ने निम्नलिखित उद्देश्यो का निर्धारण किया

- यह ज्ञात करना कि छात्रों को गृह-कार्य नही देने पर उनकी सृजनात्मक शक्ति पर क्या प्रभाव पडता है।
- यह ज्ञात करना कि गृह-कार्य नही देने से बालक की खेलकूद की गतिविधियो पर क्या प्रभाव पडता है।
- यह ज्ञात करना कि गृह-कार्य नही देने से अभिभावकों पर पढाने का शैक्षिक बोझ कितना पडता है।
- गृह-कार्य नही देने की प्रवृत्ति को अभिभावको/शिक्षको द्वारा पसद किए या नही किए जाने के कारणो को ज्ञात करना।
- गृह-कार्य के सबध मे शिक्षको/अभिभावकों की राय जानना।
- लघु शोध प्रायोजना के परिणामो के आधार पर सुझाव व्यक्त करना।

समस्या कथन

उपरोक्त लिखित उद्देश्यो को तथा विस्तृत जानकारी की प्राप्ति के सदर्भ मे इस लघु शोध प्रायोजना का विषय निर्धारित हुआ— 'प्राथमिक स्तर पर बोझ रहित अधिगम के तहत गृह-कार्य के औचित्य पर एक प्रयोगात्मक एव विवेचनात्मक अध्ययन'।

समस्या के अध्ययन हेतु प्रयुक्त विधि एवं उपकरण

इस लघु प्रायोजना हेतु सर्वाधिक उपयुक्त विधि सर्वेक्षण विधि ही प्रतीत हुई। सर्वेक्षण विधि का प्रयोग कर शिक्षको एव अभिभावको की गृह-कार्य के सन्दर्भ मे राय जानने का प्रयास किया गया है। इस कार्य हेतु उपकरण के रूप मे 'प्रश्नावली' काम मे ली गई। प्रश्नावली के निर्मित प्रश्नो पर शिक्षको एव अभिभावको की सहमति या असहमति जानने का प्रयास किया गया।

न्यादर्श

न्यादर्श के रूप मे राजस्थान महिला विद्यालय, प्राथमिक विभाग मे पढने वाली छात्राओ के अभिभावको एव विद्यालय मे कार्यरत शिक्षको को चुना गया। प्राथमिक विभाग की विभिन्न कक्षाओ मे अध्ययनरत छात्राओ के 30 अभिभावको तथा अध्यापनरत शिक्षको मे से 12 शिक्षको को न्यादर्श रूप मे लिया गया। शिक्षको के चुनाव का आधार 'उपलब्ध सभी शिक्षक' था।

दत्त संग्रह

दत्त सग्रह हेतु चयनित न्यादर्श को प्रश्नावली प्रेषित की गई तथा उसे भरकर शीघ्र लौटाने का आग्रह किया गया। दत्त विश्लेषण दत्त सग्रह से प्राप्त आकडो की क्रमबद्ध तालिकाए बनाकर प्रतिशतवार अभिभावको व शिक्षको के विषय के उद्देश्यो के आधार पर परिणाम जाने का प्रयास किया गया।

दत्त विश्लेषण के फलस्वरूप प्राप्त परिणाम

1. सभी अभिभावको के अनुसार गृह-कार्य कक्षा कार्य का पूरक होता है। शिक्षको के वर्ग मे से 50 प्रतिशत ही इस कथन से सहमत है।
2 गृह-कार्य घर पर मनचाहा कार्य करने की स्वतत्रता छीन लेता है जिससे बालको की सृजनशीलता मे कमी आती है, इस कथन से 36 66 प्रतिशत अभिभावक ही सहमत है जबकि 63 33 प्रतिशत अभिभावक असहमत है। शिक्षको मे से 66 66 प्रतिशत इस कथन से सहमत है।
3 गृह-कार्य से बच्चो की खेलकूद की गतिविधियो का विकास नही हो पाता है, इससे 66 66 प्रतिशत अभिभावक असहमत है। शिक्षक वर्ग मे 66 66 प्रतिशत इससे सहमत है।
4 गृह-कार्य बालको को स्वाध्याय-प्रेमी बनाता है, इससे 93 33 प्रतिशत अभिभावक सहमत है जबकि शिक्षको की सहमति का प्रतिशत 50 ही है।
5 गृह-कार्य द्वारा बालको के उपलब्धि स्तर पर अच्छा प्रभाव पडता है इस कथन से 80 प्रतिशत अभिभावक व 75 प्रतिशत शिक्षक सहमत है।
6 गृह-कार्य बालको की तर्क एव विचार शक्ति को बढाता है, इस कथन से 80 प्रतिशत अभिभावक सहमत है जबकि 75 प्रतिशत शिक्षक असहमत है।
7 गृह-कार्य की प्रगति के आधार पर अभिभावको को अपने बच्चे के स्तर का पता चल जाता है इससे 60 प्रतिशत अभिभावक एव 75 प्रतिशत शिक्षक सहमत है।
8 गृह-कार्य की चिन्ता मे बालक की विद्यालय के अन्य कार्यो मे अरुचि हो जाती है, इस कथन से अभिभावक 56 66 प्रतिशत व शिक्षक 75 प्रतिशत सहमत है।
9 जो बालक अपने अभिभावको के साथ आर्थिक सहयोग हेतु काम करते है उन्हे गृह-कार्य से परेशानी होती है इससे 83 33 प्रतिशत अभिभावक सहमत है तथा शिक्षको का भी इतना ही वर्ग, (83.33 प्रतिशत) इससे सहमत है।
10. गृह-कार्य से ट्यूशन की प्रवृत्ति को बढावा मिलता है इससे अभिभावक व शिक्षको का अधिकाश वर्ग सहमत है जो क्रमश 70 प्रतिशत एव 83 33 प्रतिशत है।
11 शिक्षित व अर्द्धशिक्षित माता-पिता के बच्चे गृह-कार्य ठीक से नही कर पाते है, इस कथन से अभिभावको का 53 33 प्रतिशत ही व शिक्षको का 91 66 प्रतिशत वर्ग सहमत है।
12. गृह-कार्य लेख सुधार व लेखनगति के विकास मे सहायक होता है, इससे सभी अभिभावक (100 प्रतिशत) सहमत है तथा 66 66 प्रतिशत शिक्षक सहमत है।
13 गृह-कार्य पूरा नही होने की स्थिति मे बालक को दण्ड मिलता है जिसका उसके मानसिक विकास पर कुप्रभाव पडता है, इससे अभिभावकों का 60 प्रतिशत व शिक्षको का अधिकाश वर्ग (91 66 प्रतिशत) सहमत है।
14 हर विषय मे गृह-कार्य रोज मिलने से बालक शिक्षा को भारस्वरूप तथा अरुचिकर रूप से ग्रहण करता है, इससे 86 66 प्रतिशत अभिभावक तथा सभी शिक्षक (100 प्रतिशत) सहमत है।
15 गृह-कार्य की नियमित जांच से अध्यापको की शैक्षिक उन्नति होती है, इससे अधिकाश प्रतिशत असहमत हैं। अभिभावको मे 46 66 प्रतिशत व शिक्षको का मात्र 33.33 प्रतिशत इससे सहमत है।

16 गृह-कार्य नही देने से शिक्षको को इसे जाचने मे समय व्यर्थ नही करना पडता, इस समय का उपयोग वे अन्य सृजनात्मक कार्यो को करने मे कर सकते है। इस कथन से अभिभावको का मात्र 33.33 प्रतिशत किन्तु शिक्षको का 75 प्रतिशत सहमत है।

17 गृह-कार्य नियमित रूप से हर विषय मे दिया जाना चाहिए, इससे 10 प्रतिशत अभिभावक ही सहमत है 90 प्रतिशत नही तथा शिक्षको मे सभी (100 प्रतिशत) इससे असहमत है।

18 गृह-कार्य विषयवार कभी-कभी दिया जाना चाहिए इससे 86 66 प्रतिशत अभिभावक व 91 66 प्रतिशत शिक्षक सहमत है।

19 गृह-कार्य नही दिया जाना चाहिए इससे 13 33 प्रतिशत अभिभावक व 25 प्रतिशत शिक्षक ही सहमत है।

20 गृहकार्य मौखिक ही दिया जाना चाहिए, इससे 40 प्रतिशत अभिभावक व 66 66 प्रतिशत शिक्षक सहमत हैं।

21 जिन विद्यालयो मे गृह-कार्य नही दिया जाता है उनके छात्र अन्य उन्नत समझे जाने वाले विद्यालयो के छात्रो की बराबरी नही कर सकते है, इससे 16.66 प्रतिशत अभिभावक ही राहमत है 83 33 प्रतिशत नही तथा शिक्षको का अधिकाश वर्ग (83.33 प्रतिशत) इससे असहमत है।

22 गृह-कार्य से बच्चो की परीक्षा मे उपलब्धि पर अच्छा प्रभाव पडता है इससे 80 प्रतिशत अभिभावक व 66 66 प्रतिशत शिक्षक सहमत हैं।

23 गृह-कार्य देकर बच्चो मे प्राथमिक शिक्षा के लिए निर्धारित उद्देश्यो को ज्यादा अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है, इस कथन से 70 प्रतिशत अभिभावक सहमत है जबकि शिक्षको का मात्र 33 33 प्रतिशत ही सहमत है।

24 गृह-कार्य नही देने से बच्चो का विकास अधिक अच्छा होता है इससे मात्र 20 प्रतिशत अभिभावक ही सहमत है जबकि 66 66 प्रतिशत शिक्षक इससे सहमत है।

प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष एवं सुझाव

दत्त विश्लेषण के द्वारा जो परिणाम प्राप्त हुए उनसे निष्कर्ष निकलता है कि गृह-कार्य देने के सबध मे अभिभावक शिक्षको की अपेक्षा अधिक इच्छुक है। गृह कार्य कक्षा-कार्य का पूरक होता है यह अभिभावको का मत है। शिक्षको ने अधिकाश कथनो पर गृह-कार्य के औचित्य को स्वीकार किया है किन्तु नियमित गृह-कार्य देने की प्रवृति को स्वीकार नही किया है। गृह-कार्य देने व जाचने से शिक्षक की अकादमिक प्रवृत्तियो मे कोई विशेष इजाफा नही होता ऐसा इनका मानना है। समाज मे कई नई प्रवृत्तियो का जन्म भी गृह-कार्य द्वारा होता है जैसे ट्यूशन प्रवृत्ति, कोचिग सेन्टर आदि।□□

पर्यावरण शिक्षा एवं प्रणाली उपागम

डा. जी. सी. भट्टाचार्य

वरिष्ठ प्रवक्ता
शिक्षा संकाय (कमच्छा शैक्षिक संकुल)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी - 221010

पर्यावरण शिक्षा एक औपचारिक कार्यक्रम है जिसके माध्यम से शिक्षार्थियो को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिए सुनियोजित ढंग से प्रयत्न किया जाता है। सही अर्थो में किसी भी विषय के प्रति सजगता या जागरूकता उत्पन्न करने के लिए केवल तथ्य परिचय या ज्ञान ही काफी नहीं है अपितु साथ ही साथ छात्रों में अनुकूल अभिवृत्ति का विकास, पर्यावरण सरक्षण व संवर्धन के प्रति उत्तरदायित्व की भावना भी अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में विषय के विश्लेषण द्वारा लेखक ने इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु प्रणाली उपागम को सर्वोचित पाया है। इसी संदर्भ में एक अनुदेशात्मक प्रणाली के विभिन्न पदों को भी दर्शाया गया है।

"शिक्षा" अपने विस्तृत अर्थ में एक व्यापक अनुभव है जिसकी प्राप्ति जन्म से ही प्रारम्भ होती है तथा जीवनपर्यन्त चलती रहती है। इसके विपरीत सकुचित अर्थ मे यह किसी औपचारिक परिवेश जैसे विद्यालय, महाविद्यालय या प्रशिक्षण सस्थान मे प्राप्त होने वाला ऐसा सुसगठित,व्यवस्थित एव पूर्व निर्धारित विशिष्ट अनुभव है जो व्यक्ति या शिक्षार्थी के व्यवहार मे कुछ निर्दिष्ट एव वाछित परिवर्तन उत्पन्न करती है।

वस्तुत' व्यक्ति अपने वातावरण, चाहे वह भौतिक हो या सामाजिक, के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए अपने व्यवहार मे परिवर्तन उत्पन्न करने का प्रयास करता है या सुधार लाता है ताकि वातावरण के साथ उचित सामन्जस्य एव समन्वय स्थापित हो सके। यदि इस प्रक्रिया को "सीखना" या "अधिगम" की संज्ञा दे, तो यह कहना सम्भव है कि शिक्षा अधिगम प्रणोदित है। सकुचित अर्थ मे शिक्षा प्राप्त करने का औपचारिक माध्यम "शिक्षण" होने के नाते हम शिक्षण को भी अधिगम को अभिप्रेरित करने वाली निर्दिष्ट क्रियाओ की एक प्रणाली (स्मिथ, 1960) के रूप मे स्वीकार करते है।

यह बात अलग है कि आधुनिक शिक्षाविद् इस धारणा को गलत मानते है तथा शिक्षण एव अधिगम को दो सम्पूर्ण पृथक प्रक्रियाओ के रूप मे स्वीकार करना चाहते है। शिक्षण के परिणामस्वरूप अधिगम का होना आवश्यक हो सकता है परन्तु अनिवार्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि शिक्षार्थी के अनवधान या अन्य किसी कारण से अधिगम प्रतिफल न्यूनतम प्राप्त हो या पूर्णतया शून्य हो तो ऐसा नही कहा जा सकता कि शिक्षण कार्य नहीं हुआ तथापि अधिगम को शिक्षण का आवश्यक उत्पाद मानते हुए भी शिक्षण की विषयवस्तु को स्पष्ट करना भी आवश्यक हो जाता है क्योकि इसके अभाव मे शिक्षण की प्रकृति स्पष्ट नहीं हो पाती और शिक्षक, शिक्षार्थियो को एक निर्दिष्ट औपचारिक परिवेश मे क्या सिखाने का प्रयत्न करेगा यह भी स्पष्ट नही हो पाता।

इस सन्दर्भ मे हाइमेन (1967) ने कहा है कि शिक्षण तत्वो की एक त्रयी (शिक्षक, छात्र और विषयवस्तु) को अपने मे सम्मिलित करना है और यह त्रयी गत्यात्मक गुणधर्मीय है अर्थात इन तत्वों के मध्य नमनीय एवं परिवर्तनशील सम्बन्ध विद्यमान है।

यदि हम इन दोनो परिभाषाओ को समन्वित करने का प्रयत्न करे तो यह कहा जा सकता है कि शिक्षण एक ऐसी त्रयात्मक क्रियाप्रणाली है जिसकी व्यवस्था

एव परिचालन विषय वस्तु के सन्दर्भ मे अधिगम को अभिप्रेरित करने के लिए निर्दिष्ट है। (श्रीवास्तव एव राय, 1982)। अत. यह स्पष्ट है कि सभी विद्वतजन इसे एक प्रणाली के रूप मे स्वीकार करने के लिए तत्पर है।

पुन विषय वस्तु के आधार पर ही शिक्षण के (अत शिक्षा के भी) विविध सवर्ग सामने उभरकर आते है, जैसे यदि विषय वस्तु भूगोल है तो इसे हम भूगोल शिक्षण या भूगोल शिक्षा की सज्ञा दे सकते है। इसी प्रकार यदि पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान, सूचनाओ एव अनुक्रियाओ की जानकारी प्रदान करना उद्देश्य है तो उसे हम पर्यावरण शिक्षा की संज्ञा देगे जिससे शिक्षा के उद्देश्य एव केन्द्र बिन्दु को अधिक स्पष्ट करना सम्भव हो सके। यहा पर विषय वस्तु से तात्पर्य मात्र सकुचित अर्थो मे पाठ्यक्रम से ही नही है अपितु उन सभी सन्दर्भो से है जो हमारे आधुनिक जीवन तथा मानव समाज से सम्बन्धित है एव एक समस्या या आवश्यकता के रूप मे निरन्तर हमारे सामने विद्यमान है। जैसे-जनसख्या वृद्धि एव विस्फोट, रोजगार एव आय के साधन, भोजन एव पोषाहार, आवास एव स्वास्थ्य सेवाए, प्राकृतिक ससाधनो के अवक्षय एवं शोषण इत्यादि। ये सभी किसी न किसी रूप मे हमारे पर्यावरण से जुडी हुई समस्याए है जिन्हे आज तक हम अनेक प्रयासों के बावजूद दूर नही कर पाए है क्योकि सही अर्थो मे आज भी हम पूरी तौर पर इन सभी मुद्दो या समस्याओ के प्रति सजग या जागरूक नही है और न ही इनका विश्लेषण वैज्ञानिक ढग से करने के लिए प्रयत्नशील है।

भोजन के बिना हम कई दिनो तक एव पानी के अभाव मे कई घटे जीवित रह सकते है, परन्तु वायु के अभाव मे तो एक मिनट भी जीवित रहना कठिन ही नही अपितु असम्भव हो सकता है। आज वायु, जल, पृथ्वी आदि समस्त ही प्रदूषण के विकराल ग्रास मे समाहित होने जा रहे हैं, फिर भी हम निश्चिन्तप्राय है। ऐसा होना निश्चित रूप से उपयुक्त पर्यावरण शिक्षा एव पर्यावरण जागरूकता के अभाव और उस शिक्षा के लिए प्रयुक्त प्रणाली की त्रुटि को ही उजागर कर रहा है।

गुड (1973) द्वारा सम्पादित शिक्षा शब्दकोश के अनुसार पर्यावरण एक सामान्य पद है जिसके अन्तर्गत वे सभी वस्तुएं, कारक एव परिस्थितिया सम्मिलित हैं जो किसी व्यक्ति के जीवन को ग्रहण योग्य उद्दीपक द्वारा प्रभावित करते हैं। यहा ग्रहण योग्य उद्दीपक से तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण या अनुभव योग्य उत्तेजक से है जिन्हे हम अनुभव कर पाते है।

सामाजिक विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोश के अनुसार पर्यावरण समस्त बाह्य दशाओ का एक समुच्चय है जो किसी जीवधारी के जीवन एव विकास प्रक्रिया को किसी न किसी रूप मे प्रभावित करता है।

शिक्षा शब्दकोश के अनुसार जागरूकता किसी वस्तु या विषय के प्रति ज्ञान, प्रत्यक्षीकरण एव अनुभूति को प्रदर्शित करने की क्रिया के सूचक है। व्यावहारिक विज्ञान के शब्दकोश के अनुसार जागरूकता किसी तथ्य के प्रति सचेतन होना, किसी अवसर, घटना, अनुभव या वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करना और उसके बारे मे ज्ञान प्राप्त करना या जानना है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि जागरूकता वह चेतन अवस्था है जो व्यक्ति को किसी वस्तु, तथ्य या घटना के प्रत्यक्षीकरण हेतु विविध ढग से स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने के लिए सक्षम बनाए तथा उनकी अभिवृत्तियो एव विचारो को इस ढग से पुनर्गठित करे कि वह उस घटना या तथ्य के प्रति अपने दायित्व एव कर्तव्यो को सही ढग से समझने मे सफल हो सके। यह कुछ वैसा ही है जैसा हम सभी जानते है कि तम्बाकू का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और इसे वैधानिक चेतावनी के रूप मे सर्वत्र लिखा भी देखते है परन्तु तम्बाकू का सेवन करते समय इस बात पर कोई ध्यान नही देता। यहा पर चेतना या ज्ञान तो है परन्तु यह ज्ञान हमारी अभिवृत्ति एव विचारो को बदलने मे सक्षम नही है और न ही हम तम्बाकू का सेवन बन्द करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते है कि सजगता या जागरूकता के तीन प्रमुख अग है जैसे- तथ्य परिचय या ज्ञान, अभिवृत्ति या विकास एव उत्तरदायित्व का अनुभव। यदि ये तीनो ही अग विद्यमान हो तभी हम किसी व्यक्ति को किसी तथ्य या विषय के प्रति जागरूक कह सकते है अन्यथा नहीं।

तथ्य परिचय को हम दूसरे शब्दो मे दिशा निर्देश भी कह सकते है जो विभिन्न तथ्यो, घटनाओ, समस्याओ सूचनाओ इत्यादि की जानकारी प्रदान करने से सम्बन्धित है एव जिन्हे प्राप्त करने के पश्चात ही कोई व्यक्ति उन्हे आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित या पुन याद करने के लिए प्रयत्न कर सकता है।

अभिवृत्ति को शिक्षा शब्दकोश मे एक मानसिक एव सवेगात्मक तत्परता की अवस्था के रूप मे परिभाषित किया गया है जिसमे व्यक्ति एक समान उद्दीपक के प्रति अपनी प्रतिक्रिया निरन्तर एक ही ढग से व्यक्त करता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति या घटना के प्रति जब हम अपनी इच्छा या पसन्द के अनुसार सवेगात्मक विचार या व्यवहार प्रदर्शित करते है जो प्राय उनके पारस्परिक सम्बन्ध को भी प्रभावित करते है, उसे हम उनकी अभिवृत्ति कह सकते है। वह सकारात्मक या नकारात्मक दोनो रूप से सम्भव है।

कर्तव्य या दायित्वशीलता व्यक्ति का एक आन्तरिक प्रयत्न है जिसके द्वारा वह किसी निर्दिष्ट कार्य को चेतनापूर्वक करने के लिए प्रयास करता है एव जिसे करना वह अपने लिए आवश्यक मानता है।

आज की परिस्थिति मे भूपृष्ठ पर मानव नामक जीवधारी की जीवनावधि को बढाने के लिए तथा उनके अस्तित्व को बनाए रखने के लिए देश तथा सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक नागरिक को इन तीनो ही अवयवो के सन्दर्भ मे सजग बनाना आवश्यक है एव उसके लिए पर्यावरण शिक्षा की महती आवश्यकता है। केवल तथ्य ज्ञान से हम जागरूक नही बन सकते है।

अत. निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा एक औपचारिक कार्यक्रम है जिसके माध्यम से शिक्षार्थी एव शिक्षक दोनो ही वर्गो को शिक्षित, प्रशिक्षित एव जागरूक बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है, ताकि वे सामाजिक गतिशीलता एव परिवर्तन के कारण तेजी से बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल शैक्षिक नियोजन एव विकास के कार्य मे सक्रिय एव सफल प्रतिभागी बन सके।

चूकि औपचारिक स्तर पर इस शिक्षा का दायित्व अध्यापक वर्ग पर ही है अत उन्हे शिक्षित एव प्रशिक्षित करने वाले शिक्षक प्रशिक्षक भी अपने इस कर्तव्य एव दायित्व से पीछे नही हट सकते है। इस कार्य के लिए निश्चित रूप से उन्हे शैक्षिक नवाचारो का सहारा लेना होगा क्योकि सामान्य प्रचलित शिक्षण प्रणालियो के माध्यम से हम केवल सूचना सम्प्रेषण का कार्य कर सकते है जिसका सम्बन्ध जागरूकता के मात्र 'तथ्य परिचय' भाग से है। अत इन एकागी प्रणालियो के माध्यम से हम किसी व्यक्ति को जागरूकता का एक तिहाई पाठ ही पढा सकते है, सम्पूर्ण नही।

परिवर्तित पारिस्थितिक, सामाजिक एव सामुदायिक सरचना एव व्यवस्था की आवश्यकतानुसार शिक्षा के क्षेत्र मे जिन नए विचारो तथा कार्यक्रमो, नई विधियो एवं तकनीको का प्रयोग किया जाता है, सामान्य अर्थ में उन्हे हम शैक्षिक नवाचार कहते है।

शब्दकोशीय अर्थ मे नवाचार किसी नवीनता को लागू करना, किसी स्थापित वस्तु एव विधियो या व्यवस्था मे परिवर्तन करना, एक नवीन प्रचलन है, जबकि रोजर्स (1969) ने इसे एक ऐसा विचार माना है जिसमे व्यक्ति नवीनता का अनुभव करता हो।

माईल्स (1964) ने कहा है कि यह एक इच्छाकृत, नवीन एवं विशिष्ट परिवर्तन है जिसे किसी प्रणाली के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु अधिक प्रभावकारी माना जाता है अर्थात् पर्यावरण शिक्षा को यदि एक प्रणाली के रूप मे माना जाए तो उस प्रणाली के उद्देश्यो की प्राप्ति शैक्षिक नवाचारो के माध्यम से सरलतापूर्वक सम्भव है।

श्रीवास्तव (1988) ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि शैक्षिक नवाचार शिक्षा के क्षेत्र मे प्रयुक्त एक ऐसा विचार या सम्प्रत्यय है जो गुणात्मक दृष्टि से नवीन एव विशिष्ट हो, वर्तमान शैक्षिक परिस्थितियों मे कुछ सुधार कर सके तथा जिसका प्रयोग नियोजित ढग से किया जा सके।

अत पर्यावरण शिक्षा को सफल बनाने का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए एक उपयुक्त शैक्षिक नवाचार का चयन करना प्रथम महत्वपूर्ण कार्य है।

शैक्षिक तकनीकी को कुलकर्णी (1969) ने उन सभी प्रणालियो, विधियो एव माध्यमो के विज्ञान के रूप मे

स्वीकार किया है जिनके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सकता है। अत शैक्षिक तकनीकी के विकास के साथ ही शैक्षिक नवाचारो के प्रयोग को पर्याप्त बल मिला एव विभिन्न मशीनी उपकरण जैसे- शिक्षण मशीन, प्रोजेक्टर, शैक्षिक दूरदर्शन इत्यादि के प्रयोग के साथ ही साथ व्यवहार परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, प्रतिपुष्टि सिद्धान्त या मानव अभियात्रिकी परम्परा (जैसे- प्रणाली उपागम, कम्प्यूटर सह अनुदेशन इत्यादि) से सम्बन्धित विभिन्न नवाचारो का प्रयोग शिक्षा एव शिक्षण के क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ।

'प्रणाली उपागम' उनमे से एक प्रमुख एव महत्त्वपूर्ण शैक्षिक नवाचार है जिसके प्रयोग के माध्यम से किसी भी व्यवस्था या सगठनात्मक इकाई की कार्यप्रणाली मे वाछित सुधार करना सम्भव है। अत इसे यदि पर्यावरणीय शिक्षा को सफल बनाने के लिए अनुमोदित किया जाए तो यह सर्वथा उचित ही होगा। यह उपागम परिणाम प्रेरक है तथा परिणाम और प्रतिफल का स्तर जब तक मानक स्तर तक नही पहुचता है उसे स्वीकार नहीं किया जाता।

'प्रणाली' वह इकाई या समग्र है जिसके सभी अवयव या घटक परस्पर सम्बन्धित एव स्वनियत्रित होते है और यह अपनी पूर्व निर्धारित एव सुनिश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक निश्चित पद्धति से कार्य करती है। प्रणाली से यहा पर तात्पर्य ऐसी वस्तुओ या तथ्यो के समाकलनं या समुच्चय से है जो किसी सतत एव परस्पर निर्भर अन्त. क्रिया द्वारा नियन्त्रित एव सचालित होती है। घडी इसका एक अच्छा उदाहरण है।

किसी प्रणाली मे अदा, प्रक्रम, प्रदा तथा वातावरणीय सन्दर्भ ये चार प्रमुख निर्धारक तत्त्व होते है। अदा उन सभी तथ्य या वस्तुओं का समाहार है जिन्हे एक प्रणाली मे मूलभूत सामग्री के रूप मे डाला जाता है। प्रक्रम प्रणाली की क्रियाशीलता या गतिशीलता है जिसके माध्यम से अदा का सलयन या रूपान्तरण होता है। प्रदा प्रणाली से प्राप्त होने वाले पदार्थ या उत्पादन को कहते हैं जबकि प्रणाली वातावरण वह परिवेश या परिस्थिति है जिसके अन्दर रहकर कोई प्रणाली कार्य करती है और उपलब्ध अदा से प्रदा का उत्पादन करती है, जैसे - किसी कारखाने मे कच्चा माल, मशीन, श्रमिक, शक्तिस्रोत या साधन इत्यादि ये सभी अदा है। मशीन तथा अन्य कार्यो का निरन्तर सचालन व्यवस्था प्रक्रम है, तैयार उत्पाद या माल प्रदा है और कारखाने की भौतिक स्थिति तथा सामाजिक आर्थिक परिवेश को हम कारखाना प्रणाली का वातावरण कह सकते है। इसी प्रकार पर्यावरण शिक्षा को प्रणाली मानने पर शिक्षार्थी, शिक्षण, उपकरण, अध्यापक, कार्यक्रम या पाठ्यक्रम इत्यादि सभी अदा, शिक्षण-अधिगम कार्य का सचालन या प्रशिक्षण, छात्र अनुक्रिया एव अन्तर्क्रिया इत्यादि प्रक्रम, शिक्षार्थी के मूल व्यवहार मे सुधार या अन्त्य व्यवहार का उद्देश्यानुकूल होना या शैक्षिक उपलब्धि को प्रदा कहा जा सकता है जबकि सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था एव सगठन उसका वातावरण है।

प्रणाली उपागम

प्रणाली उपागम वास्तव मे चिन्तन की एक व्यवस्था या विचारधारा है जिसमे किसी समस्या के समाधान हेतु उसे एक समग्र या इकाई के रूप मे ग्रहण करते है। प्रणाली के उद्देश्य, तत्त्वो के पारस्परिक सम्बन्ध, कार्य प्रणाली इत्यादि को पहले निर्धारित कर लिया जाता है तत्पश्चात प्राप्त समाधान या प्रदा के स्तर को देखते हुए प्रणाली की सफलता या असफलता का आकलन किया जाता है एव कार्य प्रणाली मे आवश्यक सशोधन एवं परिमार्जन कर दिया जाता है।

अत प्रणाली उपागम को हम एक ऐसी व्यवस्था कह सकते है जिसमे प्रणाली विश्लेषण, प्रणाली सरचना, प्रणाली विकास एव सचालन तथा प्रणाली मूल्याकन जैसे तीन आत्मनिर्भर पदो का अनुप्रयोग किया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा एवं प्रणाली उपागम

शिक्षा का एक अग होने के नाते पर्यावरण शिक्षा भी एक मानव निर्मित प्रणाली है जो एक वृहद् सामाजिक प्रणाली या वातावरण के अन्दर कार्य करती है। जैसे- राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के वातावरण के मध्य अध्यापक शिक्षा या विद्यालयीय शिक्षा लघु प्रणाली के रूप मे कार्य

करती है और जिसका लक्ष्य शिक्षा विभागीय कार्य या शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाकलापो के माध्यम से उपयुक्त एव योग्य अध्यापक या शिक्षार्थी तैयार करके राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यो को प्राप्त करना होता है। जैसे- शिक्षा मे गुणात्मक सुधार करना, प्रभावकारी व्यवहार मूल्याकन का प्रयोग करना, उन्नत विकासात्मक योजना तैयार करना, प्रभावकारी शिक्षा कार्यक्रम विकसित करना, विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमो मे नियन्त्रण और समन्वय को बढाना, शिक्षा विभागीय मानव ससाधनो के अनुकूलतम उपयोग हेतु योजना तैयार करना एव सचालित करना इत्यादि।

किसी विद्यालयीय या शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयीय प्रणाली के अन्तर्गत पुन एक लघु प्रणाली कार्य करती है जिसे अनुदेशन प्रणाली कहते है। अत. इस अनुदेशनात्मक प्रणाली के विश्लेषण के माध्यम से पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र मे प्रणाली उपागम का अनुप्रयोग करना सम्भव है।

अनुदेशनात्मक प्रणाली विश्लेषण

अनुदेशनात्मक प्रणाली के घटक या तत्त्व निम्न है

1 अदा :

शिक्षक - उनकी योग्यता, विषय ज्ञान, शिक्षणोद्देश्य, शिक्षण योग्यता, एव कुशलता, कार्य मे रुचि, अभिवृत्ति, छात्रो से सम्बन्ध इत्यादि।

छात्र - बुद्धिलब्धि स्तर, प्रेरणा या आग्रह, पूर्वज्ञान या प्रविष्टि, व्यवहार, आकाक्षाए, सख्या इत्यादि।

अध्ययन अध्यापन परिस्थिति - कक्षा का आकार, भौतिक वातावरण, साजसज्जा, शिक्षण सहायक उपकरण तथा सामग्रिया, शिक्षक छात्र अन्तर्क्रिया की सम्भावना, पुनर्बलन का प्रयोग इत्यादि।

2 प्रक्रम :

अध्ययन अध्यापन परिस्थिति मे पारस्परिक अन्तर्क्रियात्मक व्यवहार उद्दीपन प्रस्तुतीकरण, उसकी गति या दर, छात्र अनुक्रिया एव सहभागिता, अभ्यास/ पुनरावृत्ति, पुनर्बलन प्रस्तुति-प्रकृति शिक्षण कौशलो का समुचित प्रयोग इत्यादि।

3. प्रदा :

अनुदेशनात्मक उद्देश्यानुकूल अधिगम प्रतिफल।

4. वातावरण सन्दर्भ :

विद्यालय/महाविद्यालयीय वातावरण मे प्रशासन व्यवस्था, सगठन एव सचालन।

प्राचार्य/प्रमुख- प्राध्यापक सम्बन्ध

विद्यालय/महाविद्यालय - समाज सम्बन्ध इत्यादि।

अनुदेशनात्मक : प्रणाली विश्लेषण के पद

1 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यो को (सक्षिप्त, सटीक एव व्यावहारिक ढग से) परिभाषित करना।
2 शिक्षार्थियो के पूर्व मूल्याकन या प्रविष्टि व्यवहार का आकलन।
3 शिक्षण/ प्रशिक्षण विधि एव उपागम निर्धारण - जैसे -प्रयोगशाला विधि, यात्रा या भ्रमण विधि, व्यावहारिक दत्त कार्य उपागम इत्यादि।
4 अनुदेशनात्मक सामग्रियो एव माध्यमो का चयन - जैसे - बहुआयामी चित्र, प्रतिरूप, प्रक्षेपित चित्र, लघु परिपथ दूरदर्शन, शैक्षिक दूरदर्शन, कम्प्यूटर अनुदेशन इत्यादि।
5 प्रणाली के तत्त्वो के कार्य एव भूमिका निर्धारण।
6 प्रणाली सश्लेषण तथा कार्यान्वयन।
7 प्रतिफल का मूल्याकन।
8 प्रतिफल विश्लेषण एव प्रणाली का परिमार्जन।

सर्वप्रथम पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यो को परिभाषित करते हुए उनके स्पष्ट रूप से निर्धारण हेतु पूर्व अधिगम अनुभवो का ज्ञान एव अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तन का स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जैसे- इस पाठ के अन्त मे शिक्षार्थी कम से कम पर्यावरण प्रदूषण के तीन कारको के नाम बता सकेगे। यह वाक्य शिक्षार्थियो की व्यवहारपरक शब्दावलियो मे (वे क्या करने मे सक्षम होगे) लिखा गया है जो मूल्याकन हेतु अपरिहार्य है।

इसी प्रकार अधिगमकर्ता या शिक्षार्थी के पूर्व अनुभव या प्रविष्टि व्यवहार, योग्यता, अभिप्रेरणा के स्तर या रुचि एव प्रकृति का आकलन या पूर्व मूल्याकन भी कर लेना अपेक्षित है ताकि यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सके कि

शिक्षणोपरान्त उनके ज्ञान एव व्यवहार मे कौन-कौन से परिवर्तन हुए है।

इसी स्तर को ध्यान मे रखते हुए पुन अनुदेशनात्मक विधि, उपागम तथा सामग्री एव माध्यमो का भी चयन किया जाता है ताकि पाठ शिक्षार्थियो को सदा रोचक, सरल एव सहज ग्राह्य प्रतीत हो।

कक्षागत अनुदेशन प्रणाली मे ग चार पद प्रणाली के विकास के अन्तर्गत आते है। पाचवा और छठा पद प्रणाली क्रियान्वयन के अन्तर्गत आते है जिनमें अनुदेशन प्रणाली के सभी तत्त्वो - शिक्षक, छात्र, अधिगम अनुभव, सामग्रियो इत्यादि के कार्य या भूमिका तथा दायित्व निर्दिष्ट करते हुए विभिन्न तत्त्वो का सश्लेषण या सयोजन किया जाता है जिसमे वे अपनी भूमिका को निभाने के लिए एक के साथ एक मिलकर तत्पर हो जाते है। इस आबद्धीकरण के बाद प्रणाली का क्रियान्वयन या सचालन करते है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक तत्त्व अपना कार्य दूसरे तत्त्व के साथ समन्वय रखते हुए सम्पन्न करते है। इसके साथ ही छोटे पैमाने पर लघु सर्वेक्षण द्वारा प्रणाली की कार्य क्षमता को एक बार परख लिया जाता है।

प्रणाली मूल्याकन मे शेष दो पद आते है जिनमे प्रणाली की वैधता एव उपयुक्तता को जाचने के लिए प्रणाली प्रतिफल का व्यापक मूल्यांकन किया जाता है और प्राप्त दक्षता या अन्त्य व्यवहार की तुलना पूर्व निर्धारित उद्देश्यो से की जाती है। पुन परिणाम विश्लेषण के माध्यम से प्रणाली की त्रुटि या कमियो का पता लगाया जाता है और आवश्यकतानुसार प्रणाली विशेषज्ञो की सहायता से उनमे समुचित सशोधन परिमार्जन एव परिवर्तन किया जाता है। पुन प्रणाली का सचालन करते हुए यह देखा जाता है कि अभीष्ट प्रतिफल प्राप्त हो रहे है या नही अर्थात् केवल ज्ञानात्मक स्तर तक ही पर्यावरण शिक्षा को शिक्षार्थी पूर्ववत स्वीकार कर रहे है अथवा उनकी अभिवृत्ति एव दायित्व शीलता मे भी अपेक्षित परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि पर्यावरण शिक्षा के जो मात्र एक विद्यालयीय एव महाविद्यालयीय पाठ्यक्रम तथा अध्ययन क्षेत्र मात्र ही नही है अपितु आज मानव जीवन का एक अविच्छेदय अग बन चुका है, मूल उद्देश्यो को प्राप्त करना है तथा शिक्षार्थियो को वस्तुत इसके माध्यम से पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाना है ताकि इस विश्वस्तरीय समस्या से छुटकारा मिल सके, तो हमे निश्चित रूप से प्रणाली उपागम जैसे शैक्षिक नवाचार का प्रयोग कुशलतापूर्वक करना होगा। अन्यथा यह निस्सदेह एक विद्यालयीय एव महाविद्यालयीय पाठ्यक्रम मात्र बन कर रह जाएगा। ☐☐

सन्दर्भ

भूषण एस एवं कुमार, ए (1964) **शैक्षिक तकनीकी**, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

गुड, सी बी,स (1973) **डिक्सनरी ऑफ एजुकेशन**, मैग्रा हिल बुक क , नई दिल्ली।

हाइमैन, आर टी (1967) टीचिग, ट्रायडिक एण्ड डाइनॉमिक्स, **दी एजुकेशनल फोरम**, 32, नवम्बर

कुलकर्णी, एस एस (1969) . टीचिग लर्निग प्रोसेस, ऐ सिस्टम एनालिसिस, इन सी के बस(स). **प्रोग्राम्ड इन्सटेक्सन इन इन्डस्ट्रिज, डिफेन्स, हेल्थ एण्ड एजूकेशन**, इडियन एसोसिएशन फार प्रोग्राम्ड इस्ट्रक्शन।

माइल्स, एम बी (1964) ''नवाचार'' इन एस एस श्रीवास्तव, **शिक्षा में नवाचार एव आधुनिक प्रवृत्तियॉ**, आगरा।

मिश्रा, आर एम (1990) ' **शिक्षक तकनीकी**, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।

रोजर्स, सी. आर (1969) **फ्रीडम टु लर्न**, कोलम्बस, ओहिओ, चार्ल्स ई मेरिल।

स्मिथ, बी ओ (1960) ए कॉनसेप्ट ऑफ टीचिग, **टीचर्स कालेज रेकार्ड**, 61, फरवरी।

श्रीवास्तव, एस एस एव राय, के (1982) : **शिक्षण तकनीकी**, दोआबा हाऊस, 1688, नई सडक, दिल्ली।

श्रीवास्तव, एस एस. (1988) **शिक्षा में नवाचार एवं आधुनिक प्रवृत्तियॉं**, हर प्रसाद भार्गव, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।

पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का अध्ययन

डा. विभा निगम

वरिष्ठ प्रवक्ता
डी.ई आई (शिक्षा सकाय)
दयालबाग, आगरा - 5

पिछले कुछ वर्षों मे मुख्यतया महानगरों मे पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की सख्या मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। चूंकि इन विद्यालयो का सम्बन्ध ऐसे आयुवर्ग के बच्चो से है जिनकी सभी प्रकार की आवश्यकताए अपेक्षाकृत अधिक हैं अतः इन विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का समय-समय पर आकलन करना अति आवश्यक है। उपरोक्त लेख मे आगरा नगर के कुल चालीस विद्यालयो में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का एक सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन के आधार पर लेखिका ने पाई गई कमियों पर ध्यान आकर्षण करते हुए उनके निवारण हेतु कुछ सुझाव भी प्रदान किए हैं।

शिक्षा का प्रभाव हमे अपने चारो ओर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आदिकाल से मनुष्य जो कुछ सीखता एव ग्रहण करता चला आ रहा है वह शिक्षा ही है। शिक्षा वह सुविचारित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार तथा विचारो मे परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता है। जन्म के समय असहाय और दीन-हीन बालक शनैः-शनै शिक्षा के प्रभाव से एक समुन्नत सामाजिक प्राणी बन सकता है। बालक ही राष्ट्र का निर्माता है। अत प्रत्येक अभिभावक एव समाज का उत्तरदायित्व है कि वह बालको के सन्तुलित विकास के लिए प्रारम्भ से ही उचित शैक्षिक वातावरण प्रदान करे। आज शिक्षाशास्त्रियो तथा मनोवैज्ञानिको का भी मत है कि तीन से छ वर्ष तक के बालको की शिक्षा की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सार्जेन्ट रिपोर्ट (1944), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53), शिक्षा आयोग (1964-66) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) आदि सभी ने इस स्तर की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारा है। इस आयु मे बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा सवेगात्मक विकास तीव्रगति से होता है। बच्चो की यह आरम्भिक अवस्था अत्यन्त प्रभावशाली और लचीली मानी गई है। जीवन की इस अवस्था मे मनचाही आदतो की बुनियाद भी रखी जाती है। डॉ ब्लूम ने अपने अध्ययन से भी यह निष्कर्ष ज्ञात किया है कि-

"More than 50 percent of the total intellectual development is completed by the time, the child is four years old "

सामान्यतया उत्तर बाल्यावस्था एव किशोरावस्था मे उत्पन्न होने वाली मानसिक, शारीरिक तथा सवेगात्मक समस्याओ का मूल कारण भी पूर्व-विद्यालयी काल मे उचित निर्देशन, अच्छा वातावरण एव उत्तम सुविधाओ का प्राप्त न होना होता है। अत इस अवधि मे बच्चो को अधिक निर्देशन तथा स्वस्थ वातावरण प्रदान करने की विशेष आवश्यकता है।

कोई भी विद्यालय भौतिक सुविधाओ के अभाव मे गतिशील नही हो सकता। उसकी प्रगति विद्यालय के विभिन्न साधनो पर ही अवलम्बित है। शिक्षण का कार्य उचित साधन एव सामग्री के आधार पर ही सफल हो सकता है। विद्यालयो मे यदि भौतिक साधन उपयुक्त है और वे पर्याप्त भी है तभी पठन-पाठन का कार्यक्रम सफल हो पाएगा, किन्तु यदि विद्यालय का अध्ययन किया जाए तो अनेक भवन टूटे-फूटे मिलेगे। कुछ इतने सुविधाहीन होगे जहा शिक्षण के उपकरण उपलब्ध ही नही होगे, बच्चो के लिए सामग्रियो का अभाव होगा। अत देश मे पूर्व-प्राथमिक स्तर की ऐसी शोचनीय स्थिति के कारण आवश्यकता इस बात की है कि इन पूर्व-

प्राथमिक विद्यालयो की भौतिक सुविधाओ की उपलब्धता का अध्ययन किया जाए। हालाकि सिह (1973), राम कुमार (1979), श्रीवास्तव (1981), डेका(1982), मेरी जी वाइल (1986), आचार्य (1986), ग्रीव्ज (1986) तथा इवान्स जी (1992) आदि ने पूर्व-विद्यालयी शिक्षा की स्थिति एव समस्याओ से सम्बन्धित कुछ सर्वेक्षण किए है किन्तु इन शोध कार्यों का पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो की भौतिक परिस्थितियो से सम्बन्ध कम ही है। भारत मे इस स्तर की शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिए जाने के कारण इस स्तर से सम्बन्धित शोध अध्ययनो की सख्या भी नगण्य है। जो शोध अध्ययन प्राप्त भी हुए है वे विभिन्न राज्यो जैसे असम, कर्नाटक, पश्चिम बगाल तथा गुजरात आदि राज्यो की शिक्षा स्थिति पर अथवा पूर्व- प्राथमिक स्तर की शिक्षा के अन्य क्षेत्रो के सदर्भ मे किए गए है। उत्तर प्रदेश मे पूर्व प्राथमिक स्तर पर उपलब्ध भौतिक सुविधाओ से सम्बन्धित अध्ययन अभी तक नही किया गया है। अत प्रस्तुत अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव लाभप्रद हो सकता है।

उद्देश्य

- पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे उपलब्ध भौतिक सुविधाओ का अध्ययन करना।
- प्राथमिक कक्षाओं के साथ चल रहे पूर्व-प्राथमिक तथा भिन्न पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे उपलब्ध सुविधाओ का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अध्ययन के आधार पर सुधार सम्बन्धी सुझाव देना।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोधकार्य में न्यादर्श के चयन हेतु आकस्मिक विधि का प्रयोग किया गया है। पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे उपलब्ध भौतिक सुविधाओ का अध्ययन करने हेतु आगरा नगर के कुल 40 (केवल पूर्व-प्राथमिक कक्षाओ वाले 20 विद्यालय तथा प्राथमिक कक्षाओ के साथ चलाए जाने वाले 20 विद्यालय) विद्यालयो का चयन न्यादर्श के रूप मे किया गया है। न्यादर्श मे केवल उन्ही सस्थाओ का चयन किया गया है जिन्हे स्थापित हुए कम से कम 5 वर्ष बीत चुके है।

उपकरण

पूर्व-प्राथमिक स्तर पर भौतिक सुविधाओ का अध्ययन करने हेतु कोई प्रमापीकृत अथवा अप्रमापीकृत उपकरण उपलब्ध न होने के कारण स्वनिर्मित निरीक्षण एव साक्षात्कार अनुसूची तैयार की गई। इस क्षेत्र के अनुभवी विशेषज्ञों से इस अनुसूची का मूल्याकन करवाने के पश्चात इसे शोध उपकरण के रूप मे प्रयुक्त किया गया है। पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे उपलब्ध भौतिक सुविधाओ का अध्ययन करने हेतु इस निरीक्षण एव साक्षात्कार अनुसूची मे कुल आठ विषय बिन्दुओ का चयन किया गया है।

आंकडों का विश्लेषण

आकड़ो का विश्लेषण करने के लिए प्रतिशत का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियां एवं निष्कर्ष

- आकडो के विश्लेषणोपरान्त निम्न उपलब्धिया एव निष्कर्ष प्राप्त हुए - 70 प्रतिशत पूर्व-प्राथमिक तथा 60 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयो के भवन उपयुक्त पाए गए। शेष विद्यालयो के भवन बच्चो की सख्या के अनुपात मे उपयुक्त न थे।
- प्राथमिक विद्यालयो के साथ चलाए जा रहे पूर्व प्राथमिक विद्यालयो मे से 10 प्रतिशत विद्यालयो मे कक्षा कक्ष मे प्रति बालक 5 वर्ग फुट से भी कम स्थान प्राप्त था। 45 प्रतिशत विद्यालयो मे 5 से 8 वर्गफुट प्रति बालक, 20 प्रतिशत विद्यालयो मे 12 वर्गफुट प्रति बालक से भी कम स्थान उपलब्ध था। प्रति छात्र 15 वर्ग फुट से अधिक क्षेत्र 25 प्रतिशत विद्यालयो मे ही उपलब्ध था।
- 20 प्रतिशत विद्यालयो मे खेल के मैदान हेतु कोई सुविधा उपलब्ध न थी। जिन विद्यालयो मे यह सुविधा उपलब्ध थी उसमे से कुल 25 प्रतिशत विद्यालयो मे 5 वर्ग फुट से कम, 10 प्रतिशत मे 5 से 10 वर्ग फुट, 25 प्रतिशत विद्यालयो मे 20

वर्गफुट से कम स्थान प्रति बालक उपलब्ध था। 20 वर्ग फुट से अधिक स्थान प्रति बालक केवल 20 प्रतिशत विद्यालयो मे ही उपलब्ध था। इनमे भी केवल पूर्व-प्राथमिक कक्षाओ वाले विद्यालयो की सख्या अधिक थी।

- शौचालय व्यवस्था प्राथमिक कक्षाओ के साथ चलाए जा रहे पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे अधिक उत्तम पाई गई। वहा 70 प्रतिशत विद्यालयो मे शिक्षको हेतु अलग शौचालय तथा 30 प्रतिशत विद्यालयो मे बालक एव बालिकाओ हेतु अलग-अलग शौचालय उपलब्ध थे।
- पूर्व-प्राथमिक स्तर पर पुस्तकालयो की व्यवस्था केवल 23 प्रतिशत विद्यालयो मे पाई गई, शेष 77 प्रतिशत विद्यालयो मे इनका अभाव पाया गया। इनमे भी प्राथमिक विद्यालयो के साथ चलाए जा रहे विद्यालयो का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक है। जिन विद्यालयो मे पुस्तकालय सुविधाए थीं, उनमे कहानिया, पशु-पक्षी व पर्यावरण सम्बधी सामान्य ज्ञान, बाल-गीत, दिन, मास तथा ऋतुओ सबधी पुस्तके अधिक उपलब्ध थी। इन विद्यालयो मे शिक्षको के लिए उपयोगी पुस्तके भी देखने को मिली।
- प्राथमिक विद्यालयो की अपेक्षा पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे बच्चो के लिए फर्नीचर अधिक उपयुक्त पाया गया। प्राथमिक विद्यालयो मे से 10 प्रतिशत मे नीची मेज-कुर्सियो का तथा 30 प्रतिशत मे सामान रखने हेतु अलमारियो एव सदूको का अभाव पाया गया। सभी पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे बच्चो के लिए नीची मेज एव कुर्सिया उपलब्ध थी।
- केवल10 प्रतिशत पूर्व प्राथमिक विद्यालयो मे ही विद्यालय की ओर से बच्चो को मध्यान्ह भोजन प्रदान किया जाता है। शेष सभी प्रकार के विद्यालयो मे इसके लिए कोई व्यवस्था उपलब्ध नही थी। बच्चे अपने घरो से ही भोजन लेकर आते हैं।
- कुल 20 प्रतिशत विद्यालयो मे बच्चो के लिए विश्राम सुविधाए उपलब्ध है जिनमे से पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो का प्रतिशत 30 एव प्राथमिक विद्यालयो का प्रतिशत 10 है। इनमे विश्राम-कक्ष के साथ-साथ अधिकाश मे पलग एव बिस्तर की व्यवस्था पाई गई।
- प्राथमिक विद्यालयो की अपेक्षा पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो में शिक्षण सामग्रियो का अधिक प्रयोग किया जाता था। जन सचार के साधन (रेडियो, टी वी , वीडियो कैसेट रिकार्डर तथा टेप रिकार्ड) भी पूर्व प्राथमिक विद्यालयो मे ही अधिक उपलब्ध थे। इन साधनो मे से टेप रिकार्डर का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है।
- केवल सी सॉ को छोडकर अन्य सभी बाह्य खेल उपकरण पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे ही अधिक उपलब्ध थे। जगल जिम, मेरी गो राउण्ड, झूले, तिपहिया साइकिल तथा रस्सी की उपलब्धता का प्रतिशत पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक विद्यालयो मे क्रमश 60 तथा 40 पाया गया।
- आन्तरिक खेलो हेतु ब्लॉक्स, मोती, पजल्स, गुडियाघर, मीनार तथा दीवार फ्रेम आदि सभी उपकरण प्राथमिक विद्यालयो की अपेक्षा पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो मे ही अधिक उपलब्ध थे।
- लय तथा भाव मुद्राओ की अभिव्यक्ति के लिए सगीत उपकरणो का प्रयोग प्राथमिक विद्यालयो मे अधिक किया जाता था तथा वहा उनकी उपलब्धता भी अधिक थी।

सुझाव

- बच्चो के सर्वोत्तम विकास को दृष्टि मे रखते हुए यह आवश्यक है कि बच्चो की आवश्यकतानुसार भवन की सरचना, डिजाइन (नीची खिडकियॉ, कमरो मे तीनो ओर बच्चो हेतु नीचे श्यामपट्ट, नीचे वॉश-बेसिन, बरामदे तथा अधिक शौचालय आदि) तथा रख-रखाव पर ध्यान दिया जाए। सभी विद्यालयो मे कक्षा कक्ष के अतिरिक्त बच्चो

की स्वतत्र क्रियाओ हेतु कक्ष, स्वास्थ्य निरीक्षण कक्ष, भोजन कक्ष, विश्राम कक्ष, रसोई, प्रेक्षालय तथा भण्डार घर आदि की अत्यधिक आवश्यकता है। अलग-अलग कमरो हेतु स्थान उपलब्ध न होने पर एक ही बडे कमरे मे पार्टीशन के माध्यम से विभिन्न कार्यो हेतु व्यवस्था की जा सकती है। बच्चो के लिए कक्षा-कक्ष मे प्रति बालक कम से कम 10 वर्गफुट स्थान अवश्य प्रदान किया जाए। स्थान की कमी होने पर द्विपारी पद्धति का सचालन भी किया जा सकता है।

- खेल के मैदान हेतु 40 वर्गफुट स्थान प्रति बालक अपेक्षित है किन्तु बढती हुई जनसख्या को देखते हुए 30 वर्गफुट प्रति बालक खेल का स्थान अवश्य प्रदान किया जाए जिसमे झूले, बालू के खेल, पानी का खेल, पालतू पशु-पक्षियो का कोना तथा उद्यान आदि की व्यवस्था की जा सके।
- अन्य विद्यालयो की भाति इस स्तर के विद्यालयो मे भी पुस्तकालय की अनिवार्यता है। अत विद्यालयो मे पुस्तकालय उपलब्ध न होने पर कक्षा-कक्ष मे ही पुस्तकालय कोना बनाया जाए या अलमारी मे ही पुस्तके रखी जाए जिसमे बच्चो तथा अध्यापको दोनो से ही सबधित पुस्तके उपलब्ध हो सके।
- पूर्व-प्राथमिक स्तर पर बच्चो मे क्रियाशीलता अधिक होने के कारण अधिक शक्ति का व्यय होता है अत उन्हे बीच-बीच मे पौष्टिक तथा शक्तिवर्द्धक भोजन की आवश्यकता होती है। अत इस स्तर पर सभी विद्यालयो मे बच्चो के लिए विद्यालय की ओर से मध्यान्ह भोजन देने की व्यवस्था की जाए। मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था से बच्चो मे स्वस्थ आदतो का विकास भी किया जा सकता है।
- बच्चो के शिक्षण हेतु विभिन्न श्रव्य-दृश्य सामग्रियो का प्रयोग किया जाए। जिन विद्यालयो मे जनसचार के साधन एव सगीत यत्र उपलब्ध है वहा उनका अधिकतम उपयोग किया जाए। जहा यह साधन उपलब्ध नही है वहा शीघ्र ही इनकी व्यवस्था कराई जाए।
- बच्चो के मानसिक विकास हेतु आन्तरिक खेल उपकरणो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत ब्लॉक्स, मीनार, पजल्स, गुडिया घर, दीवार फ्रेम तथा कठपुतली आदि जैसे आन्तरिक खेलो की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय मे की जाए। सामग्री उपलब्ध न होने पर व्यर्थ सामग्री द्वारा शिक्षिका कुछ उपकरणो को स्वय निर्मित कर सकती है। ब्लॉक्स के स्थान पर व्यर्थ गुटके तथा माचिस की डिब्बिया, टायर, पैकिग-बॉक्स, पुराने कैलेन्डर, कपडो के टुकडे तथा बधाई-पत्र आदि का प्रयोग उपकरण निर्माण हेतु किया जा सकता है।
- बच्चो के उचित शारीरिक विकास एव बाह्य पर्यावरण से सम्पर्क स्थापित करने हेतु बाह्य खेलो तथा उसके लिए उचित उपकरणो का विशेष महत्त्व है। अत सुझाव है कि सभी विद्यालयो मे तिपहिया साइकिल, झूले, तथा सैन्ड बॉक्स आदि सरीखे बाह्य उपकरणो की व्यवस्था की जाए जिससे बच्चे शारीरिक रूप से भी सुदृढ बन सके। □□

पंडित सुन्दरलाल शर्मा केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान : एक परिचय

पडित सुन्दरलाल शर्मा केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा सस्थान (पी एस एस सी आई वी ई) का निर्माण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् मे पूर्व स्थित व्यावसायिक शिक्षा विभाग (डी वी ई) को विस्तार देकर किया गया। यह परिषद् की एक अभिन्न इकाई है जो कि स्वय भारत सरकार की एक स्वायत्त सस्था है। व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे शोध एव विकास के लिए भोपाल मे स्थित यह एक शीर्ष राष्ट्रीय सस्था है।

पी एस एस सी आई वी ई का उद्देश्य शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर, विशेषत स्कूली शिक्षा मे, व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ कार्य अनुभव एव समाज के लिए सार्थक प्रायोगिक कार्यो को यथा सभव मजबूत करना एव आगे बढाना है। अत यह सस्थान व्यावसायिक शिक्षा सबधी नीति निर्धारण को व्यवहार मे लाने से जुडे लोगो के बीच व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न पहलुओ व अवधारणाओ पर विश्लेषित दृष्टिकोण पैदा करने का प्रयास करता है। सक्षेप मे यह अपने देश की एक ऐसी स्रोत सस्था है जो जहा कही भी आवश्यकता हो, व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे अपनी विशेषज्ञता, अनुभव एव जानकारी प्रदान कर सकती है।

व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम अपने देश में 1976-77 से लागू किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने इसे नया बल प्रदान किया। इस नीति के आलोक मे इस राष्ट्रीय प्रयास को केन्द्रीय प्रयोजित योजना (सी एस.एस) द्वारा फरवरी 1988 से प्रभावी रूप से निर्देशित किया जाने लगा। इसके अन्तर्गत आधारिक सरचना निर्माण, प्रबन्धकीय व्यवस्था विकास, पाठ्यचर्या विकास तथा शिक्षक प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमो के लिए धनराशि दी जाती है।

केन्द्रीय प्रायोजित योजना के अतर्गत केन्द्र, क्षेत्र, राज्य, जिला, तथा सस्थान के स्तर पर प्रमुखत निम्नाकित चार प्रकार के कार्यो के सचालन हेतु एक सुनियोजित प्रबधकीय व्यवस्था का विकास किया जा रहा है

1 नीति निर्माण एव समन्वय
2 प्रशासन एव पर्यवेक्षण
3 शोध एव विकास
4 मूल्याकन एव प्रमाणीकरण

राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण एव समन्वय का कार्य जे सी वी ई करती है। प्रशासन निरीक्षण तथा शोध एव विस्तार कार्यो के लिए राज्य तथा जिला स्तर पर एस सी वी ई , बी वी ई. तथा डी वी ई ओ की स्थापना की जा रही है।

मूल्याकन एव प्रमाणीकरण की जिम्मेदारी सी बी एस ई , नेशनल ओपन स्कूल, आई सी एस ई एव राज्य परीक्षा मडलो पर है। क्षेत्रीय शिक्षुता प्रशिक्षण मडल (बी ओ ए.टी) व्यावसायिक शिक्षा उत्तीर्ण छात्रो की अपने-अपने क्षेत्रो मे शिक्षुता प्रशिक्षण (एपरेन्टिसशिप ट्रेनिग) की व्यवस्था करते है।

क्रियाकलाप

- व्यावसायिक शिक्षा की विषय वस्तु एव ढाचे मे राष्ट्रीय स्तर पर समानता लाना, उसके गुणवत्ता स्तर (शिक्षको के स्तर पर भी) को नियत्रित करना, देश मे व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताओ का विश्लेषण, निर्धारण व आवश्यक शोध प्रयासो का आकलन एव विकास करना तथा उपयुक्त मानव ससाधन विकास हेतु प्रयास करना।
- व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे पाठ्यचर्या विकास, प्रशिक्षण, पूर्वाभिमुखीकरण, प्रसार, विस्तार, मूल्याकन तथा राज्य सरकार एव अन्य सस्थानो को परामर्श देने आदि कार्यो को निर्देशित, नियत्रित एव समन्वित करना।

- व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमो के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु ससाधन मत्रालय, भारत सरकार एव राज्य सरकारो को परामर्श देना एव मदद करना।
- व्यावसायिक शिक्षा सयुक्त परिषद् तथा मानव ससाधन मत्रालय के तकनीकी खड के रूप मे कार्य करना।
- व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक विस्तृत प्रबधकीय व्यवस्था का राष्ट्र, क्षेत्र राज्य, जिला एव सस्थान के स्तरो पर निर्माण के लिए परामर्श, प्रोत्साहन एव निर्देशन करना।
- व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमो के लिए औपचारिक एव अनौपचारिक रूप से देश के व्यापक स्रोत सस्थान के रूप मे कार्य करना।
- गुणवत्ता पहलुओ को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न प्रकार के प्रमाण-पत्रो एव अधिकृत व्यावसायिक सस्थानो के बीच समकक्षता स्थापित करना।

गतिविधियां

- प्रबन्धकीय कर्मचारियो के प्रशिक्षण एव विकास हेतु नियत्रित दीर्घ एव अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम सचालित करना। कार्यरत व्यावसायिक शिक्षको के लिए भी नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।
- राष्ट्रीय तथा अतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत विभिन्न सस्थानो से सपर्क, एव समन्वय स्थापित करना।
- छात्र सहयोग सेवाओ का आयोजन करना।
- व्यावसायिक शिक्षा के छात्रो के समानान्तर तथा उर्ध्व शैक्षणिक विकास के लिए युग्मक पाठ्यक्रमो को विकसित करना।
- व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमो का नियमित मूल्याकन, निर्देशन एव समीक्षा करना।
- पाठ्यचर्या एव शिक्षण सामग्री का विकास तथा मूल्याकन करना।
- सबंधित अंतरराष्ट्रीय सपर्को, सबधो को निर्मित करना।
- उद्योगो तथा व्यवसायो के अन्तर्गत प्रशिक्षण तथा शिक्षुता प्रशिक्षण के लिए कार्यरत व्यावसायिक शिक्षा के छात्रो को प्रोत्साहित करना एव सुविधा प्रदान करने मे उनकी मदद करना।
- महिलाओ, विकलागो तथा अनुसूचित जाति एव जनजातियो के लिए विशिष्ट कार्यक्रमो का सचालन करना।
- विभिन्न प्रकार के पदाधिकारियो तथा प्राचार्यों, राज्य अधिकारियो, सर्वेक्षण कार्यकर्ताओ, पाठ्यचर्या तथा शिक्षण सामग्री विकास समायोजको तथा शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम समायोजको के लिए पूर्वाभिमुखीकरण कार्यक्रम सचालित करना।
- केन्द्र सरकार, राज्य सरकारो, निदेशालयो, जिला स्तर के कर्मचारियो तथा विभिन्न सस्थानो के बीच व्यावसायिक शिक्षा सबधी सूचनाओ एव जानकारियो का निर्बाध तथा निरतर प्रवाह बनाए रखना।
- यू जी सी तथा विश्वविद्यालयो को पूर्व स्नातक (यू जी.) स्तर के लिए व्यावसायिक शिक्षा पाठयचर्या विकसित करने के लिए विशेषज्ञता प्रदान करना।
- राज्य सरकार अभिकरणो तथा विदेशो एव अतरराष्ट्रीय सस्थाओ, विशेषकर अफ्रीकी-एशियाई क्षेत्र मे, व्यावसायिक शिक्षा से सबधित जानकारी एव परामर्श प्रदान करना।
- विभिन्न प्रकार के कार्यानुभव एव व्यावसायिक शिक्षा सबधी कार्यक्रमो के लिए अनुकरणीय बहुमाध्यम (मल्टीमीडिया) शिक्षण सामग्री तैयार करना तथा पुन व्यापक स्तर पर नियमित एव विस्तृत शिक्षण सामग्री निर्माण व प्रसार और उसके प्रसारण की व्यवस्था करना।
- विभिन्न प्रकार के कार्यानुभव एव व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों का नियमित नियत्रण एव मूल्याकन करना।
- स्कूली शिक्षा मे छूटे एव पिछड गए छात्रो, बेरोजगारो या आशिक सेवारत युवको के लिए अनौपचारिक व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम विकसित

करना।

17 जेनेरिक व्यावसायिक शिक्षा पाठयक्रम (जी.वी सी) विकसित करना एव उसका परीक्षण करना।

18 व्यावसायिक शिक्षा एव कार्यानुभव से जुडे विभिन्न पहलुओं एव विषयो पर सामाजिक एव आवश्यक शोध कार्य करना।

शैक्षिक विभाग

पी एस एस सी आई वी ई के छ शैक्षिक विभाग है जो कि इस प्रकार है

1 कृषि सबधी व्यवसाय विभाग
2 व्यापार एव वाणिज्य सबधी व्यवसाय विभाग
3 अभियन्त्रण एव प्रौद्योगिकी सबधी व्यवसाय विभाग
4 स्वास्थ्य एव अतिरिक्त चिकित्सा (पैरामेडिकल) सबधी व्यवसाय विभाग
5 गृह विज्ञान सबधी व्यवसाय विभाग
6 मानविकी, विज्ञान एव शिक्षा सबधी व्यवसाय विभाग।

सौजन्य सयुक्त निदेशक
पी एस एस सी.आई.वी ई, भोपाल

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	**क्रिएटिविटी एण्ड वैल्यूज–एजूकेशनल पर्सपेक्टिव्स**
लेखक	**डॉ एन एल. गुप्ता**
प्रकाशक	आर्य बुक डिपो, करौल बाग, नई दिल्ली - 110005
प्रथम सस्करण	1992
प्रकाशन वर्ष	1992
पृष्ठ सख्या	176
मूल्य	120 रुपए
समीक्षक	**कु. अर्चना सक्सैना**

नई शिक्षा नीति के साथ मूल्योन्मुखता की ओर ध्यान अधिक आकर्षित हुआ। मूल्य और मौलिकता आज शिक्षा मे चुनौती पूर्ण क्षेत्र हैं। प्रस्तुत पुस्तक रचनात्मकता और मूल्यों मे सकारात्मक सबंध की ओर इंगित करती है। सरकार को भी विभिन्न नीतियां निर्धारित करते समय अपने मूल्यो के अनुसार निर्णय लेना होता है। रचनात्मक उपलब्धियो के लिए भी मूल्य मार्गदर्शक होते हैं। लेखक के अनुसार किसी भी समाज अथवा राष्ट्र को पहले निर्णय करना चाहिए कि वह किन मूल्यों को पोषित करना चाहता है तदनुसार उन्हें शिक्षा-प्रणाली मे सम्मिलित करना चाहिए।

पुस्तक मे रचनात्मकता को परिभाषित करते हुए रचनात्मक व्यक्तियो के वर्गीकरण का भी वर्णन है। रचनात्मक व्यक्तियो मे अध्ययनोपरान्त पाई गई विशेषताए भी बताई गई है। लेखक का मानना है कि रचना करना मानव की मूल प्रवृत्ति है जिसकी पूर्ति न होना उसे निराशा और द्वन्द्व की ओर ले जाता है। कल्पना, गिफटेडनैस, ज्ञान-निपुणता, उत्पादकता, आदि से रचनात्मकता का सबंध है। पुस्तक मे रचनात्मकता की विशेषताएं भी दी गई है। क्या मूल्य परिभाषित किए जा सकते है? इस संदर्भ मे कम्युनिस्ट मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक, आदर्शवादी तथा परम्परावादी सिद्धान्तो का उल्लेख है।

मूल्य मानसिक स्वास्थ्य से भी सबधित होते है। मूल जैविक आवश्यकताओ तथा मूल्यो मे द्वन्द्व एव विकृति तीव्र मानसिक रोग व स्नायुरोग का कारण हो सकती है।

आधुनिक विज्ञान और तकनीकी ने परम्परागत नैतिकता और मूल्यो के लिए खतरा उत्पन्न किया है, ऐसा लेखक का विचार है। इसका दूसरा पक्ष भी सामने रखा जा सकता था, जिसकी कमी खटकती है। वास्तविकता यह है कि हमे आधुनिक विज्ञान व तकनीकी और मूल्यो को साथ लेकर चलना है। दोनों मे अनिवार्य विरोध नहीं है जैसा कि आभास होता है। त्वरित गति से परिवर्तित होने वाली वर्तमान तकनीकी सही दिशा मे निर्दिष्ट हो तो व्यक्ति को समायोजन, सहयोग, स्व-अनुशासन, आत्मविकास, आदि सिखा सकती है।

आगे लेखक ने औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनो तथा सचार माध्यमो से अपेक्षाओ का भी उल्लेख किया है। अध्याय 5 मे रचनात्मक प्रक्रिया में मूल्यो का स्थान, मूल्यों के रचनात्मक पहलू, रचनात्मक और बुद्धिमान व्यक्ति के व्यक्तित्व, शील-गुण आदि से

सबधित अध्ययनो का ब्यौरा देकर प्रभावी ढग से बताया गया है। व्यक्तित्व कारक और रचनात्मकता पर भी एक अध्याय है। रचनात्मकता के लिए क्या साधक है और क्या बाधक? इसकी भी चर्चा की गई है।

अध्याय 8 मे शिक्षा क्षेत्र के सदर्भ मे 'मूल्य' का प्रत्यय स्पष्ट किया गया है। प्रत्येक विषय को मूल्योन्मुख बनाने पर जोर दिया गया है। मुख्य नैतिक सिद्धान्तो का भी सक्षिप्त विवरण है। मूल्यपरक शिक्षा का उद्देश्य व्यावहारिक प्रतिमान मे सुधार बताया गया है, जिससे अधिकाश पाठक सहमत होगे।

मूल्यपरक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियो को अच्छा नागरिक बनाना है जो बदलते परिवेश मे अपना उत्तरदायित्व निभाने मे सक्षम हो। विद्यालय स्तरीय शिक्षा हेतु 7 सामान्य उद्देश्य भी सुझाए गए हैं (पृष्ठ 99)। विद्यालय कार्यक्रम और गाधीवादी मूल्यों पर भी चर्चा की गई है। शिक्षक के कार्य, समन्वित प्रयास, कला, समाजोपयोगी व उत्पादक कार्य, परियोजना कार्य सगीत, प्रदर्शनी, योग, शिक्षा आदि के मूल्य जाग्रत करने मे आने वाली कठिनाइया भी बताई गई हैं। मूल्य शिक्षा हेतु कुछ निर्देशो का भी उल्लेख है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य की सीमाओ मे मूल्यपरक शिक्षा को एक आन्दोलन की तरह लेना होगा, ऐसा लेखक का मानना है।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का वर्णन करते हुए रचनात्मकता का महत्त्व समझाया गया है। रचनात्मक शिक्षण हेतु सुझाव भी दिए गए है। रचनात्मक अधिगम कब होता है- इस पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक के अनुसार रचनात्मकता के पोषण मे शिक्षक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुस्तक मे दिए गए व्यावहारिक सुझाव अत्यन्त उपयोगी है। ये सुझाव शिक्षको एव प्रधानाध्यापकों को वाछित दिशा देने मे भी सहायक होगे। प्रस्तुत पुस्तक मे कुल 10 अध्याय है। पुस्तक सरल भाषा मे लिखी गई है। पुस्तक की विषय वस्तु सक्षिप्त होते हुए भी लेखक ने विचारो की स्पष्टता से कोई समझौता नही किया है। शिक्षको, शोधकर्ताओ, शिक्षक प्रशिक्षण तथा शिक्षा के क्षेत्र मे रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियो के लिए यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है। □□

फुर्सत में बच्चे क्या पढ़ें?

एन.सी.ई.आर.टी. का नाम आदर्श पाठ्यपुस्तक–प्रकाशन से जुडा हुआ है। लेकिन एन.सी.ई.आर.टी ने बच्चों और किशारों के लिए पाठ्यपुस्तको के अलावा भी विविध प्रकार का साहित्य प्रकाशित किया है। यह साहित्य उच्च स्तर का तो है ही, साथ ही इन किताबो का दाम भी काफ़ी कम है। विविध अवसरो पर बच्चो को उपहार देने के लिए, आप अच्छी और कम दाम वाली पुस्तकों की तलाश में होगे। नीचे हम अपनी कुछ हिन्दी पुस्तकों की सूची दे रहे हैं। तो लीजिए चुनिए अपनी मनपसद किताबे :

जीवनियाँ

पुरुषोत्तमदास टंडन	14.10
प्रेमचद	5.85
एनी बेसेट	7.00
ऐसे थे राजेन्द्र बाबू	9.55
कर्मयोगी तिलक	7.00
तेनजिंग नोरगे	4.90
नेहरू – नए भारत के निर्माता	9 50
बाबा आम्टे	4.55
बिरसा मुडा	7.50
विश्वेश्वरय्या	7.55
सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खॉ	5 50
सरोजिनी नायडू	6.50
अहिल्या बाई	6.00
ज्योतिबा फुले	6.50
लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल	8 00

प्रदेश परिचय

आओ, तमिलनाडु चलें	8.50
हमारा अरुणाचल	8.00
हमारा गुजरात	12 00

विज्ञान–साहित्य

उत्कृष्ट गैसे	5.50
कम्प्यूटर से बातचीत	10.00
कहानी शल्य चिकित्सा की	20.00
चमत्कार परमाणु ऊर्जा के	11 60
जैव तकनीक (बायो टैक्नोलॉजी)	6 50
चिकित्सा विज्ञान की कहानियॉ	9 60
तत्व नए पुराने	8.00
ब्रह्माड का रहस्य	13.50
तारो की जीवन गाथा	9.50
नापो तो सच पता चले	7.50
नाभिकीय विकिरण के अनुप्रयोग	8.00
फ़ोनोग्राफ से स्टीरियो तक	10 35
मानव मशीन से परिचय	10.25
मिट्टी का मोल	7.45
उपग्रह उवाच	14.50
समुद्र कुबेर का एक भंडार	20.00

विविध

मिल कर सोचे	14.00
बैकिग की मनोहारिता	1.25
युवा ससद का संचालन	14.50

हमने अंग्रेज़ी और उर्दू में भी इस तरह का बाल–साहित्य प्रकाशित किया है। विस्तृत सूची–पत्र और अन्य जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए .

मुख्य व्यापार प्रबंधक
प्रकाशन प्रभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016

टेलेक्स : 31–73024 टेलिफोन 6851070, 662708

वर्ष 13 अंक 3 जनवरी 1996

भारतीय आधुनिक शिक्षा

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको, शैक्षिक प्रशासको तथा शोधकर्त्ताओ को एक मच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामो, जैसे–शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याए, पाठ्यक्रम एव प्राविधि सम्बन्धी नवीन विकास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यो मे शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार और विकास को बढावा देना।

इस पत्रिका की विषय-सामग्री मे विख्यात शिक्षाशास्त्रियो द्वारा लिखे गए लेख, चुनौतीपूर्ण वाद-विवाद, शैक्षिक समस्याओ की आलोचनात्मक विवेचना, शिक्षाशास्त्रियो से भेटवार्ता, नवाचार, पाठको के पत्र तथा पुस्तक-समीक्षा आदि शामिल है। लेखको के द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने है तथा ये किरी भी प्रकार परिषद् की नीतियो को प्रस्तुत नही करते।

प्रकाशन सहयोग

यू प्रभाकर राव *अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग*

आर एस सक्सेना *प्रभारी मुख्य सपादक*
मीरा कात *सपादक*
राजपाल *सहायक सपादक*
शिव कुमार *उत्पादन अधिकारी*
अरुण चितकारा *सहायक उत्पादन अधिकारी*
जहानलाल *उत्पादन सहायक*

मूल्य एक प्रति : 8.50 रुपये; वार्षिक : 34.00 रुपये

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष : 13 अंक : 3 जनवरी 1996

विषय-सूची

पाठकों के पत्र

भारतीय आधुनिक शिक्षा में छपे लेखों पर पाठको की प्रतिक्रियाए आमंत्रित हैं। यथास्थान इन्हे प्रकाशित करने का प्रयास किया जाएगा।

प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षक के आवश्यक गुण, योग्यताएं और क्षमताएं

अमरनाथ दत्त गिरि

प्रवक्ता
शिक्षा संकाय
अतर्रा पी० जी० कालेज
अतर्रा, बांदा (उ० प्र०)–210201

शिक्षण तथा अधिगम परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। समुचित अधिगम के लिए शिक्षण का प्रभावी होना अत्यावश्यक है। परन्तु शिक्षण तभी प्रभावी हो सकता है जबकि एक ओर शिक्षक अपनी योग्यताओ तथा क्षमताओ से परिचित हो एवं दूसरी ओर वह अधिगम की प्रक्रिया और छात्रों के बौद्धिक व बौद्धिकेतर गुणों को भली-भांति जानता हो। प्रस्तुत लेख में लेखक ने आधुनिक परिस्थितियों मे एक प्रभावी शिक्षक की छवि उजागर करने की चेष्टा की है। साथ ही प्रभाबी शिक्षण के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं।

विद्यार्थी देश और राष्ट्र की सम्पत्ति और उसके भावी कर्णधार होते हैं। उनके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के निर्माण एवं विकास का उत्तरदायित्व शिक्षक पर होता है। छात्र-छात्राएं बगीचे में लगे पौधो के समान होते हैं। अध्यापक माली है जो उन पौधों को सींचता है, उनकी काट-छाट करता है तथा अन्य सब प्रकार से उनकी देखभाल करते हुए उन्हें फलने-फूलने योग्य बनाने में अपना योगदान देता है। जिस प्रकार माली में माली के गुण होना आवश्यक है उसी प्रकार शिक्षक मे शिक्षकोचित गुण, योग्यताएं अथवा विशेषताएं और क्षमताएं होनी चाहिए।

अनेक व्यक्तित्वो का निर्माण करने वाला शिक्षक केवल एक व्यक्ति न होकर स्वयं एक सस्था होता है। शैल्डन ई० डेविस नामक शिक्षाशास्त्री ने ठीक ही कहा है, ''The value of every school depends primarily upon the teacher'' अर्थात् किसी भी विद्यालय का महत्त्व उसके शिक्षक पर निर्भर करता है। एक अन्य प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री नैल्सन एल० बॉसिग ने भी इसी प्रकार की बात कही है कि, ''शिक्षा की किसी भी योजना मे शिक्षक को केन्द्रीय स्थान देता हूं।''

हम सब जानते है कि कोई भी विद्यार्थी किसी विद्यालय विशेष में प्रवेश पाने के लिए इसलिए आतुर अथवा इच्छुक नहीं होता है कि उसका भवन सुन्दर है या वहां खेलकूद, नाच-तमाशे अधिक होते हैं, बल्कि इसलिए कि वह वहां पढ़ना चाहता है क्योकि वहां के अध्यापक अच्छा पढ़ाते हैं और वहां के परीक्षाफल उत्तम रहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि कुछ विद्यालय, महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय अपने अध्यापकों के नामों से ही जाने जाते है और इन सस्थाओं से पढ़े हुए अनेक छात्र इस बात पर गर्व का अनुभव करते हैं कि वे अमुक शिक्षक के छात्र रहे हैं। प्राचीन काल में अरस्तू, सुकरात, प्लेटो, पाइथेगोरस, आचार्य द्रोण, कौटिल्य, वराहमिहिर, आर्यभट्ट आदि इसी कोटि के शिक्षक थे। आधुनिक काल में भी अनेक ऐसे छात्र मिल जाएंगे जो सर सी० वी० रमन, डा० जे० सी० बोस, डा० मेघनाथ साहा, महामहोपाध्याय गंगानाथ झा, डा० सिद्धान्त, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० ज़ाकिर हुसैन, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि के चरणों में बैठकर विद्या अर्जन को अपना सौभाग्य बताते हैं। ''संस्था व्यक्ति को गौरवान्वित नही करती है, बल्कि व्यक्ति संस्था को गौरवान्वित करता है'' इस सत्य और तथ्य का सर्वाधिक ज्वलन्त उदाहरण हमारी शिक्षा सस्थाए प्रस्तुत करती हैं। स्पष्ट है कि किन्हीं विशिष्ट गुणों, योग्यताओ व क्षमताओं

के कारण ही उपर्युक्त श्रेष्ठ शिक्षकों ने अपने छात्रों को प्रभावित किया होगा और सहज ही वे अनेक छात्रों के प्रेरणा स्रोत बन गए।

शिक्षण चाहे कला हो या विज्ञान, पर एक अच्छा व प्रभावी शिक्षक बनने और शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उनमें कुछ निश्चित प्रकार की प्रवृत्तियां और चरित्रगत विशेषताएं आवश्यक हैं।

कुछ दशक पहले की तुलना में आज के शिक्षक का कार्य कहीं अधिक कठिन है। ज्ञान के विस्फोट, शिक्षण तकनीकी के विकास और टी.वी., वीडियो–ऑडियो पाठ्यसामग्री जैसे शिक्षण के विभिन्न माध्यमों के प्रसार ने जहां एक ओर अनेक नए अवसर दिए वहीं दूसरी ओर एक शिक्षक के समक्ष समय की मांग के अनुरूप चुनौतियो और दायित्वों में भी भारी वृद्धि की। पहले जब शिक्षक अकेला ही ज्ञान प्राप्ति का स्रोत था तो उसका आलसी, प्रमादी और निष्क्रिय होना खप जाता था, परन्तु अब ऐसा शिक्षक तत्काल विद्यार्थियों की नापसंदगी, उपेक्षा और घृणा का पात्र बन जाता है।

शिक्षक के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए हैनरी वैन डाइक कहते हैं, ''शिक्षक वह है जो सुप्त आत्माओं की तन्द्रा भंग करता है (सोने से जगाता है), अकर्मण्यों व आलसियो को चेताता है, उत्सुकों को और अधिक उत्साहित करता है और जो चल रहे हैं, उनकी गति को और तेज करता है।'' इससे भी बढ़कर कहें तो शिक्षक वह है जो अपने मस्तिष्क के सर्वोत्तम कोश एवं अपनी स्वयं की खुशियो को सीखने की प्रक्रिया में सम्प्रेषित करता है और विद्यार्थियों के साथ उन्हें बांटता है। एक प्रकार से वह ऐसे अनेक दिए जलाता है जो आने वाले वर्षों में अपना उजाला बिखराकर उस शिक्षक की खुशियो को वापस लौटाने, खुशियो को कई गुना बढ़ाकर समाज में बांटने की क्षमता रखते हो।

एक सफल शिक्षक के गुणों का निर्धारण और विश्लेषण करने के उद्देश्य से कई सर्वेक्षण हुए हैं और यद्यपि उनके परिणाम भिन्न–भिन्न निकले हैं, फिर भी यह तथ्य सामने आया है कि सर्वाधिक सफल और प्रभावशाली अध्यापकों मे सामान्यत: कुछ निश्चित तरह के बुनियादी गुण पाए जाते हैं। अगर अध्यापकों को प्रभावशाली बनना है तो उन्हें स्वयं मे निम्नलिखित गुण विकसित करने होंगे:

शिक्षण के प्रति लगाव (रुचि)

प्रथम गुण है शिक्षण के प्रति लगाव। सिर्फ वे लोग अपने क्षेत्र में सफल व्यवसायी होते हैं, जिन्हे अपने व्यवसाय से प्यार होता है। इसी प्रकार जिन्हें शिक्षा से प्यार हो, वे ही अच्छे शिक्षक हो सकते हैं। शिक्षक बनने के बाद उन्हें अपने व्यवसाय के प्रति रुचि और प्रतिबद्धता का भाव विकसित करना होता है। शिक्षण के प्रति किसी प्रकार के लगाव के बिना कोई शिक्षक सफल और प्रभावशाली नहीं हो सकता।

शिक्षण के प्रति प्यार का निहितार्थ है शिक्षार्थी के प्रति प्यार। वही शिक्षक वास्तविक अर्थों में शिक्षक है जो शिक्षार्थियों के कल्याण में गहन व्यक्तिगत रुचि रखे। वस्तुत: शिक्षक को विद्यार्थी का मित्र, मार्गदर्शक और दार्शनिक होना चाहिए। जिन शिक्षकों के मस्तिष्क में हर समय पीरियड की घटी और वेतन होता है, वे कभी लोकप्रिय नही होते। यह सोचना सभी के लिए आवश्यक है कि छात्र और शिक्षक परस्पर विरोधी समूह नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। वे एक सिक्के के दो पहलू नहीं, एक तत्र के हिस्से हैं।

नया सीखने की चाह

अच्छे शिक्षक का एक और गुण यह है कि वह हमेशा स्वयं कुछ नया सीखने के लिए प्रयासरत रहे। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि शिक्षक बन जाने के पश्चात अब उसके लिए सीखने को कुछ नहीं बचा।

जो शिक्षक सीखना अथवा नया ज्ञान प्राप्त करना बंद कर देता है, वह शिक्षक नहीं रहता क्योंकि सीखना और सिखाना, पढ़ना और पढ़ाना दोनों साथ–साथ चलते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ठीक ही कहा है कि जब एक दीपक जलना बन्द कर देता है तो उसका प्रकाशित होना बंद हो जाता है और जब एक शिक्षक सीखना बंद कर देता है तो उसका शिक्षण बन्द हो जाता है।

जानने-सीखने की यह सतत इच्छा हाल के वर्षों में काफी महत्त्वपूर्ण हो गई है क्योंकि आज सभी क्षेत्रों में ज्ञान अकल्पनीय गति से विस्तृत होता जा रहा है। जो शिक्षक नवीनतम जानकारियों से स्वयं को लैस नहीं करता, वह कहीं पीछे छूट जाता है और कभी सफल और लोकप्रिय नहीं बन सकता। रायबर्न नामक शिक्षाशास्त्री ने एक स्थान पर लिखा है कि, ''अच्छा शिक्षक अपने ज्ञान में वृद्धि के लिए सदैव सचेष्ट रहता है। वह अपने ज्ञान को नया और अद्यतन रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है।'' अपने विषय के पूर्ण ज्ञान के अतिरिक्त शिक्षक को अन्य अनेक विषयों का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए।

शिक्षण की योजना, अभ्यास और तैयारी

सर्वेक्षणों से पता चला है कि योजना, अभ्यास और तैयारी शिक्षण को प्रभावी बनाती हैं और एक अच्छा शिक्षक अपने कार्य को सुसगठित तरीके से योजनाबद्ध करता है। यह सोचना बिल्कुल गलत है कि पढ़ाने के लिए शिक्षण पूर्व तैयारी जरूरी नहीं होती। कई बार एक घटा पढ़ाने के लिए तीन चार घंटे तैयारी और योजना की आवश्यकता होती है। अनुभव के साथ-साथ तैयारी के समय में धीरे-धीरे कमी आ सकती है लेकिन अनुभवी अध्यापक भी उपयुक्त तैयारी करके ही शिक्षण का अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं। आज अध्यापन कार्य शिक्षण-विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है। कक्षा में अध्यापक को कब प्रश्न पूछना है, कब शिक्षण प्रारम्भ करना है, कैसे विद्यार्थी की पहल का उपयोग करते हुए अध्यापन को आगे बढ़ाना है, श्यामपट्ट पर कब, क्या व कैसे लिखना है, विद्यार्थियों की सहभागिता कब बढ़ानी है, विद्यार्थियों को कब, कितना व किस प्रकृति का गृहकार्य देना है आदि प्रश्न शिक्षण की योजना से सीधे जुड़े हुए हैं।

कक्षा में शिक्षक का प्रदर्शन उसके कक्षा में प्रवेश से पूर्व किए गए प्रयत्न पर निर्भर करता है। शुरू के वर्षों में जो अध्यापन कार्य को गंभीर और व्यवस्थित तरीके से अपनाते हैं वे ही आगे जाकर अनुभवी होने के साथ-साथ बेहतर अध्यापक साबित होते हैं। मगर जब व्यवसाय को गंभीरता से नही लिया जाता तो अनुभव में अज्ञानता, अयोग्यता और अपूर्णता जुड़ती चली जाती है।

समझाने की कला में दक्ष

शिक्षक के लिए विषय का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक यह है कि वह उस ज्ञान को अपने छात्रों को हृदयंगम करा सके। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसका ज्ञान छात्रों के किस काम का? अतएव उसकी अभिव्यक्ति (भाषा, स्वर, शैली आदि) प्रभावशाली, स्पष्ट और दुविधारहित होनी चाहिए। अच्छे शिक्षक समझाने की कला में माहिर या दक्ष होते हैं। पढ़ाने का अर्थ सिर्फ व्याख्यान देना नहीं होता। कोई व्यक्ति श्रेष्ठ अध्यापक तभी हो सकता है जब उसके व्याख्यान के ज़रिए विद्यार्थी विषय को भली-भांति समझ पाएं। यह धारणा कि अच्छा व्याख्याता अच्छा शिक्षक भी होता है महज़ इसलिए कायम है कि शिक्षण-विधियों में व्याख्यान विधि की भूमिका हावी रही है। जबकि वास्तविकता यह है कि सामूहिक चर्चा, सेमीनार, ट्यूटोरियल जैसी आधुनिक विधियां और दृश्य-श्रव्य उपकरणों का उपयोग शिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए अनिवार्य हैं।

बहुत हद तक माना जा सकता है कि शिक्षण का अर्थ समझाना है। अतः जो शिक्षक बिना दुरूह बने, सुगमता और स्पष्ट रूप से अपनी बात समझा देते हैं उन्हें श्रेष्ठ शिक्षक समझा जाता है। यह कहना बिल्कुल सही है कि ग्राह्य व्याख्या ही शिक्षण कला की हृदयस्थली है।

रोचकता

पढ़ाते समय शिक्षक को यह मनोवैज्ञानिक तथ्य सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि ज्ञान गरिष्ठ भोजन के समान होता है। शिक्षक उसको सुपाच्य एवं सुग्राह्य रूप में प्रस्तुत करे। छात्र के मन पर पड़ने वाले ज्ञान के भार को हल्का करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक पढ़ाते समय एक-दो बार मनोरजक बात कह कर अथवा अपनी बात

को मनोरंजक ढग से प्रस्तुत करके एक खुशनुमा माहौल बनाए, जिससे विद्यार्थियों की मांसपेशियों एवं स्नायुओं का खिचाव कम होता रहे।

वस्तुत: रोचकता अच्छे अध्यापक का एक ज़रूरी गुण है। नीरस, उबाऊ और अरुचिकर तरीके से पढ़ाने वाले अध्यापकों को छात्र, छात्राए पसंद नहीं करते। यह सच है कि हास्य अथवा रोचकता हमेशा शिक्षण का एक अंग नहीं हुआ करती लेकिन ऐसी एकाध खुराक भी न हो तो शिक्षा की ग्राह्यता काफी धीमी हो सकती है।

अत: प्रत्येक अध्यापक को शिक्षण प्रक्रिया के दौरान थोड़े बहुत हास–परिहास से रोचकता पैदा करने की आदत विकसित करनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे गिल्बर हाइट की पुस्तक 'दि आर्ट ऑफ टीचिंग' में कही गई बात सभी शिक्षकों के लिए स्मरणीय है कि विद्वत्ता के लिए शत-प्रतिशत त्रुटिहीनता होनी चाहिए लेकिन अध्यापन में शत-प्रतिशत् त्रुटिहीनता न हो तब भी उसे रुचिकर होना चाहिए।

प्रेरणा व उत्साहवर्द्धन

वे उत्साही शिक्षक श्रेष्ठ माने जाते हैं जो छात्रों को प्रेरणा देते हैं। इसलिए श्रेष्ठ शिक्षण के मूलभूत अवयवों में उत्साहित और प्रेरित करने की योग्यता एक महत्त्वपूर्ण अग है। जब तक अध्यापक में स्वयं उत्साह भावना पर्याप्त न होगी वह छात्रों का उत्साहवर्द्धन नहीं कर सकता। पढ़ाने का अर्थ सिर्फ सूचनाओं का हस्तान्तरण नहीं, कुछ हद तक इसका अर्थ शिक्षार्थी में अधिक से अधिक जानने की प्रेरणा पैदा करना है।

शिक्षक में स्वयं भी उन समस्त क्षमताओ का होना आवश्यक है, जिन्हें वह अपने छात्रों में देखना अथवा विकसित करना चाहता है। शिक्षक को स्वस्थ एवं प्रसन्न वदन व्यक्ति होना चाहिए। साथ ही उसके मन में अपने कार्य के प्रति उत्साह एव लगन होनी चाहिए। यदि शिक्षक प्रमादी होगा तो वह अपने छात्रों से कैसे आशा कर सकता है कि वे किसी भी काम मे प्रमाद न करें तथा सदैव स्फूर्तिपूर्ण बने रहें।

कुछ शिक्षको में छात्रो की निन्दा और उन्हे हतोत्साहित करने वाली बातें करने की आदत होती हैं। वे कहते रहते हैं कि छात्रो का स्तर बहुत निम्न है, वे कभी सीख नहीं सकते, वे बहुत मदमति हैं, आदि। इस प्रकार के कथन, चाहे सामान्य हो या छात्रों के किसी वर्ग विशेष के बारे मे हो, होते बहुत नुकसानदेह है। छात्रों को निकम्मा कहने और उन पर इलज़ाम लगाने के बजाय अध्यापक को तो उन्हे प्रेरित और प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिक्षणेतर गतिविधियों में सक्रियता

श्रेष्ठ शिक्षक के गुण जानने के लिए किए गए सर्वेक्षणों में एक और बात सामने आई है कि जो शिक्षक शिक्षणेतर गतिविधियों मे सक्रिय रूप से शामिल होते हैं वे उनकी अपेक्षा अधिक पसद किए जाते हैं जो स्वयं को केवल कक्षा तक ही सीमित रखते है। छात्रों के साथ घुलमिल जाने वाले शिक्षक अच्छे शिक्षक समझे जाते हैं। यह जरूर सच है कि कुछ अध्यापक ऐसे भी हैं जो बहुत अच्छे होते हुए भी अतिरिक्त गतिविधियो जैसे वाद-विवाद, खेलकूद और अन्य सांस्कृतिक क्रियाकलापों में रुचि नहीं दिखाते। ऐसे शिक्षकों को मात्र इन गतिविधियो में उनकी अरुचि के आधार पर कमतर नहीं माना जा सकता। आज के छात्रो के मन मे एक अच्छे अध्यापक की ऐसी ही छवि है कि उसे इस प्रकार के कार्यक्रमों मे रुचि लेनी चाहिए क्योंकि ये भी विद्यालय की ज़िंदगी का एक हिस्सा हैं। विद्यालय शिक्षण की दुकान नहीं, इसे तो व्यक्तित्व के विकास में सहायक गतिविधियों के साथ-साथ सामुदायिक सेवा का भी एक केन्द्र होना चाहिए।

मानवीय दृष्टिकोण

मानवीय दृष्टिकोण रखने वाले शिक्षक भी छात्रों की दृष्टि मे अच्छे शिक्षक समझे जाते हैं। और संवेदना का भाव एक अध्यापक के लिए बहुत मूल्यवान होता है। कठोर, पत्थर-दिल, निर्दयी अध्यापक न सिर्फ अलोकप्रिय बल्कि प्रभावशून्य भी होते हैं। दयालु होने का अर्थ यह नहीं है कि वे छात्रों के प्रति अनावश्यक पक्षधरता का भाव पाल लें।

बुनियादी मूल्यों से समझौता किए बिना भी मद शिक्षार्थी की सहायता के उद्देश्य से इस भावना का प्रकटन कई तरह से किया जा सकता है। जैसे उसके साथ अधीरता न बरतकर, ज्यादा क्रोध न करके और आर्थिक रूप से विपन्न पर योग्य छात्रों के लिए यदाकदा वित्तीय सहायता जुटा कर।

शिक्षक अपने प्रत्येक छात्र को अपने पुत्र समान समझे और उसी दृष्टि से उसके साथ व्यवहार करे। विश्वास कीजिए कि छात्र शिक्षक को पिता से भी अधिक माननीय मानने लगेंगे।

मधुर स्वभाव, सहिष्णु एवं अनुशासित

शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि कक्षा उसके नियत्रण मे रहे, अन्यथा अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न हो जाती है और शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य कटुता का वातावरण तैयार होने लगता है। इसके लिए एक अच्छे शिक्षक में विषय के सम्यक् ज्ञान के अतिरिक्त कुछ अन्य गुण भी होते हैं। वह समय से कक्षा मे पहुचता है और समय पूरा होने के पहले कक्षा को नहीं छोडता। वह कक्षा में इधर-उधर की बातें न करके केवल अपने विषय को गम्भीरतापूर्वक पढ़ाता है। प्रत्येक शंका का समाधान करने के लिए और छात्रों के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह तत्पर रहता है। यदि वह किसी प्रश्न का उत्तर तत्काल नहीं दे सकता है तो वह प्रश्नकर्ता को डांटे-झिड़के नहीं, अपनी सीमाओं को स्वीकार करके अगली बार बताने का वायदा कर दे और फिर उस वायदे को पूरा करे। छात्रों की प्रत्येक शैतानी पर शिक्षक को खीझ प्रकट नहीं करनी चाहिए। ऐसे अवसरों पर उसे चाहिए कि मनोवैज्ञानिक ढंग से सम्बन्धित छात्र को उसी समय अथवा कक्षा के बाद एकान्त में बुलाकर इस प्रकार की कार्यवाहियो का अहितकर पक्ष समझा दे। कहने का तात्पर्य यह है कि एक कुशल शिक्षक मधुर स्वभाव, सहनशील, अनुशासित एवं बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता होता है।

बाधक तत्व

अच्छे शिक्षक के उक्त गुणों के विपरीत लक्षणो से एक बुरे अध्यापक की पहचान भी हो सकती है। गुस्सैल, बद्मिजाज, अमानवीय, चालाक, पक्षपाती तथा फरेबी जैसे कुछ विशेषण छात्र अक्सर उन अध्यापकों के लिए प्रयोग करते हैं, जो उन्हें नापसद होते हैं। जो कक्षा लेने के मामले में अनियमित हैं, जिन्होंने आगे ज्ञान का विकास बन्द कर दिया है, जो बिना पूर्व तैयारी के कक्षा लेते हैं, उन्हे भी विद्यार्थी पसन्द नहीं करते। विद्यार्थियों के ऐसे विचार शिक्षकों को इस योग्य बनाने में कारगर हैं कि वे इन लक्षणो को त्यागें और ऐसे गुण विकसित करें जो उन्हें लोकप्रिय, सफल और प्रभावशाली शिक्षक बना सके।

सन् 1962 में अमेरिका में 'सुपीरियर टीचर' विषय पर एक सम्मेलन हुआ था जिसमें सफल और प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षक में निम्नलिखित योग्यताओं की आवश्यकता पर बल दिया गया :

प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षको को चाहिए कि-

- अपने विषय को जानें।
- विषय से संबंधित विषयों को जानें।
- नए ज्ञान से समायोजित हों।
- निर्दिष्ट उद्देश्यों तक पहुंचने के प्रक्रम को समझें।
- वैयक्तिक भिन्नता को पहचानें।
- अच्छे संचारक (communicator) हों।
- खोजपूर्ण मन विकसित करें।
- छात्रों के लिए उपलब्ध हों।
- शिक्षण-कार्य से प्रतिबद्ध हो।
- उत्साहपूर्ण हो।
- हास्य-विनोदपूर्ण हों।
- विनम्र हो।
- अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखने वाले हों।
- सुदृढ़ धारणा और विश्वास वाले हों।
- निष्कपट और ईमानदार हों।
- दूसरे की देखभाल करने वाले हो।
- दयावान हों।
- साहसी हो।
- आत्मसुरक्षा की भावना से युक्त हों।
- सृजनशील हों।
- बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न हों।
- प्रयत्न करने के लिए इच्छुक हों।

- अनुकूलनशील हों।
- ईश्वर में विश्वास करने वाले हो।

वास्तव मे योग्यताओं व क्षमताओ की इससे भी लम्बी सूची प्रस्तुत की.जा सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि जो योग्यता और गुण एक उत्तम शिक्षक में हो वही योग्यता और गुण दूसरे उत्तम शिक्षक मे भी हों।

कॉम्ब्स ने शिक्षक की योग्यता और सक्षमता के आधार पर प्रभावी शिक्षण को परिभाषित करने के प्रचलन की आलोचना की है। उनके अनुसार, ''योग्यता और सक्षमता के आधार पर सफल और प्रभावी शिक्षण की परिभाषा इसलिए की जाती है कि भावी शिक्षकों को उन योग्यताओं मे प्रशिक्षित किया जा सके।''

कॉम्ब्स के अनुसार एक अच्छा शिक्षक सबसे पहले एक व्यक्ति है। उसके पास योग्यताएं होती हैं, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसकी योग्यताए और क्षमताए दूसरों के समान ही हो। जिस प्रकार हम यह मानते हैं कि प्रत्येक छात्र एक अद्वितीय अथवा अनोखा व्यक्ति है उसी प्रकार प्रत्येक शिक्षक भी अपने आप में निराला एवं अद्वितीय होता है।

वस्तुत: प्रभावी एवं सफल शिक्षण के लिए गुणो, योग्यताओं व क्षमताओ की कोई एक सर्वमान्य सुनिश्चित रूपरेखा नहीं हो सकती, फिर भी सफल शिक्षक उक्त गुणो व योग्यताओ को ही अपनी सफलता का रहस्य समझते हैं।

शिक्षक का जीवन एक साधक का जीवन है। उसको एक आदर्श व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। उसके कार्य से सरल कोई कार्य नहीं है। साथ ही उसके कार्य से अधिक कठिन भी कोई कार्य नही है। शत-सहस्त्र बालक-बालिकाओ की नज़रों में अपने स्थान की रक्षा का भार लिए वह शिक्षण व्यवसाय मे प्रवेश करता है। अत: न्यूनाधिक रूप से शिक्षण व शिक्षक की सफलता के लिए उक्त गुण, योग्यताए व सक्षमताएं अपरिहार्य हैं। □□

विद्यालयों को देना है एक नया वातावरण

हरिश्चन्द्र व्यास

आर. ई. एस.
व्याख्याता
राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
बीकानेर–334001

विद्यालय को एक लघु समाज की संज्ञा दी गई है। इस समाज में रहकर छात्र अनेक चारित्रिक गुणों या अवगुणों को ग्रहण करते हैं। दूसरे शब्दों में छात्र का चारित्रिक विकास, मानसिक उन्नयन और संवेदनात्मक व शारीरिक संवर्द्धन इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यालय का वातावरण कैसा है। और यह वातावरण प्रभावित होता है छात्रों के बीच आपसी सम्बन्ध, छात्र और अध्यापक के बीच रिश्ते, अध्यापकों के निजी आचरण, विद्यालय के विभिन्न कार्यकलापों की गुणवत्ता तथा विद्यालय और समुदाय के बीच सम्पर्क से। प्रस्तुत लेख में लेखक ने अनेक उदाहरणों के द्वारा अत्यन्त सुन्दर शैली मे यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक समय में किस प्रकार विद्यालयों को एक स्वस्थ और नवीन वातावरण प्रदान किया जाए ताकि छात्रों का सर्वांगीण विकास संभव हो सके।

परिवार और विद्यालय में एक बुनियादी फर्क है : परिवार अपने आप में एक इकाई है जबकि विद्यालय कई-कई इकाइयो का एक संघटक स्थल है। परिवार में जिस सीमा और मात्रा तक प्रेम, आत्मीयता, वात्सल्य और लगाव मिल सकते हैं, उस मिकदार तक विद्यालय में इनका मिलना संभव नही है। फिर भी बच्चे के सामुदायिक जीवन की असली शुरूआत तो विद्यालय में ही होती है। सुसंगति और कुसगति के प्रभाव भी यहीं पर देखे जा सकते हैं। अच्छे खासे सस्कारित परिवारो के बच्चों को यदि ऐसे बच्चो की संगति मिले जो बीडी-सिगरेट पीते हों, झूठ बोलते हों, बार-बार झगड़ते हों, साथियो की स्लेट-पेंसिलें या किताबें चुराते हो तो लगातार ऐसे संसर्ग से क्या उन 'अच्छे' बच्चों पर बुरा प्रभाव नही पड़ेगा? ठीक इसके विपरीत यदि विद्यालय का वातावरण अच्छा हो, शिक्षक स्वयं अपने अच्छे आचरणों से बालको के जीवन को प्रभावित करने वाले हों, पठन-पाठन, खेल-कूद और सांस्कृतिक गतिविधियों का अच्छा समन्वय हो तो क्या 'बुराइयों' वाले परिवारों के बच्चों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ सकता? विद्यालय को चाहिए कि किताबी शिक्षा के साथ-साथ वह अपने बच्चों को एक नैतिक परिवेश दे। जब तक हमारी शिक्षण शालाए आचरण शालाए नहीं बनेंगी तब तक शिक्षा आधी-अधूरी और लगभग निरर्थक ही सिद्ध होगी।

ताज़गी चाट रही हैं हमारी शिक्षण शालाएं

चारों ओर बोझिलता की भरमार है। शरीर पर बस्ते का बोझ, मन पर ज्ञान के पिटारों और आंकड़ों का बोझ, खेल के समय में गृह-कार्य का बोझ, और मीठी नींद के सपनो पर प्रातः बहुत ही जल्दी तैयार होकर विद्यालय जाने की मन:स्थिति का बोझ। यानी बस बोझ ही बोझ। शिक्षा को अगर बोझ ही समझ लिया जाए तो नैतिक मूल्यों को अपनाने के लिए समय और ललक कैसे मिलेंगे? यही तो समस्या है हमारी आज की शिक्षा के सामने।

बचपन से ही बच्चा संसार को जानना चाहता है–उसमें जिज्ञासा है, रोमांच है और कौतूहल भी है। न ऊर्जा की कमी है और न ललक की। पर ऐसा क्यों होता है कि विद्यालयों मे प्रवेश के बाद धीरे-धीरे उनके व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। कुछ एक अपवादों को छोड़ दें

तो समय के साथ-साथ ये ही बच्चे भीरू, त्रस्त, कातर, टालमटोल करने वाले, हारे-थके और आत्मरक्षा में लीन बन जाते हैं। विद्यालय के औपचारिक सम्बन्ध, कठोर अनुशासन, यंत्रणाएं, दण्ड के भय, साथी बच्चों द्वारा उपहास आदि सब मिलकर उसके व्यक्तित्व के साथ खिलवाड़ करने लगते है। उसे लगने लगता है मानो उसकी नियति केवल किताबी कीडा बनने की है। वह आत्म-केन्द्रित होने लगता है। ऐसा क्यो होता है? हमारे विद्यालय बच्चों को सम्बन्धो की ऊष्मा क्यों नहीं दे पाते? संसार को समझने में उनकी मदद क्यो नहीं करते? उन पर विश्वास क्यो नहीं करते? विषयों का वही उबाऊ अध्ययन, होम वर्क की विवशता यानी स्कूल का रूटीन कार्य देखकर लगता है कि दशकों से हम वही झुनझुना बजाते आ रहे हैं। आजादी के बाद के 45 वर्षों मे तो विशेषकर यही सब कुछ देखने को मिला है। जो पीढ़ियां सामने आ रही हैं वे इस बात की साक्षी हैं कि हमारी शिक्षा सार्थक नहीं हो पाई है। उसमें एक ऐसी कमी है जो खटकती है और वह है नैतिक शिक्षा का अभाव।

विद्यालय ये बातें शायद इसलिए करते है ताकि बच्चो को शुरू से ही यह अहसास हो जाए कि संसार कोई सुहाना सपना नही है। उसका यथार्थ, खुरदरा है, कठोर है, निर्मम है। उन विद्यालयो का संभवतः यही मत होगा कि बच्चों को ऐसे ही संसार के लिए तैयार करना हो तो उनका ताडनाओ, प्रताडनाओं, अनुशासन की कठोरताओ और परेशानियो से साक्षात्कार करवाया जाना चाहिए। किताबी संस्कार और रूटीन के मायाजाल मे जो मानवीय मूल्य घायल होते जा रहे हैं वे हैं–प्रेम, आत्मीयता, सदाशयता, सहकारिता, साहस, संवेदना, आत्म विस्तार, स्वाभिमान, सम्बन्धों की ऊष्मा, मैत्री, विश्वास भावना आदि। यह मानव मूल्यों से विहीन शिक्षा आखिर हमे कहा ले जाएगी?

देना होगा एक नया वातावरण

विद्यालयों को संस्कारित होना सीखना होगा। बच्चों के लिए आदर्श हैं उनके अध्यापक। उन्हें केवल इतना करना है कि वे बच्चों को जैसा बनाना चाहते हैं, उनमे जिन गुणों का विकास करना चाहते हैं वैसा स्वयं बनकर या करके दिखाएं। प्रवचन और आचरण के बीच दूरी न रखें। बच्चों से श्रमदान करवाना हो और स्वयं पैंट की जेबों मे हाथ डालकर खड़े रहे तथा आदेश ही देते रहें तो श्रमदान मे बच्चों की आस्था कभी पैदा नहीं होगी। वे उस कार्य को एक बोझ, एक लाचारी, एक पीड़ा समझ कर करेंगे। लेकिन यदि अध्यापक भी बच्चों के साथ श्रमदान में जुट जाएं तो फिर देखे कि क्या चमत्कार होता है। सारा वातावरण खिल उठता है उल्लास, उमंग, स्फूर्ति, स्पर्धा और प्रसन्नता की लहर छा जाती है। कहने को तो यह श्रमदान होगा लेकिन इसके माध्यम से कई नैतिक मूल्य एक साथ और स्वयमेव ग्रहण होते चले जाएगे। इनमें श्रम के प्रति निष्ठा, मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति, मैत्री, प्रेम, समाज-सेवा, स्वस्थ स्पर्द्धा, अध्यापक के प्रति आदर भाव व आत्मीयता आदि का विकास होता है। किताबों को रट लेने से या घोट-घोट कर पी लेने से भी जो संस्कार नहीं आ पाते वे सहज ही आने लगते हैं। श्रमदान भी नैतिक शिक्षा का एक व्यावहारिक पाठ है। ऐसे और भी कई व्यावहारिक प्रयोग हैं जिनसे नैतिक मूल्य पनपते रहते है।

स्कूल के आयोजनों मे बच्चों को भागीदार बनाने से उनमे आत्मविश्वास की वृद्धि होती हैऔर वे उस कार्यक्रम को अपना समझने लगते है। बात तो छोटी-सी है पर इसमें भी कुछ मानवीय मूल्य अवश्य हैं जैसे अपने पर विश्वास, क्षमता का भरपूर उपयोग, आत्मीयता और लगाव, परस्पर प्रेमभाव का विकास आदि। स्वय की भागीदारी के काम न तो रूखे लगते हैं और न संवेदनहीन। यदि काम अपने मन के हुए तो लिखने-पढ़ने, खेलने, तैरने, बागवानी करने, गाने और चित्र बनाने जैसे अनेक कामों में आनन्द आता रहेगा। यदि इन सब कामों के साथ स्वतः ही उभरने वाले नैतिक व मानवीय मूल्यो की परख की जाए तो शायद हम चमत्कृत हो उठेंगे। जहा कल्पना की छूट हो, उमंगों पर अकुश नहीं हो, बंधे-बंधाये रूटीनों का जजाल न हो वहां स्वतंत्रता, स्वायत्तता और श्रमनिष्ठा जैसे मूल्य अपने आप उभरते हैं। बच्चों की स्वायत्तता का सम्मान करना उनको 'दब्बू' बनाने की तुलना में कहीं ज्यादा फलदायक होगा। कविता पाठ, गीत गायन, सवाद प्रस्तुति, अभिनय आदि बीसियो ऐसे काम है जिनके माध्यम से व्यक्तित्व का विकास होता है।

विद्यालय की प्रार्थना भी अपने आप में नैतिक शिक्षा का एक अवसर है। आंखें बद करके भावो को भीतर उतारना, थोड़ी देर के लिए आत्म साक्षात्कार करना, दो-तीन मिनट शांत रहकर आत्मिक शाति की खोज करना तथा प्रार्थना के शब्दों पर मनन करना ऐसे कार्य हैं जिनके माध्यम से आस्था, विनय, शाति, सद्भाव, प्रेम, उदारता, सदाशयता, सदाचार, गुरुओं के प्रति आदर तथा सत्य जैसे गुण उभरते रहते हैं। हां, प्रार्थना का वातावरण प्रार्थना जैसा ही होना चाहिए। अध्यापक भी आखें बन्द करके हाथ जोडकर ठीक वैसा ही कार्य करे जैसा कि बच्चों से करवाना चाहते हैं।

अवसर तो अनेक हैं

अच्छे खेल खेले जाएं तो वे हमे सजगता, प्रफुल्लता और हंसने-हंसाने के अवसर देते हैं। खेल की भावना जहा टूटी वहीं हार जाने पर लड़ने-झगड़ने, गाली-गलौच करने तथा प्रतिशोध लेने की बातें सामने आ जाती हैं। साहचर्य का सारा आनन्द किरकिरा हो जाता है। बस यहीं पर अध्यापक की सजगता की जरूरत है। वे खेल को खेल बनाएं न कि खेल चौपट करने का साधन। बगीचे में काम करते हुए बच्चे, शिविरों में साथ रहते हुए बच्चे, रंगकर्म में प्रस्तुति देते हुए बच्चे, ऐसे कई नैतिक गुण सीख सकते हैं जिन्हें किताबों के माध्यम से सीखना कठिन होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि किताबे बेकार हैं। किताबों में सामग्री का चयन और पढ़ाने का ढंग दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। किताबें एकान्त की सच्ची मित्र हैं, अध्ययन का आधार है और यदि पाठ्य-सामग्री की सजीव प्रस्तुति हो रही हो तो किताबे चमत्कारिक प्रभाव पैदा करती हैं।

.... और यह लो तुम्हारी शुरूआत

चरित्र-निर्माण कोई रिले रेस नहीं है जहां एक खिलाड़ी थोडी दूर दौड़कर दूसरे खिलाड़ी को मशाल थमा देता है और फिर वह खिलाड़ी अपना चक्कर पूरा करके तीसरे खिलाड़ी को मशाल सौंप देता है। चरित्र-निर्माण कोई ऐसा काम नहीं है जहां कोई कहे-लो हमारा काम तो पूरा हुआ, अब तुम अपना काम शुरू कर दो। उसके लिए हमें बच्चों को तैयार करना पडता है-हमारे साथ-साथ और हमारे सामने होती है वह तैयारी। कोई पीढ़ी अचानक यह नहीं कर सकती कि हमें जो कुछ करना था, कर लिया, अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। पीढ़ी को तैयार करना होता है-व्यवहार द्वारा, आचरण द्वारा, अच्छी किताबों की उपलब्धि के द्वारा और अनुभव के हस्तांतरण द्वारा। पीढ़ी पर विश्वास करें, उसे ज़िम्मेदारी देकर देखे, वह ठोकर न खा जाए, इस पर नज़र रखें लेकिन बार-बार के अनावश्यक निर्देशो और उपदेशों से उसे व्यथित नहीं करें तो बहुत कुछ हासिल हो सकता है। उसे समस्याओं से जूझने दे, स्वयं समाधान खोजने दे लेकिन अटक जाए तो मार्गदर्शन भी करें-ये ही कुछ ऐसे गुर है जो चरित्र-निर्माण एवं नैतिक-मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकते है।

पुस्तकें नैतिकता का संचरण कर सकती है बशर्ते उन्हे जीवन्त बनाया जाए। महापुरुषों की जीवनियां, आविष्कारो की पृष्ठभूमि की कठिनाइयां और उन पर विजय की बातें, शिक्षण के समय दिए जाने वाले चरित्रवान व्यक्तियों के उदाहरण, अध्यापकों के आचरण और सहायक प्रवृत्तियो के संचालन के साथ-साथ साम्प्रदायिक सद्भाव के समारोह, प्रार्थना, कार्यानुभव, खेल-कूद, स्नेह-सम्मेलन, बाल सभा, समाज सेवा, बागवानी आदि के माध्यम से एकता, सहयोग, बन्धुत्व, ईमानदारी, श्रमनिष्ठा, आत्मीयता, उत्तरदायित्व जैसे सामाजिक मूल्य विकसित हो सकते हैं और साथ ही साथ घमंड, मिथ्याचार, लोभ, द्वेष, आदि पर अंकुश भी लगा सकते हैं।

समुदाय का स्वरूप

बच्चो के सामने समाज का जो स्वरूप है वह अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता। ज़रा अखबार उठा कर तो देखिए-अच्छे-अच्छे समाचार कहीं कोने में दुबक जाते हैं और बड़े-बडे शीर्षको से छपने वाले समाचार सड़ांध का सार्वजनिक प्रदर्शन करते हुए से लगते हैं। आज के अखबार

जो समाचार उगल रहे हैं उन पर ज़रा नज़र घुमा कर तो देखें–क्या हो रहा है देश में। कहीं आगज़नी और तोड़फोड़ है। तो कहीं हिंसा, हत्याए और गोली काण्ड, कहीं गबन, घोटाले और भ्रष्टाचार हैं तो कहीं अपहरण और बलात्कार। कहीं गुटबंदी, दलबदल और चरित्रहनन है तो कहीं बम विस्फोट, सार्वजनिक सम्पत्ति की लूटपाट और विध्वंस। कहीं बूथ कैप्चरिंग और चुनावी गालियां हैं तो कहीं आतंकवाद और उग्रवाद का ताण्डव। कहीं देशद्रोह की मिसालें हैं तो कहीं दलितों पर अत्याचार के उदाहरण। ये सब मिलकर बच्चों के मानस पर क्या प्रभाव छोडते हैं, इसकी तो सहज मे ही कल्पना की जा सकती है।

संचार माध्यमों की भूमिका

उपग्रहों की शृंखलाओं से समूचा संसार एक छोटे से कमरे में सिमट गया है। 35 एम. एम. या 18 एम. एम. के स्क्रीन पर संसार को देखा–परखा जा सकता है। अब तो दूरदर्शन या अन्य टी.वी. अभिकरणों के अनेक चैनल हो गए हैं । मनोरंजन चैनल, संगीत चैनल, ज्ञानवर्द्धक चैनल, बिज़नैस चैनल, खेल चैनल आदि तो हैं ही प्राइम स्पोर्ट्स, म्यूज़िक टेलीविजन, बी.बी.सी., ए.टी एन., ज़ी.टी.वी., यू.जी.सी.कंट्रीवाइज क्लास रूम के साथ–साथ पाकिस्तान, श्रीलंका एवं अन्य देशों के दूरदर्शन की सेवाएं भी उपलब्ध हैं। देखना यह है कि कुल मिलाकर हमे मिलता क्या है : विज्ञापनों में नारी देह का प्रदर्शन, फिल्मी गीतो के साथ यौन भावनाएं उभारने वाले अधनगे, भौंडे और अश्लीलता की सीमा तक पहुंचे हुए दृश्यों का फिल्मांकन, गर्भ को रोकने वाले आधुनिकतम उपायों का बार–बार प्रदर्शन, समाचारो में देश–विदेश मे होने वाले घोटालों, भ्रष्टाचारो बलात्कारों, आगज़नियों, हत्याकांडों आदि का दिग्दर्शन....। एक परिवार साथ–साथ बैठकर उन फिल्मी दृश्यों और विज्ञापनों को देख भी नहीं सकता। नई पीढ़ी पर तो फिर प्रभाव पड़ना ही है। दादा और पिता, पिता और पुत्र, मां और बेटी के बीच के आदर व स्नेह के रिश्ते लगातार सूखते जा रहे हैं। समाचार पत्र उन घटनाओं को अधिक महत्त्व देकर प्रकाशित करते हैं जिनमें उपर्युक्त समाचार हों। एक पठार–सा आ गया है राष्ट्रीय चेतना में। पर आशा की किरण आज भी मौजूद है, वह पूरी तरह लुप्त नहीं हुई।

आशा की दीप्त किरणें

समाज चाहे किसी भी गति से चल रहा हो, आज भी अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं जो हमारे नैतिक पक्ष को पुष्ट करते हैं। अभी कुछ समय पहले महाराष्ट्र में लाटूर एव अन्य स्थानों पर ज़बरदस्त भूकम्प आए। सारे राष्ट्र का मानस जैसे किसी ने झकझोर दिया हो–कुछ ऐसा ही प्रभाव हुआ सबके मानस पर। देश भर के लोग एकमन से इस प्राकृतिक विभीषिका से जूझने लग गए। युवकों ने रक्तदान किया, लोगों ने करोड़ों रुपयों की राशियां भेजीं, कम्बलों, खाद्य सामग्रियों और दवाइयो से ट्रक के ट्रक भर कर भेजे गए, स्वयंसेवकों ने और चिकित्सक दलों ने रात–दिन सेवा कार्य में भाग लिया, फौजी जवानो ने अनेक कीमती जानों को बचाया... .. नैतिक शिक्षा की इससे जबरदस्त मिसाल और क्या होगी? इसमे वे सब भाव हैं जो सामाजिक नैतिकता को उच्चता प्रदान करते हैं। परोपकार, जनसेवा, त्याग, संवेदना, दया, दानवृत्ति, सहयोग, साहस, आत्मविश्वास, राष्ट्रीयता आदि। क्या कारण है कि हम मदर टेरेसा का नाम सुनते ही नत मस्तक हो जाते हैं? बाबा आमटे के प्रयासों की सराहना करते हैं और सेवा भावी संस्थाओं के काम से अभिभूत हो जाते हैं? आज भी ऐसे लोग हैं जो हिमालय की चोटी पर चढ़ते हैं, अनेक प्रकार के रोमांचक कार्य करते हैं, नए–नए आविष्कार करते हैं, औद्योगिक क्राति में लगे हुए हैं, सेवा के उत्कृष्टतम उदाहरण बने हुए हैं और खेलो मे देश की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं। क्या हम ऐसे लोगों से कुछ भी नहीं सीख सकते? भारत के अनपढ़ किसान ने हरित क्रान्ति करके रख दी, भारत के जवानो ने युद्ध भूमि में अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया, वैज्ञानिको ने उपग्रहो से संचार क्रान्ति कर दी, साक्षरता की अलख जगाने वालों ने अनेक ज़िलों में अक्षरों का आलोक फैला दिया। गत 25–30 वर्षों की अवधि में हमारे देश ने राष्ट्रीय एकता का जो जलवा दिखाया वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में उल्लिखित हो गया है। एक ओर हमारी सेना पाकिस्तान

के आक्रमणो का मुंह तोड जवाब दे रही थी वहीं दूसरी ओर समूचा राष्ट्र देश प्रेम की मिसाले प्रस्तुत कर रहा था। युवको ने रक्तदान किया, महिलाओं ने अपने मंगलसूत्र तक उतार कर दे दिए, गरीबो तक ने अपनी सचित राशि दी और राष्ट्रीय रक्षाकोष मे अपना योगदान दिया। देश भर में उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक राष्ट्रीयता का जो खुमार देखने को मिला उसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी और जैन आदि सभी सम्मिलित थे। प्रभात फेरियां, रैलियों व सभाओ में सम्बोधन आदि सभी इस अलौकिक एकता का परिचय दे रहे थे। पाकिस्तान से टकराने में न अब्दुल हमीद पीछे था और न कोई अन्य हिन्दू या सिख सैनिक ही कोताई कर रहा था। इस घटनाक्रम मे नैतिक मूल्य अपने आप उभर रहे थे। इतिहास इन दृष्टान्तो पर सदैव गर्व करता रहेगा।

सवाल सम्प्रेषण का है

समाज यदि नैतिक सीख लेना चाहे तो ये दृष्टान्त कोई कम नहीं हैं। अब यह हम पर है कि हम बालकों के सामने कैसे आदर्श रखना चाहेगे। हमारे समाचार-पत्रों, दूरदर्शन और आकाशवाणी का दायित्व क्या इतना सीमित है कि इन तथ्यो को उजागर करने में वे असफल रह जाते है? हमारे अभिभावक, हमारे शिक्षक, हमारे नेता क्या इतने असहाय हैं कि उनके पास नई पीढ़ी को देने के लिए कोई नैतिक उदाहरण नहीं? आज सवाल दृष्टान्तों की कमी का नहीं, सम्प्रेषण का है। आज भी अनेक ऐसे उदाहरण मिलेगे-प्राय: प्रतिदिन मिल सकते हैं-जो हमें सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा, कर्मठता, देश प्रेम, श्रम, साधना, सहकारिता, सच्चरित्रता, सदाचार, परोपकार, दया, क्षमा, विनय, शालीनता आदि गुणों की ओर उन्मुख करते है।

समुदाय तो नैतिक शिक्षा का एक ज़बरदस्त आधार बन सकता है। दूसरे अनैतिक हैं इसलिए हम भी अनैतिक हो जाएं, ऐसा सोचना कहां तक सही है। हत्या करने वाले फासी पर लटकते हैं, दूसरे तो नहीं लटकते। बगीचा है तो कांटे भी होंगे और खेत है तो खरपतवार भी होंगे। ज़रूरत इस बात की है कि हम सही चुनाव करना सीखे। इसके लिए अपनी दृष्टि को प्रशिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, अपने मानस को शुद्ध रखना ज़रूरी है और इसीलिए समाज मे नैतिक शिक्षा की महती आवश्यकता है। पीढ़ी का निर्माण करना है तो पीढ़ी को संस्कारित करने की योग्यता भी हममें होनी चाहिए। दिशाए ये सवाल सभी बुज़ुर्गों से कर रहीं है कि क्या आप नई पीढ़ी को सही दिशा में प्रेरित करने जैसा कोई कार्य कर रहे हैं? इस सवाल पर आपको, हमको और उनको-सबको सोचना ही होगा। सोचना भी क्यों, इसका जवाब भी देना होगा। आज नहीं तो कल। आप और हम इससे बच नहीं सकते। □□

उच्च शिक्षा का निजीकरण

देवेन्द्र सिंह

यू. जी. सी. फैलो,
23 न्यू पी. जी. छात्रावास
(शिक्षा संकाय)
का० हि० वि०, वाराणसी

उच्च शिक्षा का निजीकरण समसामयिक परिप्रेक्ष्य में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उभरा है। क्या यह निजीकरण वांछनीय है? इस प्रकार के निजीकरण का शिक्षा तथा समाज पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? निजीकरण के परिणामस्वरूप समस्त शिक्षा प्रणाली पर किस प्रकार के दुष्प्रभाव की आशंकाएं हैं, प्रस्तुत लेख में लेखक ने ऐसे ही कतिपय प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने की चेष्टा की है। लेखक के अनुसार इस संदर्भ में कदाचित एक सन्तुलित व समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

शिक्षा का उद्देश्य समाज में भौतिक, सास्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवहार में सामजस्य एव समन्वय स्थापित कर व्यक्ति को चरित्रवान, श्रम साध्य व स्वावलम्बी बनाना है। किन्तु प्रचलित शिक्षा प्रणाली में मैकाले की अंग्रेज़ी राज की औपनिवेशिक परम्परा का ही समावेश परिलक्षित होता है। उपभोक्ता उन्मुख शिक्षा प्रणाली के द्वारा, जिसके मानक बाज़ार और यांत्रिक मूल्य हैं, भारतीय दर्शन में निहित नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिमानों का अवमूल्यन हो रहा है। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण शैक्षिक माहौल पर नकारात्मक प्रभाव के साथ आ रहे असंतुलन को नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता है।

आज पूरे विश्व में आर्थिक सुधार की गति जितनी तीव्र है उच्च शिक्षा संबधी सुधारों की परिधि मे निजीकरण को भी उतनी ही शक्ति प्राप्त हो चुकी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी शिक्षा के उच्च स्तर पर दान प्राप्त करने और शुल्क बढ़ाने का आह्वान करके निजीकरण को पहले से अधिक भूमिका सौंपी। उच्च शिक्षा में निजीकरण का प्रयास विभिन्न रूपों मे किया जा रहा है।

निजीकरण

पूर्ण निजीकरण वाली शिक्षा प्रणाली का आशय एक ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जिसके अन्तर्गत–

- सभी औपचारिक व गैर–औपचारिक शिक्षा सस्थाओं पर निजी उद्यमियों का स्वामित्व होता है।
- हर प्रकार की और प्रत्येक स्तर की शिक्षा सस्थाओं की व्यवस्था और प्रबन्ध निजी व्यवस्थापकों के हाथ मे होता है।
- शिक्षा सस्थाओं की वित्तीय जरूरतें निजी स्रोतो व साधनो से पूरी की जाती है।
- सकल राष्ट्रीय नामांकन निजी संस्थाओ में नामाकित विद्यार्थियो के योग के बराबर होता है।
- सरकार तथा उसके अभिकर्ताओं को शैक्षिक संस्थाओ के नियमन और नियत्रण का किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं होता है।

इस प्रकार **पूर्ण निजीकरण वाली शिक्षा व्यवस्था** एक कल्पना भर या मिथक हो सकती है। भारत जैसे **विकासशील देश में इसके व्यावहारिक स्वरूप की संभावना लगभग शून्य है।** (श्री प्रकाश 1994)

उपर्युक्त मे से यदि एक भी घटक अनुपस्थित हो तो उस व्यवस्था को पूर्ण निजीकरण वाली व्यवस्था नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार इनमे से किसी एक घटक की पूर्ण अथवा अंशत: उपस्थिति सार्वजनिक प्रणाली को निजी शिक्षा प्रणाली की ओर ढकेलने के लिए पर्याप्त होगी। व्यवहार

मे शिक्षा के निजीकरण का लक्ष्य या तो अतिरिक्त वित्तीय साधन जुटाना होता है अथवा राजकीय नियमन या नियंत्रण से निजी सस्थाओं को मुक्त करना होता है। पूरे विश्व में जापान और बेल्जियम एकमात्र अपवाद है जहां निजी विश्वविद्यालय बहुमत में हैं। उसके बाद अमेरिका और नीदरलैंड आते हैं जहां ये 20% से अधिक है।

वर्तमान परिदृश्य

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जितना विरोधाभास इस समय हमारे देश में है उतना शायद ही अन्यत्र हो। भारत में शिक्षा पर किया जाने वाला 50% खर्च उच्च शिक्षण संस्थाओं मे पढ़ने वाले महज् 10% लोगों में चला जाता है और बाकी 50% हिस्सा 90% लोगों के हिस्से मे आता है। यूनिसेफ के अनुसार–भारत मे जितनी लागत से 60–70 बच्चों को प्राथमिक शिक्षा दी जा सकती है उतनी लागत से यहा एक यूनिवर्सिटी छात्र तैयार होता है। स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा की कीमत पर उच्च शिक्षा का प्रसार हो रहा है।

आज भारत में 200 से अधिक विश्वविद्यालय हैं जिनमे 50 लाख छात्र नामांकन एवं 2 86 लाख शिक्षक कार्यरत हैं। उच्च शिक्षा में शिक्षक छात्र अनुपात 1 : 17–18 है। जबकि पुनैया समिति ने आदर्श शिक्षक छात्र अनुपात 1 : 12 माना है। उच्च शिक्षा पर कुल व्यय का 2 से 3% केवल ट्यूशन शुल्क से पूरा होता है। भारत में महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय शुल्क विश्व मे सबसे कम है। इन सबके बावजूद उच्च शिक्षा, शिक्षा की माग पूरी करने में असफल है। हमारे देश में भारतीय जनसंख्या का मात्र 2.5% महाविद्यालयी एव विश्वविद्यालयी शिक्षा ग्रहण कर रहे है। अमेरिका एव कनाडा में 66% एवं ओ.इ.सी डी. देशो मे 47% जनसंख्या उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही है। आज जहा अमेरिका एवं कनाडा जी.डी.पी. का क्रमश: 6.5% एव 7.2% शिक्षा पर व्यय कर रहे हैं वहीं भारत मात्र 3.5% खर्च कर रहा है। यह आश्चर्य है कि डेनमार्क (7.9%), जिम्बाबवे (8.5%) और अल्जीरिया (9.8%) जैसे छोटे राष्ट्र शिक्षा के संदर्भ में जागरूक हैं (गर्ग 1995)। यह बात और है कि भारत भी नौंवी पंचवर्षीय योजना से सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 6% शिक्षा पर व्यय करने के लिए वचनबद्ध है। वैसे सकल राष्ट्रीय उत्पादन का 6% शिक्षा पर व्यय करने के लिए कोठारी आयोग (1964–66) ने अपनी रिपोर्ट में काफी पहले ही अनुशसा की थी अर्थात 25000 करोड़ रुपये अतिरिक्त वार्षिक व्यय। आज अधिकाश विश्वविद्यालय घाटे मे चल रहे हैं। करोडों लोगों को शिक्षित करना बिना निजी क्षेत्र के सहयोग के असभव है। अब प्रश्न यह आता है कि निजी क्षेत्र उच्च शिक्षा के किस क्षेत्र मे निवेश करे। आठवीं पचवर्षीय योजना में इलेक्ट्रानिक विभाग मे वर्ष 1995 तक इजीनियरिंग सस्थान में उपलब्धता के आधार पर 86000 प्रोफेशनलो की कमी होगी। वर्ष 1995 तक एम. टेक डिग्रीधारियों की प्रक्षेपित आवश्यकता 14500 है, जबकि उपलब्धता केवल 2500 है। बी टेक स्तर पर आवश्यकता 24000 की है जबकि उपलब्धता 7000 है। निजी निवेशक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तत्काल निवेश करना नहीं चाहते क्योकि शिक्षा मे तत्कालीन लाभ नहीं प्राप्त होता। इसमे दीर्घकालीन निवेश की आवश्यकता है। लेकिन उच्च शिक्षा को अन्य व्यवसायों के समान नहीं देखा जा सकता है। उच्च शिक्षा में नए क्षेत्रो की खोज की आवश्यकता है। औद्योगिक क्षेत्र के लिए भविष्य में पर्यटन, संचार, कम्प्यूटर, पर्यावरण विज्ञान, फैशन डिजाइन इत्यादि में विकास की अत्यधिक सभावनाए है। इस प्रकार उच्च शिक्षा का निजीकरण एक चुनौती है। निजीकरण से नि:संदेह कुशलता मे वृद्धि होगी। प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति बढ़ेगी। कार्य सस्कृति विकसित होगी लेकिन शैक्षिक पारिस्थितिकी (एडूको इकोलाजी) बिगडेगी। इसी प्रकार इस प्रश्न का भी कोई उत्तर नहीं है कि समाज मे व्याप्त निरक्षरता, अशिक्षा एवं बेरोज़गारी का क्या होगा। इस प्रकार शिक्षा जैसा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र उपेक्षित हो जायेगा। प्रो० ए.के.सेन ने **हाऊ इज़ इंडिया डूइंग** में भारत में व्याप्त निरक्षरता, अशिक्षा, निर्धनता एव स्त्रियों के सामाजिक पिछड़ेपन आदि विषयों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए स्पष्ट लिखा है कि सामाजिक सेवाओं के प्रति प्रशासन का दृष्टिकोण प्रगतिशील नहीं रहा है।

स्वतंत्रता के समय शिक्षा का 68% खर्च सरकार वहन करती थी, 20% छात्रों से फीस द्वारा और 20% दान के द्वारा आता था। विशेष तौर से उच्च शिक्षा में सरकार का हिस्सा 49%, छात्र का हिस्सा 37%, धर्मदान आदि 14% था। लेकिन उस समय उच्च शिक्षा, छात्रों की संख्या बहुत

कम थी तथा अधिकतम छात्र सम्पन्न परिवारो से आते थे। लेकिन अगले चार दशकों में उच्च शिक्षा का काफी विस्तार हुआ है। वर्ष 1980-1981 तक आते-आते सरकार का हिस्सा समस्त शिक्षा पर 85%, छात्रो द्वारा दिया गया शुल्क 12% और दान इत्यादि मात्र 3% रह गए। उच्च शिक्षा में सरकार का हिस्सा 72%, छात्रो का हिस्सा 17% तथा अन्य स्रोतो से 11% रह गए। फिर 1990 के दशक मे भी यही प्रवृत्ति जारी रही। इधर उदार आर्थिक नीतियों के चलते सरकार ने उच्च शिक्षा से अपना हाथ खीचना प्रारम्भ कर दिया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को दी जाने वाली राशि 1990-91 के स्तर पर सीमित कर दी गई। विश्वविद्यालयों को स्वय धन जुटाने के निर्देश दिए जाने लगे। सितम्बर 1992 मे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कर्नाटक सरकार को एक मुकदमे के सिलसिले मे 50% छात्रों से सस्थान संचालन का खर्च वसूलने का निर्णय दिया गया। इससे निजी संस्थानों में 50% सीटे अधिक धन दे सकने वालो के लिए वैध रूप से आरक्षित हो गई, लेकिन सम्पूर्ण सस्थान का संचालन व्यय भी इन छात्रों से वसूला जाने लगा।

आज पर्याप्त सख्या में छात्र निजी एव पब्लिक स्कूलो मे ऊची फीस देकर स्कूली शिक्षा प्राप्त कर रहे है। तब क्यों नहीं उनसे उच्च शिक्षा के स्तर पर भी अधिक शुल्क वसूल किया जाए। कुछ विश्वविद्यालयो में शिक्षण शुल्क को न छेड़ते हुए परीक्षा शुल्क एव अन्य शुल्क बढ़ा दिए गए परन्तु यह भी समस्या आने लगी कि छात्रो का एक बड़ा वर्ग मध्यम व निम्न वर्ग से आता है। यदि शुल्क एक सीमा से आगे बढे तो छात्रों का एक बड़ा भाग (लगभग 2/3 से 1/3 के मध्य) उच्च शिक्षा से बाहर हो जाएगा।

शिक्षा के बल पर ही निजी व्यवसाय करने वाले डाक्टरो, वकीलो, टेक्नीशियनो से भी जो बाज़ार दर पर अपनी सेवाए बेचते हैं शिक्षा उपकर लिया जाना चाहिए। प्रतिभा पलायन को रोकने या उससे होने वाले अपव्यय को रोकने के लिए विदेशो में कार्य करने के लिए जाने वालो से भी शैक्षिक उपकर वसूल किया जाना चाहिए। शैक्षिक उपकर का यह विचार बाज़ार के सिद्धान्त पर आधारित है। जहा केन्द्र सरकार अपने आर्थिक अनुदान मे कोई भी वृद्धि किए बिना इस बात पर ज़ोर देती है कि उच्च शिक्षा के संस्थानो को अपने आर्थिक स्रोत स्वय विकसित करने चाहिए, वहा यदि सरकार का अनुदान न बढ़ा और अपने आर्थिक स्रोत विकसित न हुए तो भविष्य में उच्च शिक्षा का परिदृश्य आशंकाओ, रिक्तता, दिशाहीनता और अराजकता का हो जाएगा। पुनैया समिति की एक महत्त्वपूर्ण अनुशसा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की चरमराती संसाधन व्यवस्था की ओर इंगित करती है। समिति बल देकर कहती है कि उच्च शिक्षा के लिए राज्य को प्रमुख ससाधन के रूप में बनें रहना चाहिए और आने वाले कल के लिए इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करना चाहिए।

निजीकरण के दोष

- ☐ उच्च शिक्षा के निजीकरण के परिणामस्वरूप निजी प्रबन्ध और वैयक्तिक सीमाओ के अधिकार के दुरुपयोग के कारण अनेक प्रकार से छात्र एवं शिक्षकों का सामाजिक, आर्थिक एव शैक्षिक शोषण होगा। एक ओर तो शिक्षा राज्य की ज़िम्मेदारी है दूसरी ओर प्रभावशाली एव भ्रष्ट लोगों द्वारा शिक्षण संस्थाओं का शोषण एवं दोहन करने की सम्भावनाओं से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।
- ☐ निजीकरण के परिणामस्वरूप शिक्षक वर्ग का हर स्तर पर शोषण होगा। निजी क्षेत्र के महाविद्यालयो में शिक्षकों की नियुक्ति कम वेतनमानो पर की जाती है जो यू. जी. सी. द्वारा निर्धारित वेतनमान से काफी कम होता है। अधिकांश अध्यापक या तो निर्धारित अर्हता को पूरी नही करते या जो योग्य होते भी है वे शोषण के कारण स्फूर्तिहीन एव स्पन्दनविहीन हो जाते है। दूसरी तरफ अध्यापको तथा अभिभावकों के आर्थिक शोषण के लिए प्रबन्धक और भी अनेक तरीके इस्तेमाल मे लाते है। महाविद्यालय परिसर में ही ये अध्यापकों को निजी ट्यूशन देकर कम वेतन की भरपाई करने का अवसर भी देते हैं। राजस्थान के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय एव विधि विभाग इसी श्रेणी मे आते हैं। शिक्षकों को मात्र 1500 रु० से 2500 रु० प्रतिमाह वेतन दिया जाता

है जबकि छात्रो से कई गुना अधिक शुल्क लिया जाता है।

- निजी संस्थाए समाज के समृद्ध एव सम्पन्न और प्रगतिशील वर्गों की शैक्षिक माग की पूर्ति करती है जबकि सरकारी सस्थाए समाज के कमज़ोर, पिछड़े और निर्धन वर्ग की शैक्षिक मागो की पूर्ति करती हैं। यदि उच्च शिक्षा का निजीकरण कर दिया जाए तो न केवल प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण धीमा पड़ जाएगा बल्कि सामाजिक न्याय, आय एवं सम्पत्ति की विषमता को दूर करने के राष्ट्रीय लक्ष्य निष्प्रभावी हो जाएगे।
- उच्च शिक्षा के निजीकरण से शोध और विकास पर सीधा अवाछनीय प्रभाव होगा। निजी क्षेत्र के उद्यम शोध और विकास पर उचित ध्यान नहीं देते।
- महाविद्यालय की सामान्य शिक्षा का निजीकरण तभी होगा जब महाविद्यालयों की स्थापना करने वाले निजी स्वामियों को वित्तीय मामलों में पर्याप्त स्वायत्तता हो। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि इसमें भी शुल्क का स्तर वही होगा जो तकनीकी व व्यावसायिक संस्थाओं का है। इस स्तर पर शुल्क की अदायगी करने वाले कितने लोग है। यहा आधी जनसंख्या निरक्षर है, बेरोजगारी चरम पर है, 40% से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है, पूरी जनसंख्या का मात्र 2.5% ही उच्च शिक्षा मे समाहित है। यदि सामान्य शिक्षा में इस प्रकार का शुल्क निर्धारित कर दिया गया तो महाविद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा की मांग विलुप्त हो जाएगी और यह मांग उच्च वर्गीय परिवारों तक ही सीमित हो जाएगी।
- उच्च शिक्षा के निजीकरण के परिणामस्वरूप महाविद्यालयों में छात्रो के चयन का महत्त्वपूर्ण निर्धारण अभिभावकों की आर्थिक स्थिति होगी। इसका दुष्प्रभाव यह होगा कि वर्ग भेद एवं सामाजिक विषमता बढ़ेगी तथा अभिजातवादी रुझान को बढ़ावा मिलेगा।

समालोचना एवं निष्कर्ष

भारत आज संक्रमणकाल से गुज़र रहा है। भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से कर्ज़ पाने के लिए अपनी आर्थिक नीतियो में परिवर्तन करना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप निजीकरण एवं बाज़ारीकरण की नीतियो का उदय हो रहा है। इन्हीं नीतियो के अन्तर्गत यह विचार भी प्रचारित किया जा रहा है कि अन्य क्षेत्रो के समान उच्च शिक्षा में भी निजीकरण एव बाज़ारीकरण की प्रक्रिया लागू करनी चाहिए। इस प्रकार की अर्थनीति के द्वारा जो विकास हो रहा है उसके लिए पूजी और पूंजी वालो की ज़रूरत है। आज बाज़ार पूजी वालों का है। अर्थनीति ने गांव के बचे हुए धधे समाप्त कर दिए। बाज़ार का इष्टदेव पैसा है, चाहे वह कही से आए किसी भी तरह से आए। ठीक उसी प्रकार उच्च शिक्षा उपाधि उन्मुख है–नकल से मिले, खरीद कर मिले। शिक्षा का स्थान मानव ससाधन विकास ने ले लिया है। जब मानव को भी संसाधन मान लिया गया तो वह हानि-लाभ की तराजू में ही तोला जाएगा और उसकी कीमत भी बाजार में दूसरी चीज़ो की तरह तय होगी। बाज़ार दर्शन के अन्तर्गत उच्च शिक्षा भी बिकाऊ है, दाम दीजिए डिग्री लीजिए। उच्च शिक्षा, सरकार से उतनी ही स्वतंत्र रहे जितनी न्याय व्यवस्था। जो शिक्षा राज्य सत्ता से मुक्त नही होगी वह समाज को प्रगतिशील नहीं बना सकती। उच्च शिक्षा के निजीकरण से शैक्षिक पारिस्थितिकी प्रभावित हो रही है। केवल बाजार की शक्तियों एव निजीकरण के भरोसे शिक्षा, सामाजिक न्याय, शोषण की समाप्ति तथा प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लक्ष्यों को प्राप्त नही किया जा सकता है। संस्थान की स्वयं साधन उत्पन्न करने की क्षमता एक सीमित दायरे में ही ससाधन जुटा पाएगी। आवश्यक ससाधनों का एक बडा भाग अपरिहार्य रूप से सरकार को जुटाना पड़ेगा। पुनैया समिति ने भी संसाधन जुटाने की प्रमुख भूमिका सरकार की मानी है।

निष्कर्षतः भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए न तो अधिक राजकीय हस्तक्षेप और न ही अत्यधिक निजीकरण अनुकूलतम स्थिति है। बल्कि संतुलित व समन्वित दृष्टिकोण होना चाहिए। इस प्रकार असफल एवं दिशाहीन उच्च शिक्षा के निजीकरण के लिए अक्षम राज्य और गलत अर्थनीति समान रूप से जिम्मेदार हैं। □□

संदर्भ

1. कृष्ण कुमार 1995, **बाज़ार का दर्शन राज्य और शिक्षा**, पलाश, राज्य शिक्षक प्रशिक्षण मंडल, भोपाल, मई–जून, पृ. 8.
2. शरत कुमार गर्ग 1995, **प्राइवेटाइज़ेशन : ए क्विक फिक्स सोल्यूशन**, प्रकाशित दैनिक 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स,' नई दिल्ली, पृ 18.
3. नई शिक्षा नीति 1986, **ए पर्सपेक्टिव एंड चैलेंज** मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली
4. नायक, जे.पी. 1980, **दी एजूकेशन कमीशन एंड आफ्टर**, एलाइड पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
5. बैस, एच. एस 1972, शिक्षा की रूपरेखा, इंडियन होम यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, दिल्ली.
6. गिरीश श्रीवास्तव 1995, **ह्वाट प्राइस हायर एजूकेशन**, प्रकाशित दैनिक 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स', नई दिल्ली, 5 सितम्बर, पृ. 19
7 श्री प्रकाश 1994, **विकास, सामाजिक न्याय और शिक्षा का निजीकरण परिप्रेक्ष्य**, नीपा, नई दिल्ली, वर्ष 1, अक 1, अप्रैल.
8. अमरीक सिह 1992, **ऐट ह्वाट कास्ट हायर एजूकेशन** प्रकाशित दैनिक 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स', नई दिल्ली, 21 मई

विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण

बी. आर. परमार

स्नातकोत्तर शिक्षक
केन्द्रीय विद्यालय नं. 2
रक्षा विहार, पोर्ट ब्लेयर

भारतीय समाज आज विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सास्कृतिक, वैचारिक और यान्त्रिक आक्रमणों से प्रभावित होकर एक अभूतपूर्व परिवर्तन की स्थिति से गुज़र रहा है। परिवर्तन की इस आधी ने सभी आदर्शों को बिखराकर संयुक्त परिवार को एकाकी परिवारों में परिवर्तित कर दिया है। पारिवारिक सम्बन्धों में क्षीणता के फलस्वरूप आज भारतीय समाज मे कई सामाजिक कुरीतियों ने जन्म ले लिया है। इन्हीं पारिवारिक समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए और उन्हें सुलझाने के लिए लेखक ने विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण की सकल्पना का प्रतिपादन किया है। लेखक के अनुसार इस बहुआयामी शिक्षण के माध्यम से भारतीयता के प्राचीन मूल्यों को समाज मे एक बार पुन: स्थापित किया जा सकेगा।

मां के हृदय की विशालता तथा त्याग प्रवृत्ति को मातृत्व की संज्ञा दी जाती है, जिसमें स्वार्थ का कोई स्थान नहीं होता है। मातृत्व भाव बालिका मे पाया जाने वाला वह जन्मजात गुणधर्म है जो मां बनने पर स्वत: ही सतान के प्रति जाग्रत होता है। मन ही मन ममता का उमड़ना मातृत्व भाव है। इस सदर्भ में विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण का अर्थ यह है कि माताएं वर्तमान आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियो के अनुकूल अपनी सतान की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को यथा सम्भव, यथा समय पूरा करने का भरसक प्रयास करने की क्षमता प्राप्त करे। अपने परिवारो में बच्चों की संख्या व उनमे अन्तराल सबन्धी निर्णय मे निर्णायक भूमिका निभा सके। अत: विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण एक ऐसा शिक्षण है, जिसके माध्यम से एक मा मे अपनी सन्तान के प्रति वास्तविक उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

यदि हम तीन बच्चो की सख्या को आदर्श मानें, तो तीन से अधिक बच्चों को जन्म देना अविवेकपूर्ण मातृत्व कहलाएगा। यदि हम मानते हैं कि मा का बच्चे को दूध पिलाना परम कर्त्तव्य है और दूध पीना बच्चे का नैसर्गिक जन्म सिद्ध अधिकार, तो बच्चे को दूध न पिलाना अविवेकपूर्ण मातृत्व भाव है। यदि समाज मानता है कि मां अपने पुत्र-पुत्री से अथाह प्यार करती है तो बेटे की पत्नी के साथ रचमात्र भी भेदभाव, दुर्व्यवहार अथवा अत्याचार अविवेकहीन मातृत्व की श्रेणी में गिना जाएगा, क्योकि बहू भी परिवार की एक सम्माननीय व प्रिय सदस्य होती है। साथ ही वह वंश को आगे बढाती है। उसकी खुशहाली पर ही परिवार की समृद्धि निर्भर है। अत: व्यक्ति, समाज तथा विश्व का कल्याण इसी में निहित है कि प्रकृति ने जिस रूप में व्यक्ति का निर्माण किया है, वह अपने कर्त्तव्य तथा अधिकारों का यथावत उपयोग करें। अन्यथा जीवन में व्याप्त मूल्यों में असन्तुलन हो जाएगा, जो हम सबके भविष्य के लिए खतरा हो सकता है।

विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण की आवश्यकता

'विवेकपूर्ण मातृत्व' अथवा ममतामयी मां शिक्षण की आवश्यकता ससार को जितनी आज है, शायद पहले कभी नहीं रही। सभ्य तथा विकसित मनुष्य को आत्मसंतुष्टि के लिए अनेकानेक भौतिक वस्तुओ की आवश्यकता होती है। समाज में ऐसी धारणाएं पनप रही हैं कि भौतिक वैभव के अभाव में जीवन नीरस है। भौतिक-वैभव की अनिवार्यता, औद्योगिक विकास, महानगरों की ऊहापोह, पश्चिमी

सस्कृति का अनुसरण, झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा, बनावटी जीवन आदि के फलस्वरूप वैवाहिक जीवन में कटुता तथा अविवेकपूर्ण मातृत्व की समस्या बढी है।

उच्च शिक्षित परिवारों मे विवाह एक सामाजिक समझौता न रह कर 'करार' बन गया है। नवजात शिशु को दूध न पिलाना तथा उसकी देखभाल के लिए 'आया' रखना, फैशन-सा हो गया है। बच्चे को सीने से लगाकर ममत्व देने के स्थान पर दूर से ही ''हलो हाय'' करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह प्रवृत्ति अविवेकपूर्ण मातृत्व का परिचायक है। वैवाहिक जीवन का आदर्श मनो-शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति माना जाता है जिसमे सस्कार की सकल्पना है तथा दो आत्माओ को जीवनपर्यन्त एक-दूसरे के लिए समर्पित करने की भावना सम्मिलित है। वहीं 'करार' अस्थाई, अनुत्तरदायी तथा अविवेकपूर्ण तत्कालिक समझौता है, जिसमे पति-पत्नी की अलग-अलग पहचान बनी रहती है।

कामकाजी माताओ के पास समय का अभाव रहता है। फलतः उनमें से कुछ धन के बल पर नवजात शिशु को मातृत्व प्रदान करती है। जिससे बच्चों मे वाछित मूल्यो का संतुलित विकास नहीं हो पाता। यह अविवेकपूर्ण मातृत्व का ही परिणाम है।

ग्रामीण महिलाओं मे अविवेकपूर्ण मातृत्व का कारण गरीबी, अन्धविश्वास तथा मनोरजन का अभाव है।

अविवेकपूर्ण मातृत्व की समस्या अब केवल सामाजिक ही नहीं रही है, अपितु सस्कृति में भी घुल मिल गई है। वास्तव में आज की युवा पीढ़ी यदि अविवेकपूर्ण मातृत्व की गम्भीर समस्या के मानवीय परिणाम को समझने मे कामयाब नही होगी, तो भविष्य में मानवीय मूल्यो का अकाल पड़ सकता है। सामाजिक जीवन शैली इतनी बिखर जाएगी कि भावी पीढ़ी का जीवन हर प्रकार से कष्टदायक हो जाएगा।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मे ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का तो प्रावधान है परन्तु आज की बालिकाए भविष्य मे ममतामयी मा कैसे बनें यह नहीं है। अतः आज की बालिका अर्थात कल की ममतामयी मां के लिए यह बतलाना आवश्यक हो जाता है कि विवेकपूर्ण व उत्तरदायी मातृत्व हेतु उनका आचरण कैसा हो ताकि भावी सन्तान का नैसर्गिक विकास हो सके। 'विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण' शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण की संकल्पना को यौन शिक्षण अथवा जनसंख्या शिक्षण के साथ सम्मिलित न करके 'जिम्मेदार जननी शिक्षण' के अन्तर्गत 'मातृत्व' पहलू के रूप मे पढ़ाया जाना चाहिए। विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण के माध्यम से बालिकाओ को यह समझाने का प्रयास किया जा सकता है कि किताबी ज्ञान के साथ-साथ भावी मां की तैयारी न होने से भविष्य मे उनके भावी परिवार, सतान तथा जीवन स्तर पर क्या-क्या प्रभाव पड़ेंगे। इस शिक्षण का मुख्य उद्देश्य ममत्व की शिक्षा द्वारा पारिवारिक सुख-समृद्धि प्रदान करना है जिससे समाज व राष्ट्र का जीवन स्तर समृद्ध बनें और उनका सर्वागीण विकास हो सके। अतः विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण की विषय सामग्री मे निम्नलिखित तथ्यो का समावेश किया जाना चाहिए :

विवाह संबंधी विशिष्ट ज्ञान

परिवार का आरम्भ एक स्त्री-पुरुष के वैवाहिक सूत्र मे बध जाने से होता है। बच्चों के जन्म से परिवार का चक्र विकसित होता है और निरन्तर चलता रहता है। निरन्तर चलते हुए इस चक्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि इस बात की जागरूकता बढ़े कि लडकियो का विवाह किस उम्र में हो सकता है व संतानोत्पत्ति के योग्य वे किस उम्र मे होती हैं।

भारतीय बाल विवाह 1963 (शारदा एक्ट) मार्च 1978 में संशोधित किया गया और इसके अनुसार लडकियों की विवाह की आयु 18 वर्ष व लडको की 21 वर्ष कर दी गई है। इस नियम से मा व शिशु का स्वास्थ्य उत्तम रखने मे मदद मिलती है।

विवाह एक सामाजिक सम्बन्ध है, जिसका मुख्य उद्देश्य दाम्पत्य जीवन में एक दूसरे की मनोशारीरिक इच्छाओं की पूर्ति करना तथा वश परम्परा कायम रखना है। विवाह वर्तमान सदर्भ में अनिवार्य नही है, अपितु सामाजिक रिवाज है। जिसे धार्मिक, नैतिक तथा सास्कृतिक मान्यता प्राप्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार जोर ज़बरदस्ती अथवा मन के विरुद्ध किया गया विवाह अविवेकपूर्ण मातृत्व को जन्म देता है।

विवाह करने से पहले लड़कियों को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि लड़का स्वावलम्बी, परिश्रमी, शिक्षित तथा उत्तम विचारो वाला होना चाहिए, जिससे भावी जीवन सुखी व समृद्ध बना रहे व बच्चो की देखभाल अच्छे तरीके से की जा सके।

1982 मे सेनफ्रांस्किो मे 'स्त्री रोग तथा प्रसूति विज्ञान' पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में डॉ० प्रमिला सेनानायक द्वारा दी गई खोजपूर्ण जानकारी मातृत्वपूर्ण शिक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार विश्व में इन दिनो कम उम्र की लडकियो में मां बनने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। औद्योगिक राष्ट्रों की किशोरियां यौन सम्बन्धों में रुचि तो लेती हैं, परन्तु उनमे मातृत्व के उत्तरदायित्व से दूर भागने की प्रवृत्ति भी अधिकाधिक पाई जाती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति मातृत्व के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण प्रदर्शित करती है।

भारत ग्राम प्रधान देश है। ग्रामीण अंचलों में लड़कियों का कम उम्र मे ही विवाह करने का रिवाज प्रचलित है। अबोध युवतिया मां कहलाने लगती हैं। इस बढ़ती हुई अविवेकपूर्ण समस्या को नियंत्रित करने के लिए विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण द्वारा सेक्स के प्रति आकर्षण का वैज्ञानिक तथा मनोशारीरिक ज्ञान हर युवती को दिया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक व व्यावहारिक समझ

किशोरावस्था की समाप्ति पर बालिकाओं को प्रजनन व शिशु पालन का वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि उनमे एक स्वच्छ व उत्तरदायी दृष्टिकोण का विकास हो सके, वे विभिन्न अंगो की स्वच्छता के महत्त्व को समझ सकें और इस आयु से सम्बन्धित मनोविकारो की शिकार होने से बच सकें। आज स्तनपान के प्रति सही और विज्ञान-सम्मत दृष्टिकोण बनाने की भी अति आवश्यकता है। भूतकाल मे इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा सामान्यत· सयुक्त परिवार की अनुभवी व प्रौढ महिलाओं द्वारा बालिकाओ को दी जाती थी, परन्तु वर्तमान समय मे एकाकी परिवार की प्रथा के कारण यह उत्तरदायित्व भी शिक्षा प्रणाली को ही निभाना है।

संक्रामक रोगों से बचाव की शिक्षा

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार संक्रामक रोग शरीर मे प्रतिरोधक तत्वों की कमी के कारण आक्रमण करते है। बाल चिकित्सा अनुसंधान से यह स्पष्ट हुआ है कि बचपन से जिन बच्चों को मा का दूध पिलाया जाता है उनमें मा का दूध न पीने वाले बच्चो की तुलना में रोगो से बचाव की क्षमता अधिक पाई जाती है। अत. विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षण द्वारा युवावस्था से ही युवतियों को शिक्षित किया जा सकता है। यदि वे भविष्य मे हृष्ट-पुष्ट, ज्ञानवान तथा नैतिक गुणों से भरपूर सतान की अभिलाषा रखती है तो उन्हे पश्चिमी सभ्यता के बहकावे में न आकर विवेकपूर्ण मातृत्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

बच्चा स्वस्थ रहे इसके लिए जरूरी है कि मां का स्वास्थ्य भी उत्तम कोटि का हो। वस्तुत: उत्तम कोटि का स्वास्थ्य ही वास्तविक सुन्दरता है। साथ ही वर्तमान औद्योगिक युग मे पर्यावरण प्रदूषण बढता जा रहा है। भोज्य पदार्थों मे पौष्टिक तत्वो का अभाव होता है। डिब्बा बंद भोज्य पदार्थ उतनी मात्रा मे बच्चो को पोषक तत्व प्रदान नही कर पाते, जितना कि उनके शरीर के लिए आवश्यक है। अत: बालिकाओं को पौष्टिक आहार, स्वच्छ पर्यावरण तथा बाल्यावस्था मे होने वाले जानलेवा रोगो की रोकथाम तथा उनसे बचाव की शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

सामाजिक कुप्रथा समाप्ति की शिक्षा

सामाजिक कुप्रथाए व्यक्ति के मन में तनाव व बिखराव की प्रवृत्ति को जन्म देती हैं। ये कुप्रथाए असामाजिक, अव्यावहारिक तथा अवैज्ञानिक होती है जैसे बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, पुत्र को वरीयता देना, पुत्री का जन्म विनाश की निशानी, स्त्री को अबला तथा उसका कर्म मात्र बच्चो को जन्म देना व पति की सेवा करना मानना। साथ ही पुत्री की शिक्षा पर खर्च किए गए धन को व्यर्थ समझना आदि। उक्त सामाजिक मान्यताए अथवा धारणाए बालिका के मन में हीन भावना को जन्म देती है जिसके कारण वे भविष्य मे अविवेकपूर्ण मातृत्व की ओर अग्रसर होती हैं।

आदर्श सास व ननद बनने की शिक्षा

विवाह एक सामाजिक पवित्र बंधन है जिसमें धन–दौलत, लेन–देन का कोई स्थान नहीं है। दुर्भाग्य से वर्तमान समाज में दहेज नाम का एक नासूर पनप रहा है जिसकी चपेट में आकर असख्य नवविवाहिताओ को अपनी जान से हाथ धोना पड़ सकता है। सामाजिक सगठनो द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि दहेज हत्या के 60 से 70 प्रतिशत मामलो मे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सास अथवा ननद का हाथ होता है। यह निष्कर्ष इस बात की ओर इगित करता है कि बालिकाओं को पारिवारिक सम्बन्धो के बारे में विवेकपूर्ण शिक्षण की आवश्यकता है। विवेकपूर्ण मातृत्व शिक्षा के माध्यम से युवतियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जा सकती है। इसी प्रकार युवतियों को यह भी शिक्षा दी जा सकती है कि जिस प्रकार स्त्री की गोद में जन्मे लड़की–लडके प्राणों से प्यारे होते हैं उसी प्रकार घर पर आई ब्याहता बहू भी प्यारी होनी चाहिए।

शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व को परिमार्जित करती है, जिससे व्यक्तित्व में निखार आता है। शिक्षा व्यक्ति को स्थितियों की समझ व निर्णय कर पाने की क्षमता प्रदान करती है। आज भारत में शिक्षा का प्रचार–प्रसार बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। अनेक क्षेत्रों में हमने अतुलनीय सफलताएं भी प्राप्त की हैं लेकिन वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में 'मानव जीवन के वास्तविक मूल्यो की शिक्षा' का नितात अभाव है। आज सभी क्षेत्रों में इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने की ज़ोर–शोर से तैयारिया चल रही हैं। परन्तु ऐसी बहुत कम आवाजे सुनने को मिलती हैं, जो यह कहती हों कि हम इक्कीसवीं सदी में 'भारतीयता' के साथ प्रवेश करें। समय की मांग आज यही है। □□

विद्यालय-पर्यावरण

हरिबल्लभ बोहरा 'हरि'

4087, सिंधवीं पाड़ा
जैसलमेर, राजस्थान

विद्यालय वह स्थान है जहां समाज की भावी-पीढ़ी को इसलिए भेजा जाता है ताकि उसका बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास हो सके। यह तभी संभव है जब विद्यालय का स्थान, उसकी भवन योजना, खेल के मैदान, व्यायामशाला, बगीचों तथा कक्षा कक्षो के लिए पर्याप्त स्थान, स्वास्थ्यप्रद वातावरण और सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर योजनाबद्ध कार्यान्वयन किया जाए। प्रस्तुत लेख में लेखक ने विद्यालयी पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ आवश्यक तथ्यों की ओर इंगित किया है। अब कदाचित वह समय आ गया है जबकि प्रत्येक विद्यालय की स्थापना के लिए विशिष्ट मानकों तथा मापदण्डों को निर्धारित कर उन पर समन्वित रूप से अमल किए जाने की ज़रूरत है। तभी विद्यालय पर्यावरण सही मायने में विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास में सहयोगी सिद्ध हो सकेगा।

भोजन, वस्त्र एवं आवास के बाद मनुष्य की मुख्य आवश्यकता शिक्षा की होती है। विद्यार्थी जीवन का अधिकांश भाग वह विद्यालय में ही बिताता है। ऐसे में यदि विद्यालय का माहौल उपयुक्त न हो तो वहा अधिकांश समय बिताने के कारण शरीर एवं स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है।

विद्यालय से तात्पर्य केवल किसी भवन या उसके परिसर से ही नहीं है अपितु आस-पास के पर्यावरण से भी है। इसे हम विद्यालयी पर्यावरण कह सकते हैं, जिसमे निर्मित भवन के अतिरिक्त आवश्यक सेवाए सुविधाए, यान्त्रिक सहयोग एवं विधियो को भी सम्मिलित किया जाता है जो कि सामूहिक एवं व्यक्तिगत तौर से विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक स्तर को निर्धारित करता है।

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए विद्यालय मे निम्न विशेषताए एवं सुविधाएं उपलब्ध होना आवश्यक है :

- विद्यालय दुर्घटना रहित, भौतिक संरक्षण एवं शरण प्रदायक हो।
- वहां पढने, पढाने, खेलने एव शौच-मूत्र हेतु उपयुक्त निर्धारित स्थान हो।
- भवन-निर्माण इस तरह किया जाए जिससे संचारी रोगों का प्रसार रोका जा सके।
- ध्वनि एवं अन्य प्रदूषण से सुरक्षित हो।
- उन असुरक्षित भौतिक व्यवस्थाओं से परे हो, जो शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए घातक होती है।
- विद्यालय मे व्यक्तिगत एवं सामुदायिक सामंजस्यता बनाए रखने हेतु सामाजिक सम्बन्धो को सुदृढ़ बनाया जा सके जो कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रभावी होता है।
- जान एवं माल की सुरक्षा हो तथा व्यक्तिगत गुप्तता कायम रहे।
- जीव-जन्तुओं एवं कीट-पतंगों से सुरक्षित हो।
- मौसम व विभिन्न जलवायु की दृष्टि से सुरक्षित हो।

विद्यालयी भवनो के प्रकार मौसम, जलवायु, सभ्यता, समय, रिवाज आदि की दृष्टि से विभिन्न समुदायो में भिन्न-भिन्न होते हैं। लेकिन उनका ध्येय एक ही होता है। विद्यालय के भवन-निर्माण में पूर्ण स्थान एव स्थिति का चुनाव भी एक योजनाबद्ध निर्णय होता है।

विद्यालय का उपयोग विद्यार्थी के सामाजिक, पारिवारिक, सास्कृतिक व जैविक उपक्रमों को पूर्ण करने हेतु किया जाता है। विद्यार्थी जीवन का 50 प्रतिशत से अधिक समय विद्यालय मे बीतता है। अत: विद्यार्थी जीवन मे विद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थी में शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक विकृतियो का होना, पनपना व बढ़ना विद्यालय पर निर्भर करता है।

विद्यालय निर्माण एव चयन मे भवन का स्थान, पडोस, दीवारें, छत, कमरे, सतही क्षेत्र, वायु, आयतन, खिड़कियां, रोशनी, रसोई, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला, स्टाफ रूम, शौचालय, मूत्रालय एव जलापूर्ति के साथ-साथ प्राकृतिक प्रकाश व्यवस्था का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिस प्रकार आवासीय भवन के निर्माण एवं चयन मे राष्ट्रीय भवन संस्थान की संस्तुतियों का विशेष ध्यान दिया जाता है, ठीक वही जागरूकता और रुचि हमे विद्यालय के बारे मे भी रखनी चाहिए। विद्यालय के सम्बन्ध में यदि इन संस्तुतियो को ध्यान में रखा जाए तो हम अपने विद्यार्थियो को ज़्यादा बेहतर, सुख-सुविधाए एव स्वास्थ्यप्रद जीवन दे सकते है।

विद्यालय और विद्यार्थी का स्वास्थ्य

विद्यालय विद्यार्थी जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालय पर्यावरण का गहरा प्रभाव पडता है। हालांकि किसी बीमारी के प्रकोप को सीधे विद्यालय से नही जोडा जा सकता है, तथापि विद्यालय का प्रभाव रोगों के पनपने, फैलने और वृद्धि में निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

ठोस एवं पक्षपात रहित सर्वेक्षणो से सुनिश्चित किया जा सकता है कि निम्न स्तर वाले विद्यालयों मे अनेकानेक बीमारिया फैलती हैं। अनुमानतः उनका वर्गीकरण एवं विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है।

श्वसनीय संचारी रोग

समुचति भवन व्यवस्था न होने से विद्यार्थियो मे टी.बी , फ्लू, काली खासी, खसरा, डिप्थीरिया एवं जुकाम आदि बीमारियां बहुतायत से पाई जाती हैं। निम्न स्तर वाले शाला भवन इन बीमारियों के प्रसार व पनपने के लिए अनुकूल परिस्थितिया पैदा करते हैं।

चर्मरोग

दाद, खाज, खुजली, फोड़े-फुन्सी एव लेप्रोसी रोग के जीवाणु गन्दे विद्यालयों में बडी तेजी से पनपते हैं। यही कारण है कि विद्यार्थियों की स्वास्थ्य सबधी प्रमुख समस्या चर्म रोग बन जाती है।

कीट-पतंगों से फैलने वाले रोग

गन्दगी से घिरे विद्यालयो में मक्खी-मच्छर, खटमल एव अन्य कीट-पतगों की बाढ सी रहती है, क्योकि इन जन्तुओं के लिए यही वातावरण उपयुक्त होता है। इन कीट-पतंगो से मलेरिया, फाइलेरिया, मस्तिष्क ज्वर, कै (उल्टी), दस्त, आत्र-कृमि आदि रोग बडी संख्या मे विद्यार्थियों को अपना शिकार बनाते है।

दुर्घटनाएं

निम्न स्तरीय विद्यालयों में दुर्घटनाओं की सम्भावनाएं बहुत रहती हैं। भवन गिरने, छत टूटने, आग लगने, बाढ़ का पानी व अधड़-तूफान आने आदि अन्यान्य तरीको से विद्यालयो में दुर्घटनाओं का अंदेशा बना रहता है।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव

व्यावहारिक बदलाव एव मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभावो का विद्यालय के स्तर से सीधा सम्बन्ध होता है। यह कई अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि अति उच्च मंज़िलो पर रहने वालो में अलगाव, भूतल में रहने वालो में दब्बूपन, तथा बहुत ही भीड भरी जगह पर रहने वालो मे चिडचिड़ापन आ जाता है। विद्यार्थी भी इससे अछूते कैसे रहेंगे।

हम अपने स्वास्थ्य के प्रति आदिकाल से ही सचेत रहते आए हैं। फिर अपने बालकों और विद्यार्थियों के प्रति उदासीन क्यों रहते है? हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि आदर्श और स्वस्थ मस्तिष्क का विकास स्वस्थ शरीर, स्वस्थ परिवार, स्वस्थ आवास, स्वस्थ विद्यालय, स्वस्थ समाज और कुल मिलाकर स्वस्थ वातावरण में ही होता है। □□

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् : कार्य एवं अपेक्षाएं

कृष्णमुरारी गुप्त

रीडर
अध्यापक शिक्षा एवं विस्तार विभाग
एन. सी ई. आर. टी.
नई दिल्ली–110016

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् का वैधानिक अस्तित्व शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में गुणवत्ता लाने की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कदम है। अनेक प्रयासों के बावजूद यह एक कटु सत्य है कि हमारे देश में शिक्षक-प्रशिक्षण का ढांचा अन्य व्यवसायों से सम्बद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रमों की तुलना में न केवल अल्पकालीन है अपितु अत्यन्त कमज़ोर भी है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इस नवजात परिषद् के कार्यो तथा उससे शिक्षा जगत की अपेक्षाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विश्लेषण किया है।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की स्थापना राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के क्रियान्वयन के अतर्गत की गई है। इस सदर्भ मे संसद द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति ने 29 दिसम्बर, 1993 को मज़ूरी दी। इस तरह परिषद् को वैधानिक रूप मिला। ऐतिहासिक रूप से यह जन आकाक्षाओ की सफलता है। गत कई वर्षो से परिषद् को वैधानिक रूप देने की माग की जाती रही थी। यह अनुभव किया जाता रहा था कि अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् के बनने से अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पर कडा नियत्रण रखा जा सकेगा।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् अथवा राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की स्थापना 21 मई, 1973 को शिक्षा मत्रालय, भारत सरकार ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा की थी। सामान्य प्रचलित रूप मे इसे एन सी टी.ई. भी कहते हैं। उस समय परिषद् से यह अपेक्षा की गई थी कि परिषद् भारत सरकार को अध्यापक शिक्षा से संबंधित सभी मामलों जैसे–सेवा पूर्व प्रशिक्षण, सेवाकालीन प्रशिक्षण, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम एवं मूल्याकन आदि पर सलाह देगी। परिषद् राज्य सरकारों को उन मामलों पर भी सलाह देगी जिन पर सलाह मांगी गई हो। अध्यापक शिक्षा से सबंधित केन्द्र एव राज्य स्तरीय योजनाओं की प्रगति पर समीक्षा भी परिषद् के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित थी। परिषद् से यह आशा थी कि परिषद् अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता के स्तर मे सुधार कर सकेगी।

वर्ष 1973 में परिषद् के सदस्यों की सख्या 42 थी, जिसमें प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि शामिल था। परिषद् में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड, योजना आयोग एवं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का प्रतिनिधित्व भी एक सदस्य के द्वारा होता था। 12 सदस्यो का चयन परिषद् के अध्यक्ष के द्वारा होता था। परिषद् के अध्यक्ष पदेन शिक्षा मंत्री होते थे। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् के पदेन सदस्य सचिव थे। प्रारभ में परिषद् का कार्य चार समितियो की मदद से होता था .

- परिचालन समिति
- पूर्व विद्यालय एवं प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा समिति
- माध्यमिक विद्यालय एव महाविद्यालय अध्यापक शिक्षा समिति
- विशेष विद्यालय अध्यापक शिक्षा समिति

अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की वर्ष में एक बार संगोष्ठी होती थी जिसमें उपरोक्त समितियो द्वारा की

गई संस्तुतियों की समीक्षा की जाती थी। शिक्षक शिक्षा में सुधार करने के लिए परिषद् (1973) द्वारा कई आवश्यक कदम उठाए गए। परिषद् ने शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए सभी पहलुओ पर समय-समय पर सरकार को सलाह दी।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् का सदैव ही यह प्रयास रहा कि सस्तुतियो का क्रियान्वयन, प्रत्यायन द्वारा हो। यह आशा की गई थी कि सभी विश्वविद्यालय, राज्य सरकारे, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं संस्थान विनम्रतापूर्वक परिषद् के सुझावों को क्रियान्वित करेंगे। परिषद् का यह भी विश्वास था कि सभी सस्थाओं मे सुधार के कार्यक्रम आसानी से स्वीकार हो सकेंगे। किसी प्रकार के बल प्रयोग की आवश्यकता उस समय अनुभव नहीं की गई थी। उच्च अकादमिक स्तर बनाए रखने के लिए सभी सस्थाओं को उत्तरदायी माना गया था।

परिषद् (1973) द्वारा किए गए कार्यो का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि शिक्षक प्रशिक्षण से जुड़ी सस्थाओं मे इस प्रकार की परिपक्वता नहीं थी। उनसे स्वार्थी व्यक्तित्व जुड़े थे जिन्होने लोकतत्र का अर्थ परम स्वतत्रता लगाया और परिषद् की सलाह की अपने ढग से व्याख्या की।

परिषद् की सलाह पर वर्ष 1974 मे शिक्षा एवं समाज कल्याण मत्रालय भारत सरकार द्वारा सभी राज्यो से यह आशा की गई थी कि वे राज्य शिक्षक शिक्षा बोर्ड का गठन करें। पन्द्रह राज्यो और केन्द्र शासित प्रदेशो ने राज्य शिक्षक शिक्षा बोर्ड का गठन किया। बहुत से राज्यो मे बोर्ड के लिए मानवीय और आर्थिक संसाधनों का स्वतंत्र रूप से प्रावधान नहीं किया जिससे इन संस्थाओ ने सुचारु रूप से कार्य नहीं किया।

वर्ष 1977 मे अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की रूपरेखा को विकसित किया गया। देश के सभी शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों से यह आशा की गई कि वे इस पाठ्यक्रम को या तो इस रूप में या फिर सुधरे हुए रूप में लागू करें। इस पाठ्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने विश्वविद्यालय एवं शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय स्तर की कई संगोष्ठियों का आयोजन किया। सतत् प्रयासो के फलस्वरूप देश के कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयो मे परिषद् (1973) द्वारा विकसित किया गया पाठ्यक्रम पूर्णतया या आशिक रूप से लागू किया गया। इससे परिषद् के कई सदस्य बहुत उद्विग्न हुए। इस व्यवस्था का विकल्प ढूंढने के प्रयास शुरू किए गए।

शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर को सुधारने के लिए यह अनुभव किया गया कि सेवा पूर्व प्रशिक्षण में भाग लेने के लिए अभ्यर्थियो का शैक्षिक स्तर उचित हो। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अभ्यर्थियो की सख्या उपलब्ध स्थानो से कही अधिक थी। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (1973) ने यह अनुभव किया कि सेवा पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम मे भाग लेने के लिए सभी अभ्यर्थियो की लिखित परीक्षा होनी चाहिए। अभ्यर्थियों का चयन लिखित परीक्षा के आधार पर होने से प्रवेश में कदाचार कम हो जाएगा। परिषद् ने शिक्षक प्रशिक्षण में भाग लेने के लिए स्नातक स्तर पर एक निश्चित प्रतिशत के अक का होना अनिवार्य योग्यता बनाई और लिखित परीक्षा के आधार पर ही प्रवेश देने की संस्तुति की। इस संस्तुति को भी केवल कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयो ने ही लागू किया।

परिषद् (1973) ने यह भी अनुभव किया कि शिक्षक प्रशिक्षण में प्रथम उपाधि पत्राचार पाठ्यक्रम से नही होनी चाहिए। इस सस्तुति को मनवाने एवं सपूर्ण देश मे लागू करवाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् का एक प्रतिनिधिमडल देश के शिक्षा मत्री से मिला और उन्हें एक ज्ञापन दिया। उसका उद्देश्य यह था कि शिक्षा मत्रालय एवं राष्ट्र का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित किया जाए कि पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा शिक्षकों को प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता।

प्रारम्भ मे पत्राचार पाठ्यक्रम का उद्देश्य अप्रशिक्षित अध्यापको को सेवाकालीन पाठ्यक्रम के द्वारा प्रशिक्षित करना था। इस प्रक्रिया में विश्वविद्यालय से लिखित परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद शिक्षण की उपाधि मिल जाती थी, जिसकी स्वीकृति राज्य द्वारा दी गई थी। इस व्यवस्था का विद्यालयों द्वारा दुरुपयोग किया गया। बहुत से विद्यालयों में अप्रशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति की गई। उन्हें मान्य एव स्वीकृत वेतन से कम पर विद्यालय सेवा में लिया गया। साथ ही यह लालच भी दिया गया कि कुछ वर्षो की विद्यालयीन सेवा के बाद उन्हें शिक्षण अनुभव के आधार

पर उपाधि के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रवेश मिल सकेगा। अतः जहां यह योजना बनाई गई थी कि अप्रशिक्षित अध्यापको की संख्या कुछ वर्षों के बाद समाप्त हो जाएगी वहीं परिणाम यह निकला कि विद्यालयों मे अप्रशिक्षित शिक्षको की सख्या कई गुना बढ़ती गई। साथ ही कई विश्वविद्यालयो ने प्रशिक्षण के नाम पर पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू कर शिक्षक शिक्षा का व्यापारीकरण किया। उससे विद्यालयीन शिक्षा के स्तर मे बडी तेज़ी से गिरावट महसूस की गई। प्रशिक्षित स्नातकों के रोज़गार के अवसर कम हुए। शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयो मे प्रवेश के लिए योग्य व्यक्ति कम आने लगे। इससे विद्यालयीन शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह अस्त-व्यस्त होती दिखाई पड़ी।

उपरोक्त कठिनाइयों को महसूस करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में पहली बार यह निर्देश शामिल किया गया कि राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को सामर्थ्य और साधन दिए जाएगे जिससे यह परिषद् अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं को मान्यता देने के लिए अधिकारिक हो और उनके शिक्षाक्रम और पद्धतियो के बारे में मार्गदर्शन कर सके।

नया क्षितिज

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (1993) अधिनियम मे परिषद् के लिए संरचना, अधिकार एवं अधिक उत्तरदायित्वों का उल्लेख है। परिषद् के लिए पूर्णकालिक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्य सचिव की नियुक्ति का प्रावधान है। अधिनियम कहता है कि परिषद् के सदस्यों की संख्या 43 होगी। परिषद् के सभी निर्णय संगोष्ठी मे उपस्थित सदस्यो के बहुमत से लिए जाएंगे। परिषद् को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह तीन व्यक्तियों को किसी विशेष उत्तरदायित्व के लिए सहयोजित कर सकती है। सहयोजित सदस्य परिषद् की कार्यवाही में भाग ले सकते है, लेकिन उन्हे मत देने का अधिकार नही होगा। परिषद् अधिनियम (1993) में परिषद् से बहुत अधिक अपेक्षाएं की गई है। परिषद् के कार्यो का विस्तार बहुत अधिक है। शिक्षक शिक्षा के समन्वित विकास एवं स्तर को बनाए रखने के लिए परिषद् सभी आवश्यक कार्य करेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्ययोजना (1992) के अनुसार परिषद् शिक्षक शिक्षा के स्तरो के निर्धारण तथा रखरखाव के लिए एक तंत्र का सृजन करेगी। घटिया स्तर और कदाचार वाली सस्थाओ को बद करेगी। शिक्षक शिक्षा सस्थानो को नियमित करेगी। प्रशिक्षित कार्मिको की आपूर्ति तथा मांग के फासले को कम करेगी।

परिषद् शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाने वाले सस्थानों के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत निर्धारित करेगी। शिक्षक शिक्षा के सभी क्षेत्रो में नवीनता तथा अनुसधान को बढ़ावा देगी।

परिषद् के आवश्यक कार्यो में केन्द्र, राज्य सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं सभी मान्यता प्राप्त संस्थाओं के द्वारा बनाई गई योजना एवं कार्यक्रमो के बारे मे सलाह देना भी सम्मिलित है। शिक्षक शिक्षा से संबधित सभी कार्य जैसे सर्वेक्षण, मूल्यांकन, पाठ्यक्रम का निर्माण, अनुश्रवण, पर्यवेक्षण, मानक आदि परिषद् के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

मान्यता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्था परिषद् द्वारा दिए गए आदेशों एवं निर्देशो के अनुसार ही कार्य करेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए परिषद् संस्थाओं का निरीक्षण करेगी। परिषद् को शिक्षक शिक्षा से सबधित सभी संस्थाओं को मान्यता देने का अधिकार प्राप्त है। बिना मान्यता प्राप्त संस्थान के लिए सत्र के अंत में सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बंद कर देना आवश्यक है।

विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को दिए गए अधिकार एवं कर्त्तव्यों की विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि तत्र का सृजन ही एक पूर्णकालिक कार्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्ययोजना (1992) के अनुसार शिक्षक शिक्षा सस्थाओं को मान्यता देना और दिए गए मानकों अथवा निर्देशों के अनुसार मानवीय एव भौतिक संसाधनो की उपलब्धि को सुनिश्चित करना इस तत्र के कार्यक्षेत्र मे आता है। अनुश्रवण के आधार पर वांछित स्तर से नीचे पाए जाने वाले शिक्षक शिक्षा संस्थानों को बंद करना या नियमित करना परिषद् का प्रथम कार्य होना चाहिए। इस परिधि में

मानव ससाधन विकास मंत्रालय के तत्वावधान में केन्द्र द्वारा प्रायोजित शिक्षक शिक्षा योजना के अतर्गत स्वीकृत सभी प्रशिक्षण संस्थान भी आते हैं।

परिषद् (1993) को अपनी पूर्ववर्ती परिषद् (1973) के अधूरे कार्यों को समयबद्ध रूप से पूरा करने के लिए कदम उठाना आवश्यक है। यह निरतरता की दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी होगा, एव शिक्षक शिक्षको मे परिषद् के प्रति विश्वास उत्पन्न करेगा। साथ ही शिक्षक शिक्षा के व्यापारीकरण को रोक सकेगा और तभी प्रशिक्षण के स्तर में सुधार आएगा।

परिषद् को शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य कर रही संस्थाओ—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान आदि के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् वैधानिक सस्था है। अत: इन सस्थाओं से सहयोग करने के लिए उसे ही पहल करनी चाहिए।

वर्तमान में यह उचित होगा कि परिषद् सभी सस्थाध्यक्षो को अधिनियम के प्रावधानों, लक्ष्यो एव आकाक्षाओं से परिचित कराए। साथ ही प्रशिक्षण कार्यक्रम में नवीन स्वीकृत ज़िला शिक्षा एव प्रशिक्षण सस्थानो, शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों, शिक्षा मे उच्च अध्ययन सस्थानो को अवश्य सम्मिलित करें। इससे इन सस्थानो में प्रारंभ से ही गुणवत्ता होने से समाज मे चेतना जाग्रत होगी तथा परिषद् को अपने दिशा निर्देशों को लागू करवाने में सुविधा होगी। यह सर्वविदित है कि क्रियान्वयन की सुनिश्चित योजना के अभाव मे स्पष्ट दायित्व निर्धारित नहीं किए जा सकते। ऐसे मे परिषद् के कार्यो का भविष्य मे मूल्याकन कठिन हो जाएगा। .

अंतत:

केन्द्र सरकार द्वारा अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् को वैधानिक स्वीकृति देना एक स्वागत योग्य कदम है। इससे अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य कर रहे विशेषज्ञो मे प्रसन्नता परिलक्षित हो रही है। व्यावसायिक तौर पर चलाए जा रहे शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओ में इस बात को लेकर गहमा-गहमी है कि अधिनियम के प्रावधानो से कैसे बचा जाए।

परिषद् को शिक्षक शिक्षा की प्रासगिकता बढ़ाने के लिए सतत प्रयास करने चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्ता एवं कार्यात्मकता बढ़ाने के नवीन उपाय सोचने चाहिए। प्रशिक्षण के लिए प्रौद्योगिकी का विकास करना चाहिए। भारतीय शिक्षा के भावी स्वरूप को ध्यान मे रखकर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को नई दिशा देनी चाहिए। समय-समय पर कार्यान्वयन की समीक्षा करते रहना चाहिए। तभी देश राष्ट्रीय शिक्षा नीति में दिए गए शिक्षक शिक्षा प्रणाली मे आमूल परिवर्तन के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकेगा।

केवल कठोर नियम बनाने से ही शिक्षक शिक्षा मे कदाचार नहीं रुक सकेगा। नियमों का पालन करने की चेतना सभी शिक्षा सस्थानों में आनी चाहिए। इसके लिए नैतिक भावना का विकास जरुरी है, अन्यथा सामाजिक चेतना के अभाव मे राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् द्वारा बनाए हुए नियमो का पालन असंभव हो जाएगा। □□

सदर्भ

1. मानव ससाधन विकास मत्रालय, शिक्षा विभाग (1992), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), कार्ययोजना (1992), नई दिल्ली : भारत सरकार.
2. मिनिस्ट्री आफ ला, **जस्टिस एंड कम्पनी अफेयरस** (1993), द नेशनल काउंसिल फार टीचर एजूकेशन एक्ट, 1993. न्यू देहली : द गजट आफ इंडिया, नं० 124, पार्ट-2 सैक्शन1 असाधारण
3. एन.सी ई.आर टी. (1978) **टीचर एजूकेशन करीकुलम-ए फ्रेमवर्क**, न्यू देहली
4 मिनिस्ट्री आफ एजूकेशन (1985) **चेलेन्ज आफ एजूकेशन-पालिसी परस्पेक्टिव**, न्यू देहली, गवर्नमेंट आफ इडिया.

शिक्षा में पर्यटन की भूमिका

रामसूरत त्रिपाठी

नौनी रोड,
अतर्रा (बादा)
उत्तर प्रदेश - 210201

शिक्षा मे पर्यटन की आवश्यकता यद्यपि सर्वविदित है परन्तु वास्तव में किताबी ज्ञान के बोझ तले अक्सर यह दबकर रह जाती है। समय-समय पर लघु व स्थानीय भ्रमण भी विद्यार्थियों के ज्ञानवर्द्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। अत: यह विचारधारा कदाचित भ्रामक है कि पर्यटन का तात्पर्य सदैव सुदूर स्थलों का भ्रमण ही है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने अनेक उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि शैक्षिक पर्यटनों का आयोजन किस प्रकार किया जाए कि इनके माध्यम से विद्यार्थियों में ज्ञान के साथ-साथ उत्तम चारित्रिक व सामाजिक गुणों का विकास भी हो सके।

शिक्षा में पर्यटन का बहुत महत्त्व है। न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि मानव जीवन में इसका सदैव महत्त्व रहा है। हमारे धार्मिक ग्रंथ भी पर्यटन हेतु प्रेरित करते है। हिन्दू धर्म के ऋषियों-मुनियों ने देश की अखण्डता को ध्यान में रखते हुए देश के चारो कोनो पर प्रमुख तीर्थ स्थलो की स्थापना की। देश के उत्तरी कोने पर बद्रीनाथ-केदारनाथ, दक्षिणी कोने पर रामेश्वरम्, पूर्वी कोने पर पुरी तथा पश्चिमी कोने पर द्वारिकाधीश की स्थापना की गई, साथ ही जनमानस मे विश्वास उत्पन्न कर दिया कि इन चारो स्थलो मे देवताओं के दर्शन करने से पापो से मुक्ति प्राप्त होती है। अत: चारो तीर्थ स्थलो की यात्रा करना एक पवित्र कार्य मान लिया गया।

पहले आवागमन के साधन सीमित थे। ग्रामीण व्यक्तियो का आवागमन खेतो-खलिहानो, स्थानीय बाजारो व समीपस्थ स्थानो तक सीमित था। जीवन मे प्रत्येक व्यक्ति एक बार अपना देश भ्रमण कर ले, इस उद्देश्य को भी ध्यान में रखकर चार कोनों पर चार तीर्थ स्थलो की स्थापना की गई। पहले की तरह आज भी हमारे ग्रामीण व्यक्ति अपने जीवन मे कम से कम एक बार चारो तीर्थस्थलों के दर्शन अवश्य करना चाहते हैं। इस पर्यटन मे व्यक्ति विभिन्न स्थानो के निवासियो की जीवन पद्धति, रीतिरिवाज व अर्थव्यवस्था का प्रत्यक्ष अवलोकन करता है। अत: पर्यटक का सामान्य ज्ञान बढता है तथा उसका दृष्टिकोण व्यापक होता है।

ज्ञानवर्द्धन में पर्यटन की भूमिका

आज हमारे समक्ष इतिहास, भूगोल व साहित्य (हिन्दी, सस्कृत आदि) स्वतत्र विषय के रूप मे है। इन विषयों के विकास में पर्यटन का बहुत बडा योगदान रहा है। बहुत पहले अर्थात तीसरी व चौथी शताब्दी मे लोगो को स्थानीय ज्ञान था। विद्वानों में अन्य क्षेत्रो के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति विकसित हुई तथा साहसी विद्वानो ने अपना जीवन खतरे मे डालकर दुर्गम क्षेत्रो की लम्बी-लम्बी यात्राएं की। इस संबध में इब्नेबतूता, कोलम्बस, मैगलेन, वास्कोडिगामा, फाहियान, मेगस्थनीज आदि अनेक यात्रियो के नाम उल्लेखनीय हैं। विद्वान पर्यटकों ने विभिन्न क्षेत्रों का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर ग्रन्थों की रचना की जिनको समाज में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। अनुभवो के आधार पर लिखे गए इन ग्रन्थो को पढ़कर अन्य विद्वानो ने भी विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त किया। पर्यटन के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानो का सम्पर्क हुआ। एक-दूसरे के ग्रंथो का आदान-प्रदान हुआ। विभिन्न ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराया गया। इन सब क्रियाओं के फलस्वरूप पर्यटन इतिहास, भूगोल, साहित्य, ज्योतिष आदि विषयो के विकास का

आधार बना। स्पष्ट है कि शिक्षा व ज्ञान के विकास मे पर्यटन का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हमारे छात्र अपनी पाठ्यपुस्तको के माध्यम से कई प्रकार के ज्ञान प्राप्त करते हैं। पुस्तको मे भिन्न-भिन्न क्षेत्रो का धरातल, जलवायु, मिट्टी, कृषि प्रारूप, निवासियों के रीति-रिवाज, अर्थ-व्यवस्था आदि के विषय मे ज्ञान सग्रहीत रहता है। यदि पुस्तको मे उपलब्ध ज्ञान के स्रोतों को छात्र अपनी आंखो से देखें तो उन्हें व्यावहारिक व प्रत्यक्ष ज्ञान भी प्राप्त होगा। इसीलिए पाठ्यक्रमो मे पर्यटन कार्यक्रम को अनिवार्य किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

पर्यटन के आयोजन की पूर्व तैयारी

पर्यटन मे सभी कक्षाओ के छात्रो को सम्मिलित किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम छात्रों को पर्यटन से होने वाले लाभो की जानकारी दी जाए जिससे वे पर्यटन कार्यक्रम मे भाग लेने के लिए उत्सुक हो जाए। तत्पश्चात् अध्यापकगण मिलकर पर्यटन क्षेत्र तय करें। पर्यटन क्षेत्र ऐसा हो जिसमे विभिन्न प्रकार के दर्शनीय स्थल हों। पर्यटन क्षेत्र के चुनाव के बाद क्षेत्र में विद्यमान दर्शनीय स्थलो की सूची बना ली जाए तथा उन स्थलो के विषय में विस्तृत पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए। पर्यटन आरम्भ करने के पूर्व ठहराव के स्थान भी निश्चित कर लिए जाएं जिसमें आंशिक परिवर्तन भी किया जा सकता है। तिथिवार पर्यटन कार्यक्रम तैयार कर लिया जाए तथा उसकी एक-एक प्रति प्रत्येक पर्यटक छात्र को प्रदान कर कार्यक्रम समझा दिया जाए। प्रत्येक छात्र को रेल यात्रा के सामान्य नियम, यात्रा के दौरान अपेक्षित व्यवहार व अन्य आवश्यक जानकारी दी जाए। प्रत्येक छात्र को साथ मे ले चलने वाली आवश्यक सामग्री बताई जाए।

व्यावहारिक रूप से एक पर्यटन-दल में बीस छात्र, दो अध्यापक व एक सहयोगी होना चाहिए। छात्रो की पांच टोलियां बना दी जाएं तथा प्रत्येक टोली मे एक छात्र को टोली नायक बना देना चाहिए। टोली नायक को यह निर्देशित कर दिया जाए कि किसी भी प्रकार की समस्या आने पर वह अपने अध्यापक से सम्पर्क करे। यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व सामान्य उपचार हेतु कुछ आवश्यक औषधियो की व्यवस्था भी कर लेनी चाहिए।

दर्शनीय स्थलों की व्याख्या

पर्यटन के समय दर्शनीय स्थलो को मात्र देखना पर्याप्त नही होता है। छात्र विभिन्न स्थलों के विषय मे कुछ विशेष जानकारी पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। अत: अध्यापकगण विभिन्न स्थलों के विषय में जानकारी प्रदान करते रहे तथा छात्र आवश्यक तथ्यों को अपनी डायरी में लिखे। दर्शनीय स्थलों के चुनाव-व्याख्या हेतु निम्न बिन्दु प्रस्तावित है.

ऐतिहासिक स्थल

छात्र ऐतिहासिक स्थलों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक उत्सुक रहा करते है। अत: दर्शनीय स्थलो के चुनाव मे ऐतिहासिक स्थल हो तो छात्रों को पर्यटन अधिक रुचिकर लगेगा। ऐतिहासिक स्थलो मे किला, महल, संग्रहालय वाले नगर आते है। किला देखते समय छात्रों को तत्कालीन स्थापत्य कला, किले का निर्माण वर्ष, निर्माता राजा का नाम आदि बताने के साथ-साथ किला-निर्माण के सिद्धान्तो का ज्ञान प्रदान किया जाए। किले की आन्तरिक सरचना देखते समय उस समय की सैन्य व्यवस्था व युद्धकला पर प्रकाश डाला जाए। राजमहलो को देखते समय उस समय के राजा-महाराजाओं के रहन-सहन पर प्रकाश डाला जाए। संग्रहालयों में प्राचीन वस्तुएं सग्रहीत रहती है। उन वस्तुओ को दिखाते समय उनकी निर्माण प्रक्रिया पर विचार व्यक्त करते हुए आज के संदर्भ में उनकी तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जाए। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐतिहासिक स्थल यथा बाग, झील आदि भी हो सकते हैं जिनकी आवश्यक व्याख्या अध्यापक द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिए।

धार्मिक स्थल

ऐतिहासिक स्थलों की भांति मंदिर, मस्जिद आदि भी छात्रो के लिए रुचिकर होते हैं, अत: पर्यटन क्षेत्र का चुनाव करते समय धार्मिक स्थलो पर भी ध्यान देना आवश्यक है। धार्मिक स्थानो के निर्माण का समय, निर्माता का नाम

व उनसे संबधित देवी-देवताओं के विषय में बताया जाए। छात्रो मे जीवन-मूल्य विकसित करने के उद्देश्य से उन्हें धर्म की व्याख्या व धार्मिक आदर्शो के बारे मे बताया जाए।

बहुउद्देशीय नदी परियोजनाएं

हमारे देश में रिहन्द नदी घाटी परियोजना, दामोदर घाटी परियोजना, भाखडा-नागल बाध आदि अनेक बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाए विकसित की गई है। छात्रों को इन नदी घाटी परियोजनाओ का महत्त्व बताया जाए तथा किसी नदी घाटी परियोजना का विस्तृत अध्ययन कराया जाए। परियोजना हेतु स्थान चयन का औचित्य, परियोजना के विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति हेतु किए गए प्रयास तथा परियोजना के द्वारा होने वाले क्षेत्रीय विकास आदि विविध पक्षों का ज्ञान छात्रों को दिया जाए।

खनिज क्षेत्र

खनिज हमारे देश के औद्योगिक विकास के आधार हैं। छात्रो को विभिन्न उद्योगो मे प्रयुक्त होने वाले खनिजो का ज्ञान कराने के पश्चात किसी खनन क्षेत्र का भ्रमण कराना चाहिए। खनिज-खनन क्षेत्र का भ्रमण बहुत मनोरंजक होता है, विशेषत: उन क्षेत्रों का जहा भूगर्भ से अर्थात् भूसतह के नीचे से खनिज निकाले जाते हैं, जैसे कोयला-खनन क्षेत्र। खनिज क्षेत्र के भ्रमण के दौरान यह बताया जाए कि वह खनिज देश के किन-किन उद्योगो का आधार है तथा वह खनिज विशेष रूप से देश के किन-किन भागो को भेजा जाता है।

उद्योग धंधे

छात्रो को देश के आर्थिक विकास में उद्योग धंधों की भूमिका की जानकारी प्रदान की जाए तत्पश्चात किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान का अवलोकन कराया जाए। ऐसे प्रतिष्ठानों के अवलोकनार्थ प्रतिष्ठान के सक्षम अधिकारी का पूर्व आदेश लेना उचित होगा। तदुपरान्त प्रतिष्ठान के ही किसी कर्मचारी को पथ-प्रदर्शक के रूप मे साथ लेकर प्रतिष्ठान के प्रथम चरण से अन्तिम चरण तक की सभी क्रियाओं की जानकारी प्राप्त करें। उस प्रतिष्ठान मे निर्मित सामग्री, प्रतिष्ठान हेतु तकनीकी सहायता, श्रम व आवश्यक कच्चे माल की प्राप्ति आदि की जानकारी छात्रों को दी जाए।

नगरीय संस्कृति

आजकल नगरों का विकास तीव्रगति से हो रहा है। छात्रो को पर्यटन क्षेत्र के किसी बड़े नगर का भ्रमण कराया जाए तथा उस नगर के आवास व सडक के प्रतिरूप पर प्रकाश डाला जाए। वर्तमान समय में नगरों मे व्याप्त समस्याओं का ज्ञान भी छात्रो को प्रदान किया जाए।

स्थानीय विद्यालय

पर्यटन क्षेत्र के किसी सुप्रतिष्ठित विद्यालय के प्रधानाचार्य से मिलकर वहा के छात्रो से पर्यटक छात्रो को बातचीत करने के अवसर प्रदान किए जाए। इसके पूर्व पर्यटक छात्रों को बता दिया जाए कि इन्हें दूसरे छात्रो से किन-किन पहलुओ पर बातचीत करनी चाहिए। छात्रो को एक-दो घटों के लिए स्वतत्र छोड दिया जाए जिससे कि वे अपने नए मित्रो से खुलकर बातचीत कर सके। इस कार्यक्रम के बाद अध्यापक छात्रो से बातचीत का विवरण पूछे तथा अपने छात्रों व दूसरे छात्रो के मध्य तुलना स्थापित करे। यह तुलना इस दृष्टिकोण से की जाए कि छात्रो में परिश्रम, अध्यवसाय, ईमानदारी, कर्तव्य परायणता आदि सद्गुणो का विकास हो।

पर्यटन कार्यक्रम की सीमाएं

उपर्युक्त पर्यटन योजना एक आदर्श प्रस्ताव के रूप में है। सम्पूर्ण प्रस्ताव को व्यवहार में लाना कठिन है क्योंकि स्कूली छात्रों को अधिक दूर तक भ्रमण कराना कदाचित सम्भव न हो। साथ ही प्रत्येक चयनित पर्यटन मे विविध

प्रकार के दर्शनीय स्थलो का विद्यमान होना भी सम्भव नही है। अत: समय व व्यय की सीमाओ पर विचार करते हुए ऐसे क्षेत्र का चुनाव किया जाए जहा यथा सम्भव कई ज्ञान-वर्द्धक दर्शनीय स्थल पाए जाएं। प्रकृति भ्रमण, बाजार सर्वेक्षण, उद्यान भ्रमण, चिड़ियाघर का विज्ञान केन्द्रो के दर्शन आदि भी इस श्रेणी मे आ सकते है।

पर्यटन से छात्रों को लाभ

पर्यटन से छात्रो को बहुमुखी लाभ होगा। छात्रो मे परस्पर सहयोग व प्रेम की भावना बढ़ेगी। यात्रा के दौरान छात्रो को अनेक कठिनाइयां आएगी जिनका अतत: समाधान भी होगा। अत: छात्र सफलतापूर्वक यात्रा करने की कला सीखेंगे जो उनके भावी जीवन में काम आएगा। विभिन्न दर्शनीय स्थल देखने व उनके विषय मे अपने अध्यापक द्वारा व्याख्या सुनने के बाद उनका सामान्य ज्ञान बढ़ेगा।

पर्यटन रिपोर्ट तैयार करना

पर्यटन के बाद छात्र पर्यटन के समय एकत्र की गई सभी सामग्री को बिन्दुवार लिपिबद्ध करेगे। इसके लिए अध्यापक रिपोर्ट लिखने की एक योजना तैयार करेगे तथा विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालने के लिए छात्रो से कहा जाएगा। छात्र उन्ही बिन्दुओं पर एक पर्यटन रिपोर्ट तैयार करेगे इससे छात्रो को अपने शब्दों मे अपनी बात लिखने का अवसर प्राप्त होगा। रिपोर्ट तैयार करने से छात्रों मे सृजनात्मक शक्ति का विकास होगा। छात्रो द्वारा तैयार की गई पर्यटन रिपोर्टो में से जो दो या तीन अच्छी रिपोर्टे हो उन्हें विद्यालय पत्रिका में सचित्र प्रकाशित करे। ऐसे वर्णनात्मक प्रकाशन न केवल छात्रो का उत्साहवर्द्धन करेंगे अपितु दूसरों के लिए भी ज्ञानवर्द्धक साबित होगे।

अध्यापक का दायित्व

पर्यटन मे होने वाले व्यय का कुछ भार सरकार को वहन करना चाहिए। पर्यटन हेतु प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक निश्चित अनुदान तथा प्रत्येक अध्यापक व अन्य कर्मचारी का सम्पूर्ण वास्तविक व्यय सरकार को वहन करना चाहिए। इससे विद्यालयो मे पर्यटन को बढावा मिलेगा तथा हमारे विद्यार्थी पर्यटन से लाभान्वित हो सकेगे। पर्यटन के दौरान विद्यार्थियो की सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि किसी भी प्रकार की दुर्घटना या अप्रिय अनुभव से बचा जा सके। □□

जातिगत पृष्ठभूमि में भाषा अधिगम में लिंगगत अंतर

सुजाता साहा

शोध छात्रा
शिक्षा संकाय (कमच्छा)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - 221005

भाषा अधिगम मे व्यक्तिगत भिन्नताएं पाई जाती हैं। इस विषय पर हुए अध्ययनों का सर्वेक्षण कर अनुसंधानकर्ता ने यह मत प्रकट किया है कि भाषा अधिगम पर लिगगत प्रभावों के सम्बन्ध मे परस्पर विरोधी निष्कर्ष मिलते हैं। इसी पृष्ठभूमि में किए गए प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा रचना सम्बन्धी कुल उपलब्धि तथा लिखित भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों से संबधित उनकी उपलब्धियों की लिंगगत एवं जातिगत चर के आधार पर तुलना करना। सर्वेक्षण विधि से किए गए इस अध्ययन में पाया गया कि यद्यपि हिन्दी भाषा के अधिगम में सामान्य जाति के छात्रों की कुल उपलब्धि भी संतोषजनक नहीं रही तथापि वे अनुसूचित जाति के छात्रो की अपेक्षा श्रेष्ठ रहे। कुल उपलब्धि एवं भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रों की उपलब्धि की दृष्टि से दोनों जाति की छात्राएं अपनी जाति के छात्रों की अपेक्षा बेहतर पाई गई।

भाषा, मानव व्यवहार को अन्य प्राणियों से सर्वाधिक स्पष्ट रूप से अलग करने तथा श्रेष्ठतम स्थान प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ला बारबा (1981) के अनुसार, ''भाषा सज्ञानात्मक विकास की उच्चतम अभिव्यक्ति है।'' वातावरण के समुचित अवबोध एवं चिन्तन में भाषा की भूमिका असदिग्ध है (बोर्फ, 1956 तथा केस, 1976)। शाब्दिक बुद्धि का सम्बन्ध भाषागत कुशलता से है एवं भाषागत कुशलता विशेष रूप से व्यक्ति के भावात्मक पक्ष को दृढ़ करती है। आत्माभिव्यक्ति, सम्प्रेषण, समाजीकरण एवं सामाजिक नियत्रण का प्रमुख माध्यम होने के कारण भाषा स्वत: सभ्यता, संस्कृति तथा शिक्षा का प्रमुख आधार बन जाती है। बोर्फ (1956) का मानना है कि भाषा सस्कृति का कारण है। भाषा एक विद्यालयी विषय मात्र नहीं है। इसका सम्बन्ध जीवन से है। अन्य विषयो का ज्ञान भी इस पर अवलम्बित है। भाषा साहित्य का माध्यम है और साहित्य समाज का दर्पण है। भाषा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना वर्तमान समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है।

भाषा कक्षाकक्ष मे होने वाली सम्प्रेषण प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु है। अतएव इसका उपयुक्त विकास, उचित शिक्षण, एवं प्रशिक्षण अनिवार्य हो जाता है।

प्रत्येक परिनिष्ठित भाषा की अपनी एक व्याकरण व्यवस्था होती है। अनुशासनविहीन उच्छृंखल जीवन की ही भांति व्याकरणविहीन भाषा निस्तेज और निरर्थक होती है। जब परिनिष्ठित भाषा, राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के आधार पर देश की राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण करती है, तो देश की भावात्मक एकता का माध्यम बन जाती है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। पंचम अखिल भारतीय, शैक्षिक सर्वेक्षण (1992) के अनुसार प्राथमिक स्तर के 41.31 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक स्तर के 38 97 प्रतिशत तथा माध्यमिक स्तर के 31.75 प्रतिशत विद्यालयों में प्रथम भाषा के रूप मे हिन्दी का पठन-पाठन होता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी उत्तर प्रदेश की मातृभाषा, शिक्षा का प्रधान माध्यम तथा प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम का अनिवार्य विषय भी है। इसके बावजूद यहां के विद्यार्थियो के हिन्दी लेखन मे विभिन्न प्रकार के दोष

पाए जाते है। प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों का प्रमुख कार्य भाषा विकास को उचित दिशा प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत व्यवस्थित वाक्य प्रयोग, शब्द भण्डार मे वृद्धि, विभिन्न प्रकार के सम्प्रत्ययों का अवबोध, विचारो का आदान–प्रदान, चिन्तन एव समस्या–समाधान की योग्यता बढ़ाना सम्मिलित है। विद्यालय ही बालको को भाषा की अधिकतम उपलब्धि के लिए सुविधा, अभिप्रेरणा एवं निरंतरता प्रदान करते है।

शिक्षक, कक्षाकक्ष मे निरीक्षक, अन्वेषक तथा सर्जक होते हैं अर्थात अधिगम प्रक्रिया को सुगम बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। शिक्षकों के समक्ष भाषा अधिगम को प्रभावशाली बनाना एक महत्त्वपूर्ण चुनौती होती है। सफल भाषा शिक्षण हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक भाषा विकास के सोपानों एव उन्हे प्रभावित करने वाले कारकों से पूर्णत: परिचित हो तथा तदनुरूप शिक्षण प्रक्रियाओ को नियत्रित कर अपने विद्यार्थियो का वांछित विकास करें।

विभिन्न प्रकार के भौतिक, आर्थिक, पारिवारिक, सास्कृतिक, विद्यालयी, लिंगगत एव जातिगत कारक बालक के भाषा अर्जन को प्रभावित करते है। चौम्सकी (1957), लेनबर्ग (1967) एवं मैक्नील (1970) ने मानव के भाषा अधिगम को जन्मजात योग्यता से सबद्ध माना है। लेनबर्ग (1967) ने पाया कि 13 वर्ष तक की आयु व्याकरण और भाषा के नियमो के शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है। इस अवस्था तक उचित अन्त:क्रियात्मक वातावरण प्राप्त न होने पर भाषा का अधिगम अप्रभावी रह जाता है।

भाषा अधिगम मे व्यक्तिगत भिन्नताएं पाई जाती है। अनेक अध्ययनो मे लिंगगत अन्तर पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। देसाई (1974) ने 3 से 5 वर्ष, जबकि राव (1974) ने 2.5 वर्ष से 7 वर्ष की आयु तक भाषा अधिगम में लिंगगत अन्तर नहीं पाया है। इसी प्रकार रवीन्द्र एवं ओड (1978) ने क्रियाओ एवं सर्वनामो के प्रयोग में कोई लिंगगत अन्तर नहीं पाया। दूसरी ओर, सूर्यकान्त (1982) ने पिछड़े सामाजिक स्तर के सन्दर्भ मे लडकों के भाषा विकास को श्रेष्ठतर पाया। किन्तु इसी अध्ययन मे उच्च सामाजिक स्तर के बच्चो के भाषा विकास पर लिग का कोई प्रभाव दृष्टिगत नही हुआ। कुमार (1983) ने लड़कों को श्रेष्ठ पाया, जबकि सरसम्मा (1984) तथा राजपती देवी (1985) ने लडको एव लडकियो के भाषागत निष्पादन मे सार्थक अंतर नही पाया।

मैककरी एवं इरविन (1953), सैम्पसन (1956), बर्को (1958) तथा मेनयुक (1963) के अध्ययनों मे भी सार्थक लिगगत अन्तर नही पाया गया। किन्तु अनेक अध्ययनों के परिणाम भाषा की दृष्टि से लडकियों को तुलनात्मक रूप से श्रेष्ठ सिद्ध करते है। मैफकार्थी (1954) तथा टैम्पलिन (1957) ने लड़कियो को सामान्य भाषा विकास एव वाचिक कौशलो मे लडको की अपेक्षा श्रेष्ठ पाया। मैफकार्थी के अनुसार बच्चो के पालन–पोषण में माता–पिता द्वारा जो लिगगत विभेद किया जाता है वह लडकियों के भाषा विकास के पक्ष मे होता है।

प्रेस्टन (1962) ने चौथी एवं पाचवीं कक्षा मे पढ़ने वाले अमेरिकन एव जर्मन विद्यार्थियों का अध्ययन कर यह पाया कि अमेरिकन लडकियां तो अमेरिकन लडको की तुलना मे श्रेष्ठ होती है पर जर्मन विद्यार्थियो के सन्दर्भ मे लिंगगत अन्तर विपरीत दिशा में पाया गया। इवेयर (1973) ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा कि जर्मनी मे प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षक मुख्यत: पुरुष होते है एव जर्मन संस्कृति मे वाचन को पुरुष की भूमिका के उपयुक्त माना जाता है। फलत: जर्मन लड़के, विद्यालय की शैक्षिक मागो एव अपने समाज द्वारा आरोपित लिगगत भूमिकाओ के मध्य सघर्ष का अनुभव नही करते।

लडकियों का शब्द भण्डार औसत रूप से अधिक पाया गया है (बुक एवं टकर, 1974)। मैकोबी एवं जैक्लिन 1974 के अनुसार ऐसे अध्ययन लड़को तथा लडकियों के मध्य भाषा अर्जन मे गौण प्रवाहात्मक अन्तर प्रकट करते है। भाषा का अर्जन लिंग से स्वतंत्र होता है। यह विश्वास स्थापित नहीं है कि लड़किया रटने एव दुहराने वाले कार्यो मे अधिक सफल होती है तथा लड़के उच्चस्तरीय संज्ञानात्मक कार्यो में श्रेष्ठतर होते है। पर उन्होने यह पाया कि यद्यपि प्रारम्भिक किशोरावस्था तक लड़कों एव लडकियों की वाचिक क्षमता में कोई स्पष्ट अन्तर नही होता, किन्तु 11 वर्ष की अवस्था के बाद लडकियों की इस सबंध मे श्रेष्ठता प्रकट होने लगती है। लड़कियो की भाषा मे अधिक प्रवाह होता है और वे सृजनात्मक लेखन तथा जटिल लिखित सामग्रियों के अर्थ–अवबोध में अधिक

उपलब्धि प्राप्त करती है। यद्यपि मैकोबी एवं जैक्लिन (1974), ने एक समूह के रूप में लड़कियों की वाचिक क्षमता को श्रेष्ठ पाया, फिर भी उन्होंने अपवाद की सम्भावना से इंकार नहीं किया।

ड्वेयर (1974) ने पाया कि लड़के वाचन को लड़कियो की क्रिया मान लेते है। इससे संबधित उनकी अभिप्रेरणा कम हो जाती है।

शैटर, शोर, होडेप, चेल्फिन एव बुण्डी (1978) ने भी लड़कियों की भाषागत श्रेष्ठता की पुष्टि की। हरलॉफ (1978) के अनुसार, यदि समूह के रूप में देखा जाए, तो लडके बोलना सीखने एवं बात करने में लड़कियो से पीछे रहते हैं। मिल्टन एव इनसाइडर (1980) के अनुसार प्रात्यक्षिक गति एवं शुद्धता, आवृत्ति द्वारा याद करने की क्षमता, संख्यात्मक गणना, शाब्दिक प्रवाह तथा अन्य भाषा संबधी कार्यों में लडकियां ज्यादा अंक प्राप्त करती है। लूचिन्स (1981) ने 1875 से 1975 के मध्य सम्पादित किये गए 100 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर बताया कि लड़किया वाणी विकास, स्मृति, शाब्दिक क्षमता एवं कल्पना मे श्रेष्ठतर होती हैं, जबकि लड़के स्थानिक तथा यांत्रिक योग्यताओं में अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ होते है।

भाषा सम्बन्धी हुए विभिन्न अध्ययनो में लिंगगत प्रभावो के संबध में परस्पर विरोधी निष्कर्ष मिलते हैं। अधिकांश अध्ययन लड़कियों को भाषा-अर्जन की दृष्टि से कुशल बताते हैं, कुछ निष्कर्ष लड़कों को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं, जबकि कुछ अन्य अध्ययन इस सबध में कोई लिगगत अन्तर प्रकट नही करते हैं। अतएव हिन्दी की लिखित भाषा रचना के क्षेत्र में लिंगगत अन्तर की उपस्थिति का अध्ययन शिक्षण की दिशा निर्धारित करने हेतु प्रासगिक है। परन्तु लिंगगत अन्तरो की पृष्ठभूमि में मात्र जैविक कारक ही नही, अपितु वातावरण संबंधी कारक भी उत्तरदायी होते हैं। जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारको का अधिक व्यावहारिक प्रभाव होता है। विभिन्न संस्कृतियों द्वारा स्वीकृत लिंगगत भूमिकाओं में पारस्परिक अन्तर इसकी पुष्टि करते हैं। प्रत्यक्ष पुनर्बलन एवं अनुदेशन द्वारा बच्चे अपनी भूमिकाओं में अन्तर करना सीखते हैं (बालसुब्रहमनियन, 1992)। सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के अनुसार माता-पिता जैसे आदर्शों के निरीक्षण द्वारा ही वे अपनी अधिकांश भूमिकाओं को सीखते हैं। किन्तु संज्ञानात्मक सिद्धान्तवादियो का मानना है कि एक बार लिंगगत विचार की दृढ़ता प्राप्त हो जाने पर सास्कृतिक रूप से स्वीकृत लिंगगत भूमिकाओं के अनुरूप व्यवहार करना आत्मपुनर्बलन प्रदान करता है।

बर्नस्टेन (1961) के मत में भाषा के दो सामान्य प्रकार होते हैं-निम्न सामाजिक वर्ग संबंधी एवं मध्यम वर्ग सबंधी। प्रथम प्रकार सरल, दृढ़ एवं आसानी से भविष्य कथन योग्य होता है, जबकि द्वितीय प्रकार अधिक लचीला, विकल्पयुक्त एवं भविष्य कथन के कम योग्य होता है। प्रत्येक बार बोलने या सुनने के दौरान, बालक मे सामाजिक संरचना पुनर्बलित होती है, अथवा उसका सामाजिक परिचय निर्मित होता है। बैरेटर एव एंजेलमेन (1966) का कहना है कि सामाजिक रूप से वंचित बच्चे सिर्फ अपरिपक्व स्तर पर ही चिन्तन नहीं करते हैं, बल्कि उनमे से अनेक चिन्तन ही नहीं करते हैं। वे न तो उत्तर ढूंढते समय प्रश्न पर टिके रहते हैं और न विश्वसनीय तरीके से अपने प्रत्यक्षीकरणों की तुलना ही कर सकते हैं। अनुपयुक्त व्याख्या के अतिरिक्त व्याख्या करने मे अक्षमता एव तत्सम्बन्धी विचार का अभाव उनकी प्रमुख समस्याएं हैं। प्रश्न और उत्तर की प्रक्रिया, जो क्रमबद्ध चिन्तन का केन्द्र बिन्दु होती है, उनके लिए पूर्णत: अपरिचित होती है।

भारतीय विकास योजनाओं की आधारभूत मान्यता सवृद्धि के साथ-साथ समता भी है। किसी प्रकार के भेदभाव पर वैधानिक पाबंदी के बावजूद भारतीय जनता के सामाजिक और आर्थिक जीवन में इसकी निर्णायक भूमिका है। कार्यजगत को ज्ञानजगत से अलग करने की ऐतिहासिक सामाजिक गलती को सही करने के पिछले चार दशकों के प्रयास प्राय: विफल रहे हैं। अनुसूचित जातियां हमारे समाज का अभिन्न अंग हैं। 1971 में कुल जनसंख्या मे इनका भाग 14.6 प्रतिशत था, जो बढ़कर क्रमश: 1981 में 15.74 प्रतिशत तथा 1991 में 16.5 प्रतिशत हो गया (अग्रवाल, 1994)। किन्तु सापेक्षिक रूप से ये शिक्षा के क्षेत्र में आज भी वंचित हैं। वर्ष 1981 में इनकी साक्षरता वृद्धि दर 21 प्रतिशत थी, जो गैर अनुसूचित जातियो की साक्षरता वृद्धि दर (47 प्रतिशत) की तुलना मे आधे से भी कम थी (शर्मा, 1994)।

प्रत्येक भाषा के शिक्षण एव अधिगम का साफल्य उसके उपयोग में हैं। शिक्षण के फलस्वरूप विद्यार्थी जो ग्रहण करता है, आवश्यकता पड़ने पर उसकी उपयुक्त पुनः प्राप्ति की सफलता पर ही भाषा शिक्षण एवं अधिगम का औचित्य निर्भर है। कक्षा सात प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा का सधिस्थल हैं। संबधित अध्ययनों की अपर्याप्तता को देखते हुए वर्तमान अध्ययन को हिन्दी की विकासभूमि मे हिन्दी शिक्षण की प्रभावकारिता एव हिन्दी भाषी विद्यार्थियो के मातृभाषा अधिगम में विद्यमान लिंगगत तथा जातिगत अन्तर पर केन्द्रित किया गया है।

उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा रचना सबंधी कुल उपलब्धि तथा लिखित भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रो से सबधित उनकी उपलब्धियों का लिंगगत एव जातिगत चर के आधार पर तुलना करना है।

परिकल्पनाएं

उपयुक्त उद्देश्य के आधार पर निर्मित शून्य परिकल्पनाएं निम्न थीं :

- ☐ विद्यार्थियों की कुल भाषागत उपलब्धियो के मध्य सार्थक लिंगगत एवं जातिगत अन्तर नहीं होगा।
- ☐ हिन्दी भाषा रचना के चयनित विभिन्न क्षेत्रों मे विद्यार्थियों की उपलब्धियों मे लिंग एवं जाति के आधार पर सार्थक अन्तर नहीं होगा।

अनुसंधान विधि

इस अध्ययन का सम्पादन सर्वेक्षण विधि के अनुरूप किया गया है।

न्यादर्श

वाराणसी नगर मे स्थित केन्द्रीय विद्यालयो की सातवीं कक्षा (सत्र 1993-94) मे अध्ययनरत 600 हिन्दी भाषी विद्यार्थियो मे से यादृच्छिक रूप से चयनित सामान्य जाति के लगभग 20 प्रतिशत विद्यार्थियों, तथा अत्यल्प सख्या मे होने के कारण सभी उपस्थित अनुसूचित जाति के विद्यार्थियो को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया।

तालिका 1

अध्ययन में प्रयुक्त न्यादर्श

	सामान्य जाति	अनुसूचित जाति	योग
छात्र	52	37	89
छात्राएं	53	21	74
सर्वयोग	105	58	163

दत्त संग्रह हेतु प्रयुक्त उपकरण

विशेषज्ञों के परामर्शानुरूप समुचित विधि का पालन करते हुए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार 'हिन्दी भाषा परीक्षण' का निर्माण किया गया। उक्त भाषा परीक्षण, भाषा रचना के निम्नलिखित 10 विशिष्ट क्षेत्रों पर ही केन्द्रित था–(1) विलोम, (2) वाक्य का रूप परिवर्तन, (3) प्रत्यय, (4) अनेकार्थक शब्द, (5) पर्यायवाची शब्द, (6) मुहावरो का वाक्य प्रयोग, (7) अपठित पद्यांश, (8) अपठित गद्यांश, (9) निबन्ध एवं (10) श्रुतलेख। प्रत्येक पद के लिए 5 अक निर्धारित किए गए। प्रथम 9 पदो हेतु 50 मिनट जबकि श्रुतलेख हेतु 10 मिनट का समय निश्चित था।

चयनित न्यादर्श पर उपर्युक्त परीक्षण के प्रशासनोपरान्त पूर्व निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप अंकों की गणना की गई। अंक प्रदान करते समय हस्तलेख की पठनीयता, वर्तनी की शुद्धता तथा विरामचिह्नों के प्रयोग का ध्यान रखा गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण एवं व्याख्या

अंकन के उपरान्त, सामान्य जाति के छात्र एव छात्राओ तथा अनुसूचित जाति के छात्र एवं छात्राओं के कुल प्राप्तांकों तथा भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रो से संबंधित प्राप्तांको की

तालिका 2

सामान्य एवं अनुसूचित जाति के छात्र तथा छात्राओं की कुल भाषागत उपलब्धि में तुलनात्मक अन्तर (पूर्णांक 50)

विद्यार्थियो के समूह		मध्यमान प्राप्तांक	प्राप्तांकों का प्रतिशत	मानक विचलन	सख्या	'टी' का मूल्य
सामान्य जाति	छात्र	24.45	48.9	9.29	52	3.61*
	छात्राएं	30 05	60.1	6.3	53	
अनुसूचित जाति	छात्र	19.65	39.3	9 02	37	3.08*
	छात्राए	27.19	54.38	8.9	21	
सामान्य जाति	छात्र	24 45	48.9	9 29	52	2.45*
अनुसूचित जाति	छात्र	19.65	39.3	9.02	37	
सामान्य जाति	छात्राए	30 05	60.1	6.3	53	1.34
अनुसूचित जाति	छात्राएं	27.19	54.38	8 9	21	

* 05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर

तालिका में प्रदर्शित परिणामों के आधार पर विद्यार्थियो के प्रथम तीन समूहो के सन्दर्भ मे प्रथम परिकल्पना अस्वीकृत होती हैं। दोनो जातियों के सन्दर्भ मे सार्थक लिगगत अन्तर पाया गया। छात्रों की तुलना मे छात्राएं भाषा अधिगम में श्रेष्ठ सिद्ध हुई।

अलग–अलग गणना की गई। तत्पश्चात् परिकल्पना की जांच हेतु 'टी' परीक्षण का उपयोग किया गया।

छात्रों के सन्दर्भ में तो जातिगत अन्तर सार्थक पाया गया, किन्तु छात्राओ के सन्दर्भ में सार्थक जातिगत अन्तर की पुष्टि नही हुई। इस प्रकार, सम्पूर्ण रूप से छात्राए हिन्दी भाषा परीक्षण पर कुल उपलब्धि की दृष्टि से श्रेष्ठतर पाई गई। सेलिगसन (1994) के अनुसार भी एक औसत स्त्री भाषा प्रयोग के सभी पहलुओ पर बेहतर निष्पादन प्रकट करती है। जातिगत अन्तर सम्बन्धी परिणाम यह सकेत करते हैं कि अनुसूचित जाति के छात्रों की तुलना में सामान्य जाति के छात्रों का भाषा अधिगम कम दोषपूर्ण है। कुमार (1983) ने भी प्राथमिक कक्षाओ के उच्च जाति के विद्यार्थियों की वाचिक भाषा को श्रेष्ठतर पाया।

तालिका 3

सामान्य एवं अनुसूचित जाति के छात्र तथा छात्राओं की भाषा रचना के विभिन्न पक्षो से सबंधित उपलब्धि में तुलनात्मक अन्तर 'टी' मूल्य के रूप में

पद स.	भाषा रचना के विभिन्न पक्ष	सामान्य जाति के छात्र तथा छात्राए	अनुसूचित जाति के छात्र तथा छात्राएं	सामान्य तथा अनुसूचित जाति के छात्र	सामान्य तथा अनुसूचित जाति की छात्राएं
1	विलोम	2.65*	3.15*	2 33*	1.11
2.	वाक्य का रूप परिवर्तन	2.64*	2 71*	1 47	0 46
3.	प्रत्यय	2.04*	3.12*	1.79	0.07
4.	अनेकार्थक शब्द	0 71	2.86*	2.11*	0 59
5.	पर्यायवाची शब्द	4.53*	1.46	1.42	9 42*
6.	मुहावरों का वाक्य प्रयोग	1.00	0.46	1.25	2.26*
7.	अपठित पद्यांश	0.29	0.08	0 81	0.61
8.	अपठित गद्याश	2.27*	1.91	9.22*	1.53
9	निबन्ध	4.8*	4.50*	1.32	1.00
10.	श्रुतलेख	1.44	4.43*	1.52	1 29

* 0 5 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर

तालिका 3 से यह स्पष्ट होता है कि भाषा रचना के विभिन्न पक्षों पर जातिगत अन्तर की अपेक्षा लिगगत अन्तर अधिक उभर कर सामने आया है। उक्त पदो पर सामान्य जाति के छात्रों एवं छात्राओ के मध्यमान प्राप्तांकों की तुलना करने पर यह ज्ञात हुआ कि सिर्फ अपठित पद्यांश के पद पर छात्राए (माध्य अंक = 2.10), छात्रो (माध्य अंक = 2.18) से नाम मात्र के अन्तर से पीछे रहीं। किन्तु अन्य सभी पदों पर ये छात्रों से श्रेष्ठतर रही। छात्राओ के सन्दर्भ मे यह तुलनात्मक श्रेष्ठता विलोम, वाक्य का रूप परिवर्तन, प्रत्यय, पर्यायवाची शब्द, अपठित गद्यांश एवं निबन्ध के पदो पर सार्थक सिद्ध हुई।

अनुसूचित जाति के छात्र एवं छात्राओं के मध्यमान प्राप्तांको की गणना के उपरान्त छात्राएं केवल मुहावरो के वाक्य प्रयोग (2.05 < 2.22) एवं अपठित पद्यांश (1.90 < 1.99) के पद पर छात्रों से अत्यल्प अन्तर से पीछे रही, जो 'टी' परीक्षण द्वारा सार्थक सिद्ध नहीं हुआ। विलोम वाक्य का रूप परिवर्तन, प्रत्यय, अनेकार्थक शब्द, निबन्ध तथा श्रुतलेख पर छात्राओं के पक्ष में सार्थक अन्तर प्राप्त हुआ।

मध्यमान अकों के अनुसार सभी पदों पर छात्रो के संदर्भ में जातिगत अन्तर सामान्य जाति के पक्ष में रहा। किन्तु 'टी' परीक्षण द्वारा मध्यमान प्राप्तांकों के मध्य अन्तर की सार्थकता की जांच करने पर यह अन्तर विलोम, अनेकार्थक शब्द एवं अपठित गद्यांश के सन्दर्भ मे सार्थक रहा। दोनों कोटि के विद्यार्थियों की उपलब्धि पर्यायवाची शब्द, अपठित पद्यांश, अपठित गद्याश, निबन्ध एवं श्रुतलेख मे 50% से भी निम्न पाई गई। वाक्य के रूप परिवर्तन, अनेकार्थक शब्द एव मुहावरो के वाक्य प्रयोग के क्षेत्र मे अनुसूचित जाति के छात्रो की उपलब्धि (क्रमशः मध्यमान प्राप्तांक = 2.34, 1.92 एवं 2.22) विशेष रूप से निम्न रही।

दूसरी ओर छात्राओ के समूह में अनुसूचित जाति की छात्राएं मध्यमान प्राप्तांक की दृष्टि से अनेकार्थक शब्द के पद पर श्रेष्ठ (3.38 > 3.10) रहीं। किन्तु सार्थक अन्तर मात्र पर्यायवाची शब्द एव मुहावरों के वाक्य प्रयोग पर सामान्य जाति की छात्राओं के पक्ष मे रहा। अपठित पद्याश एव अपठित गद्यांश के पद पर दोनों जाति की छात्राओ की मध्यमान उपलब्धि (क्रमशः सामान्य जाति = 2.10, 2.32 एव अनुसूचित जाति = 1 90, 1 86) कम रही।

सम्पूर्ण रूप से छात्राएं शब्द भण्डार, वाक्य के रूप परिवर्तन, विराम चिह्नो के समुचित प्रयोग एवं सुगठित विचाराभिव्यक्ति में छात्रों से अधिक कुशल पाई गईं। कुल उपलब्धि की दृष्टि से अनुसूचित जाति की छात्राएं, अनुसूचित एव सामान्य जाति के छात्रों से श्रेष्ठतर (21.17 > 24.45), किन्तु सामान्य जाति की छात्राओ से पीछे (27.19 < 30.05) रहीं। सर्वाधिक शोचनीय दशा अनुसूचित जाति के छात्रों (मध्यमान प्राप्ताक = 19.65) की पाई गई।

निष्कर्ष

परिणामो के विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि सामान्य जाति के छात्रों की कुल उपलब्धि (48.9%) भी सन्तोषजनक नहीं रही, तथापि वे अनुसूचित जाति के छात्रों (39.30%) की अपेक्षा श्रेष्ठ रहे। सामान्य जाति की छात्राओं की उपलब्धि सन्तोषजनक (60.1%) है जबकि अनुसूचित जाति की छात्राओं की उपलब्धि औसत स्तरीय (54 38%) रही। किन्तु दोनो की उपलब्धि मे सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। कुल उपलब्धि एव भाषा रचना के विशिष्ट क्षेत्रो की उपलब्धि की दृष्टि से दोनो जाति की छात्राए अपनी जाति के छात्रो की अपेक्षा बेहतर पाई गई।

अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा अधिगम में छात्राओं के पक्ष में लिगगत अन्तर पाया जाता है। जातिगत अन्तर विशेष रूप से छात्रों के सन्दर्भ मे ही प्राप्त हुआ। प्रस्तुत अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों को दिए जा रहे भाषा शिक्षण मे सुधार वांछनीय है। परिणामों के आलोक में यह कहना समीचीन होगा कि सीमित क्षेत्र एवं न्यादर्श के इस अध्ययन का विस्तार भाषा के अन्य विविध पक्षों के सन्दर्भ में करना आवश्यक है। छात्राओ के पक्ष में लिंगगत अन्तर की पृष्ठभूमि में सामाजिक-आर्थिक स्थिति, घरेलू वातावरण एवं मनोवैज्ञानिक कारको का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। प्राप्त परिणामों के अनुरूप भाषा शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का परिमार्जन शिक्षा जगत की एक ज्वलंत आवश्यकता की पूर्ति मे सहायक सिद्ध होगा। □□

संदर्भ

1. अग्रवाल वाई 1994. ''अनुसूचित जातियों में साक्षरता की प्रवृत्तियां'' **परिप्रेक्ष्य** वर्ष 1, अक 2, अगस्त.
2. बेरेटर, जी. एण्ड एंजेलमैन, एस. 1966 ''ऐन एकेडेमिकली ओरिन्टेड प्री स्कूल फार कल्चरली डिप्राइव्ड चिल्ड्रेन'', इन एफ एम हेचिगर (एड.) **एजूकेशन आफ द डिसएडवाटेन्ड**, न्यूयार्क : डबल डे.
3. बर्को, जे. 1958 ''द चाइल्डस लर्निंग ऑफ इंगलिश मारफालाजी'' **वर्ड** 14.
4. बर्नस्टेन, बी. 1961 ''सोशल स्ट्रक्चर, लैंग्वेज एण्ड लर्निंग'' **एजूकेशनल रिसर्च**, 3.
5. ब्रूक, एम.एवं टकर, जी. आर. 1974 'सोशल डिफरेन्सेस इन द एक्जिबीशन ऑफ स्कूल लैंग्वेज'' **मेरिल पामर क्वार्टरली** 20.
6. बुच, एम. बी. 1978–83 **थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन**, नई दिल्ली : पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट ऑफ एन. सी. ई. आर. टी.
7. बूच, एम. बी. 1983–88 **फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन**, वोल्यूम 1, नई दिल्ली : पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट ऑफ एन. सी ई. आर. टी
8. चौम्सकी, एन. 1957, **सिन्टेक्टिक स्ट्रक्चर्स**, द हेग : मान्टन.
9. ड्वेयर, सी. ए. 1973, ''सैक्स डिफरेन्सेस इन रीडिंग : एन इवेल्यूएशन एण्ड ए क्रिटिक ऑफ करेन्ट थियरीज'' **रिव्यू ऑफ एजूकेशनल रिसर्च** 43.
10. हरलॉक, ई. बी. 1978, **चाइल्ड डेवलपमेन्ट** टोकियो : मैकग्रा हिल कोगाकुशा लिमिटेड.
11. केस, जे. एफ. 1976, **साइकोलिंग्विस्टिक्स** न्यूयार्क : एकेडिमिक प्रेस.
12. ला बारबा, आर. सी. 1981, **फाउण्डेशन्स ऑफ डेवलपमेन्टल साइकॉलॉजी** न्यूयार्क : एकेडेमिक प्रेस.
13. लूचिन्स, एच 1981, ''वूमेन एण्ड मैथेमैटिक्स : फैक्ट एण्ड फिक्शन'', **मैथेमैटिकल मंथली**, जून–जुलाई.
14. मैकोबी, ई.ई एण्ड जैक्लिन, सी. एन. 1974, **द साइकॉलॉजी ऑफ सेक्स डिफरेन्सेस** स्टैनफोर्ड, कैलिफोर्निया : स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
15. मैककार्थी, डी. 1954, ''लैंग्वेज डेवलपमेन्ट इन चिल्ड्रेन'' इन एल कारमाइकेल (एड.) **मैनुअल ऑफ चाइल्ज साइकॉलॉजी** (सेकण्ड एडीशन) न्यूयार्क : बिली.
16. मैकरी, डब्ल्यू. एच. एण्ड इरविन, ओ. सी. 1953, ''ए स्टडी ऑफ इन्फैन्ट्स'' **जर्नल ऑफ स्पीच एण्ड हियरिंग डिसार्जस**, 18.
17. मैक्नील, डी. 1970, ''द डेवलपमेन्ट ऑफ लैंग्वेज'' इन. पी. एच. मसेन (एड.) **करमाइकेल्स मैनुअल ऑफ चाइल्ड साइकॉलोजी** न्यूयार्क : विली.
18. मेनयुक, पी. ए. 1963, ''ए प्रीलिमिनेरी इवोल्यूशन ऑफ ग्रामेटिकल कैपेसिटी इन चिल्ड्रेन'' **जर्नल ऑफ वर्बल लर्निंग एण्ड वर्बल बिहेवियर** 2.
19. मिल्टन, एच. एल. एण्ड इनसाइडर, एफ. डब्ल्यू. 1980, **डिफरेन्शियल साइकॉलॉजी** मानटरसी, सी. ए. ब्रोड्स.
20. प्रेस्टन, आर. सी. 1962, ''रीडिंग एचीवमेन्ट ऑफ जर्मन एण्ड अमेरिकन चिल्ड्रेन'' **स्कूल एण्ड सोसायटी**, 90.
21. एन. सी. ई. आर. टी. (1992) **फिफ्थ ऑल इंडिया एजुकेशनल सर्वे**, वोल्यूम 1, नई दिल्ली।
22. सैम्पसन, ओ. सी. 1956, ''ए स्टडी ऑफ स्पीच डेवलपमेन्ट इन चिल्ड्रेन ऑफ 18–30 मंथ्स'' **ब्रिटिश जर्नल ऑफ एजूकेशनल साइकॉलॉजी**, 26.

23. शेटर, एफ. एफ. शोर, ई. होडेप, आर. चेल्फिन, एस. एण्ड बुण्डी, सी. 1978, ''डू गर्ल्स टॉक अर्लियर ? मीन लेन्थ ऑफ अटरेन्स इन टॉडलर्स'' **डेवलपमेन्टल साइकॉलॉजी**, 14.

24. सेलिगसन, सूसन 1994, ''व्हाट वूमेन डू बेटर'' **रीडर डाइजेस्ट** जून.

25. शर्मा, सुभाष 1994, ''अनुसूचित जातियों की शिक्षा'' **परिप्रेक्ष्य** वर्ष 1, अंक 1, अप्रैल, 1994.

26. टेम्पलिन, एम. सी. 1957, ''सर्टेन लैंग्वेज स्किल्स इन चिल्ड्रेन'' **इन्स्टीट्यूट ऑफ चाइल्ड वेलफेयर मोनोग्राफ**, नं. 36.

27. वोर्फ, बी. एल. 1957, **लैंग्वेज, थॉट एण्ड रिएलिटी** न्यूयार्क : जॉन विली एण्ड सन्स.

धर्म-निरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति विभिन्न समूहों की अभिवृत्ति

श्रीकान्त मिश्र

म. नं. 5/45, जोगराज स्ट्रीट,
फर्रुखाबाद
उत्तर प्रदेश –209625

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा शिक्षकों, छात्रों तथा अभिभावकों की धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा की अभिवृत्ति के बीच जाति, धर्म, क्षेत्र और लिग के आधार पर सहसंबंधों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर अनुसंधानकर्ता ने यह मत प्रकट किया है कि आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में विकसित नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम द्वारा समाज में धर्मनिरपेक्षता के संप्रत्यय को प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता है।

किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। राष्ट्र धार्मिक भी हो सकते हैं और धर्मनिरपेक्ष भी। ऐसी स्थिति में दोनो प्रकार के राष्ट्रों के लिए शिक्षा समान हो या अलग-अलग अर्थात् शिक्षा को धर्म से जोड़ा जाए या उसे धर्मनिरपेक्ष रूप प्रदान किया जाए? प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित यह हो रहा है कि धर्म के नाम पर अधिकतर विघटन ही हुआ है। ऐसी शिक्षा जो विघटनकारी हो कभी स्वीकृत नही हो सकती। आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र और राष्ट्रनायक एकता और अखण्डता की बात अवश्य करता है किन्तु ऐसा हो नही पाता। जब तक भावनात्मक रूप से हम एक नही होगे तब तक व्यावहारिक रूप से एक होना असम्भव है। इस निमित्त हमें सर्वप्रथम धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के अनुसार चलना होगा। धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के सम्प्रत्य को जानने से पूर्व हमे धर्मनिरपेक्ष शब्द का तात्पर्य समझना होगा। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईंसेज (1950) का मत है कि "धर्मनिरपेक्षता ज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसे स्वतत्र चिन्तन को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास है जो कि अलौकिक विचारों से सर्वथा मुक्त हो।" नैतिकता शब्द नीति से संबधित है। इसमे व्यवहार का भाव सन्निहित है। पियाजे (1932) के कथनानुसार नैतिकता का तात्पर्य नियमों की व्यवस्था से है तथा नैतिकता का सार वह है जिनके अतर्गत व्यक्ति प्राप्त करने हेतु उन गुणो को खोजता है जो इन नियमों से सम्बद्ध हो। अतएव "धर्मनिरपेक्ष नैतिकता उन नैतिक मूल्यों के अनुसार आचरण करना है जिसके द्वारा किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष का पक्षपात न हो, जो सभी पन्थों के लोगों द्वारा स्वीकार्य हो और सामाजिक उत्थान के साथ-साथ राष्ट्रीय प्रगति में भी सहायक हों।" यह सिद्धान्त सदियों से भारत में व्याप्त रहा है और आज के युग मे तो यह भारतीय समाज का मूलाधार है।

आज सर्वत्र अनुशासनहीनता एव अनैतिक वातावरण फैल रहा है, ऐसे में उत्तर प्रदेश सरकार ने हाई स्कूल की कक्षाओ मे नैतिक शिक्षा को एक अनिवार्य विषय बना दिया है किन्तु परीक्षा परिणाम मे इसका कोई महत्त्व नही है। नैतिक शिक्षा मे अक प्रदान न करके मात्र स्थानीय शिक्षक द्वारा ग्रेड प्रदान किए जाते हैं और परीक्षाफल नैतिक शिक्षा से निरपेक्ष रहता है। शिक्षक, छात्र एव अभिभावक इस विषय से उदासीन दृष्टिगोचर हो रहे हैं जिसका प्रमाण निरन्तर अनैतिकता की वृद्धि है। इस समस्या को ध्यान मे रखकर शोधकर्ता ने शिक्षा से जुडे विभिन्न महत्त्वपूर्ण वर्गो (शिक्षको, छात्रो एवं अभिभावको) की नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और उन्हीं की धर्मनिरपेक्ष नैतिकता पर अध्ययन करने का साहस किया।

माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश की विज्ञप्ति संख्या-परिषद् 9/930 दिनाक 15-2-82 द्वारा हाईस्कूल पाठ्यक्रम में सन् 1982-83 से छात्रों के लिए अनिवार्य विषय के रूप में लागू नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को इस शोध कार्य में व्यवहार में लाया गया है।

प्रस्तुत शोध में प्रशिक्षित स्नातक स्तर (एल. टी. ग्रेड) के शिक्षकों, हाई स्कूल के छात्रों और उन्ही के अभिभविको की नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और उनकी धर्मनिरपेक्ष नैतिकता देखी गई। अभिवृत्ति से यहां तात्पर्य कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्यो से संबंधित सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों की मात्रा (थर्सटन, 1946) से है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध कार्य के उद्देश्य रहे–

- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति शिक्षको की अभिवृत्ति के बीच जाति, धर्म, क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) और लिंग के आधार पर संबंधों का अध्ययन करना।
- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति के बीच जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग के आधार पर संबध का अध्ययन करना।
- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति का जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय एवं लैंगिक आधार पर संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु इन शून्य परिकल्पनाओं को अपनाया गया है :

- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति के बीच संबंध में जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग के आधार पर कोई अन्तर नहीं है।
- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति के मध्य संबंध मे जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग के अनुसार कोई अन्तर नहीं है।
- धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति के बीच संबध मे जाति, धर्म, क्षेत्र एवं लिंग के आधार पर कोई अन्तर नहीं है।

अध्ययन प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन मे विवरणात्मक सर्वेक्षण प्रविधि (Descriptive survey method) को तीनो समूहो से सग्रह के लिए अपनाया गया।

उपकरण

इन दो स्वनिर्मित उपकरणों को अध्ययन हेतु प्रशासित किया गया :

धर्मनिरपेक्ष नैतिकता परीक्षण (Secular morality test—SMT) : इस परीक्षण मे दो विकल्प (हां/नहीं) हैं। इसको अनुसंधानकर्ता ने 100 छात्रो पर पूर्व परीक्षण करके निर्मित तथा मानकीकृत किया है। इसकी परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि (Test retest method) द्वारा विश्वसनीयता .71 पाई गई तथा दो विरोधी समूहों पर प्रयुक्त क्रास वैधता हेतु ही t का मान 6.84 आया जो .01 स्तर पर सार्थक है अतः क्रास वैधता सन्तोषजनक है।

नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति अभिसूची (Attitude Towards Moral Education Inventory–ATME) : इस मापनी को अनुसन्धानकर्ता ने पाच बिन्दुओं पर लिकर्ट टाइप अनुसार निर्मित एवं मानकीकृत किया है। दसवीं कक्षा के 100 छात्रों पर किए गए परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि आधार पर रैंक डिफरेन्स कोरिलेशन कोईफिसिएन्ट सूत्र से विश्वसनीयता .70 तथा दो परस्पर विरोधी समूहों पर प्रयुक्त क्रास वैधता हेतु t का मान 4.29 प्राप्त हुआ जो .01 स्तर पर सार्थक है। अतः क्रास वैधता सन्तोषजनक पाई गई।

न्यादर्श

फर्रुखाबाद जनपद के कुल हाई स्कूल और इन्टरमीडिएट विद्यालयो मे से 10% विद्यालयों को स्तरीय

यादृच्छिक विधि (Stratified Random Method) से चयनित करके इनके दसवीं कक्षा के छात्र-छात्राओं, इन्हीं के अभिभावकों तथा उनको पढ़ाने वाले अध्यापकों को प्रतिदर्श हेतु लिया गया। इस प्रकार 500 विद्यार्थी, उनके 500 अभिभावक और 140 अध्यापक शोध के विषयी के रूप में आए।

आंकड़ों का विश्लेषण

प्रत्येक समूह मे धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के मध्य सबंध ज्ञात करने के लिए पियरसन सहसंबंध गुणांक का मान ज्ञात करके परिणाम की सार्थकता की जाच की गई जिसे सारणी में विधिवत दर्शाया गया है।

सारणी

शिक्षकों, छात्रों और अभिभावकों की धर्मनिरपेक्ष नैतिकता और नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के मध्य जाति, धर्म, क्षेत्र व लिग के आधार पर सह संबंध गुणांकों का मान

क्रमांक	समूह	आधार	उपसमूह	N	df	r
1.	शिक्षक	जातिगत	उच्च	102	100	.28*
			पिछडी	24	22	.50**
			अनुसूचित	14	12	.49
		धर्मगत	हिन्दू	132	130	.15
			मुस्लिम	8	6	.36
			सिख	(कोई नहीं)	–	–
		क्षेत्रगत	शहरी	22	20	15
			ग्रामीण	118	116	.18
		लिंग	पुरुष	140	138	.10
			स्त्री	(कोई नहीं)	–	–

* .01 स्तर पर सार्थक

** 05 स्तर पर सार्थक

2.	छात्र	जातिगत	उच्च	308	306	.21*
			पिछड़ी	135	133	.05
			अनुसूचित	57	55	.09
		धर्मगत	हिन्दू	440	438	.39*
			मुस्लिम	45	43	19
			सिख	15	13	.12
		क्षेत्रगत	शहरी	80	78	.01
			ग्रामीण	420	418	.23*
		लिंग	छात्र	359	357	.05
			छात्राएं	141	139	.05
3.	अभिभावक	जातिगत	उच्च	308	306	12
			पिछडी	135	133	.12
			अनुसूचित	57	55	.24
		धर्मगत	हिन्दू	440	438	.04
			मुस्लिम	45	43	.33*
			सिख	15	13	.19
		क्षेत्रगत	शहरी	80	78	.31
			ग्रामीण	420	418	04
		लिंग	पुरुष	330	328	.05
			स्त्री	170	168	.23*

* .01 स्तर पर सार्थक

** .05 स्तर पर सार्थक

आंकड़ों के विश्लेषण की व्याख्या

वर्णित सारणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति एवं धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के मध्य सहसबंध शिक्षकों मे उच्च जाति और पिछड़ी जाति में, छात्रो में उच्च जाति, हिन्दू धर्मावलम्बी व ग्रामीण अचल के निवासियों में और अभिभावकों में मुस्लिम, शहरी व स्त्रियों के समूह में सार्थक रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार इस अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि इन्हीं समूहों की नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता दोनों मे से एक चर के घटने या बढ़ने पर दूसरे चर में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी होती है। इन सांख्यिकीय परिणामों के आधार पर पूर्वनिर्मित परिकल्पनाएं आंशिक रूप से ही स्वीकार की जा सकती हैं।

उच्च और पिछड़ी जाति के शिक्षको में दोनो चरो के मध्य सार्थक सहसंबंध इसलिए हो सकता है कि उच्च जाति के लोग प्रारम्भ से ही अधिक शिक्षित रहे हैं तथा समाज में इनका सर्वोच्च स्थान रहा है। अब समय के परिवर्तन के साथ-साथ समाज में परिवर्तन होने के कारण पिछड़ी जाति वाले भी सामाजिक दृष्टिकोण से आगे बढ़ रहे हैं। इसके विपरीत अनुसूचित जाति में आज भी शिक्षितों का प्रतिशत बहुत न्यून है। अत: संभव है कि अशिक्षा और मानसिक रूप से पिछड़े होने के फलस्वरूप उनमें नैतिक शिक्षा और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता मे सार्थक सहसंबंध प्राप्त नहीं हुआ। उच्च जाति के छात्रों में सहसंबंध का पूर्व कथित कारण यहाँ पर भी तर्कसम्मत उचित दृष्टिगत होता है।

हिन्दू छात्रों मे दोनो चरों के मध्य सार्थक सहसंबंध होने का कारण हिन्दू धर्म की विशालता, व्यापक दृष्टिकोण एवं सहिष्णुता प्रतीत होती है। ग्रामीण छात्रों के समूह में दोनों चरों के मध्य सार्थक सहसंबध इसलिए प्राप्त हुआ कि गाव का वातावरण शहर की तुलना में व्यावहारिक रूप से आज भी मूल्यों पर आधारित है। शहरी लोगों की अपेक्षा ग्रामवासी अधिक साधारण और छलप्रपंच रहित जीवन यापन करते हैं। मानवीय मूल्यो पर आधारित शिक्षा उन्हे बचपन से ही घर के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा प्राप्त होती रहती है।

अभिभावकों के सन्दर्भ में अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि मुस्लिम अभिभावकों में नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के मध्य सार्थक सहसंबध है। चूंकि मुसलमानों मे जो पुराने लोग हैं वे आज के नवयुवकों और किशोरों की अपेक्षा अधिक ईमानदार और समझदार हैं। प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता संग्राम में भी अनेक मुसलमानों ने परस्पर द्वेषभाव से रहित होकर देश एवं समाज की सेवा की है। यही कारण है कि मुस्लिम छात्रो में सार्थक सहसंबंध नही पाया गया जबकि मुस्लिम अभिभावकों में प्राप्त हुआ है। अभिभावकों मे शहरी लोगो में भी सार्थक सहसंबंध आने का संभावित कारण यह है कि अभिभावक छात्रों से कम से कम डेढ़ पीढी आगे हैं। वे शहरों में रहते अवश्य है किन्तु गांवो से ही स्थानान्तरित होकर शहरों में बसी इस पुरानी पीढ़ी को मानव मूल्य और भारतीय सस्कृति की शिक्षा विरासत में मिली है। उनके बच्चे शहरों में जन्म लेने और पलने के कारण पूर्ण रूप से शहरी भौतिकवादी सस्कृति से आवृत्त हैं जिसके कारण शहरी अभिभावकों में ही दोनों चरों के बीच सार्थक सहसबध आया।

स्त्री अभिभावकों में दोनो चरों के बीच सार्थक सहसंबंध आने का कारण स्पष्ट है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अधिक परोपकारी और दयालु स्वभाव की होती हैं। घर में रहने के कारण अवकाश का समय वे स्वाध्याय, सत्सग में व्यतीत करती हैं जिससे कि उनके अंदर नैतिकता की भी वृद्धि होती है और दान, पुण्य, परोपकार करने के कारण वे धर्म व जाति की उपेक्षा करके हर व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखती हैं। इसीलिए उनके अंदर नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के मध्य सार्थक सहसबंध परिलक्षित हुआ।

निर्मित परिकल्पनाओं की स्थिति

उपर्युक्त परिणामों के आधार पर सिद्ध हो चुका है कि शिक्षक, छात्र और अभिभावक इन तीनों में से प्रत्येक समूह में जाति, धर्म, क्षेत्र और लिंग के आधार पर दोनो

चरो के मध्य अन्तर है। अत: हमारी तीनो पूर्वकल्पित शून्य परिकल्पनाए यहां पर अमान्य सिद्ध हो चुकी है क्योकि प्राप्त परिणामो द्वारा किसी भी शून्य परिकल्पना की पुष्टि नहीं हो सकी है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में जब कि देश धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के संकट से गुजर रहा है प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम शिक्षकों एवं शिक्षाधिकारियों के लिए नैतिक शिक्षा के स्वरूप और उसे लागू करने के तरीके मे सहायक सिद्ध हो सकते हैं। मुख्यत: उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद, इलाहाबाद के लिए क्योंकि वर्तमान अध्ययन इस परिषद् से सम्बद्ध विद्यालयों पर ही आधारित था। अत. इसमे सुधार और परिवर्तन की व्यापक आवश्यकता है जिससे कि संबधित छात्रों का व्यवहार समाज की आशा के अनुरूप हो सके। □□

सदर्भ

1. पियाजे, जीन (1932) : **द मारल जजमेन्ट रीडिंग इन कन्टेम्परारी मेटा इथिक्स**, प्रेन्टिस हाल इन्क., न्यू जर्सी
2. थर्सटन, एल. एल. एन. चेव (1946) : **मेजरमेन्ट ऑफ एटीट्यूड**, अमर ई सोसायटी, (पृ. 52)
3. उत्तर प्रदेश सरकार (1982) : विज्ञप्ति सख्या 9/930 माध्यमिक शिक्षा परिषद्, राजकीय प्रकाशन, लखनऊ दिनाक 15-2-1982.

पूर्व-प्राथमिक शिक्षक : वस्तुस्थिति एवं सुधार

विभा निगम

वरिष्ठ प्रवक्ता
शिक्षा संकाय
डी.ई.आई., दयालबाग
आगरा-5

पिछले कुछ वर्षों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इस स्तर पर बच्चों के समन्वित विकास के लिए उनके आहार, आवास, औषधि तथा व्यावहारिक शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना अत्यावश्यक समझा गया है। अतः इस स्तर की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा इससे संबंधित अपेक्षाओं का ज्ञान रखने वाले सुप्रशिक्षित शिक्षक ही इस अनुष्ठान में अपना समुचित योगदान दे सकते हैं। इन्हीं आयामों को ध्यान में रखते हुए इस लेख में पूर्व-प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही वस्तुस्थिति में सुधार लाने हेतु कुछ सुझाव भी दिए गए हैं।

देश के शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने का उत्तरदायित्व मूलतः अध्यापकों का है। शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। शिक्षक ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य का संरक्षक है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है–

''अपेक्षित शिक्षा के पुनर्निर्माण मे सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व शिक्षक, उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षिक योग्यताए, उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण और उसकी स्थिति, जो वह विद्यालय में ग्रहण करता है, ही है। विद्यालय की प्रतिष्ठा और समाज के जीवन पर उसका प्रभाव निःसन्देह उन शिक्षको पर ही निर्भर है, जो उस विद्यालय मे कार्य कर रहे हैं।''

यो तो शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर योग्य, अनुभवी एवं मूल्यवान शिक्षकों की आवश्यकता है, किन्तु पूर्व-प्राथमिक स्तर सम्पूर्ण शिक्षा के आधार स्तम्भ एवं नींव का कार्य करता है। ब्लूम, ग्रीन तथा एलिज़ाबेथ (1969), मुरलीधरन (1969), पियाजे (1984), दास तथा गर्ग (1985) आदि के द्वारा किए गए अनुसन्धानों द्वारा भी यह तथ्य प्रकाश में आया है कि मानव का प्रारम्भिक काल उसके भावी जीवन के निर्माण की आधारशिला है। अतः इस स्तर पर विशेष योग्यता एवं गुणों वाले शिक्षक ही अपेक्षित हैं, जो बालक के सन्तुलित एवं समुचित विकास हेतु प्रारम्भ से ही उचित शैक्षिक वातावरण प्रदान कर सकें, और उचित शिक्षण द्वारा देश की प्रगति एवं कल्याण में अपना योगदान दे सकें। यह तभी पूर्णतः सम्भव है जब पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्यापन कार्य कर रहे शिक्षकों को सरकार तथा समाज की ओर से अच्छा वेतन तथा अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाए, जिससे अच्छे शिक्षक इस व्यवसाय की ओर अधिक आकृष्ट हो सके। किन्तु आज वस्तु-स्थिति कुछ विपरीत जान पड़ती है। आज इस स्तर पर कार्य कर रहे शिक्षकों के वेतन, शैक्षिक योग्यताओ, शिक्षकों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं, कार्य अवधि तथा कार्य के स्तर आदि मे अत्यधिक असमानता दृष्टिगोचर होती हैं। अतः विभिन्न विद्यालयो में इस स्तर पर कार्य कर रहे शिक्षकों की वास्तविक स्थिति जानना नितान्त आवश्यक हो जाता है। यह शोध कार्य इसी प्रकार के अध्ययन की एक कड़ी है।

हालांकि इस स्तर पर विन्बर्ग (1981), लीजियाक (1986), सेशम्मा तथा करनम (1986), चार्ल्स (1990), यादव (1993) आदि के द्वारा शोध कार्य प्रस्तुत किए गए हैं, किन्तु वे अधिकांशतः विदेशी परिस्थितियों से सम्बद्ध हैं। भारत में इस स्तर पर केवल शिक्षकों की स्थिति से संबंधित शोध कार्य उपलब्ध नहीं हो सका है। इस पृष्ठभूमि में यह अध्ययन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- पूर्व-प्राथमिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की वास्तविक स्थितियों को ज्ञात करना।
- सरकारी तथा गैर-सरकारी विद्यालयो में कार्यरत शिक्षकों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अध्ययन के आधार पर शिक्षकों की स्थिति में सुधार लाने हेतु सुझाव देना।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध कार्य में न्यादर्श के चयन हेतु 'आकस्मिक विधि' का प्रयोग किया गया। पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्यापन कार्य कर रहे शिक्षकों की स्थिति ज्ञात करने हेतु आगरा नगर के 60 विद्यालयों का चयन किया गया। इस चयन में प्रशासनिक दृष्टिकोण को आधार बनाया गया है। इस आधार पर सरकारी, निजी मान्यता प्राप्त, निजी अमान्यता प्राप्त तथा मिशनरी प्रयासों द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों को चयनित किया गया। उन विद्यालयों को निजी मान्यता प्राप्त विद्यालयों की श्रेणी में रखा गया है, जिनमें उच्च कक्षाओ के साथ पूर्व-प्राथमिक कक्षाए भी चलती हैं। ऐसा इसलिए किया गया कि कुछ विद्यालय उच्च कक्षाओं के लिए तो मान्यता प्राप्त हैं परन्तु पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं हेतु उन्हें मान्यता प्राप्त नहीं है। शोधकर्त्री के न्यादर्शीय विद्यालयों में ऐसे विद्यालयों की संख्या 20 रखी गई। इसी प्रकार निजी अमान्यता प्राप्त 20 विद्यालय, 19 मिशनरी प्रयासो द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालय तथा एक सरकारी विद्यालय (आगरा नगर में केवल एक ही सरकारी विद्यालय स्थापित है) को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया है। न्यादर्श में केवल उन्हीं विद्यालयो का चयन किया गया, जिन्हें स्थापित हुए कम से कम 5 वर्ष बीत चुके हो।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन हेतु कोई प्रमापीकृत या अप्रमापीकृत उपकरण उपलब्ध न होने के कारण शोधकर्त्री द्वारा साक्षात्कार एवं निरीक्षण अनुसूची को स्वयं ही निर्मित किया गया। इस अनुसूची को नौ विषय बिन्दुओ में विभाजित कर प्रश्नों का निर्माण किया गया।

सांख्यिकीय गणना

अध्ययन के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए सांख्यिकीय गणना हेतु प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

उपलब्धियां एवं निष्कर्ष

विश्लेषणोपरान्त शोधकर्त्री ने परिणामस्वरूप यह पाया कि :

- सरकारी विद्यालय मे केवल महिला शिक्षिकाओं की ही नियुक्ति की गई थी, जबकि गैर सरकारी विद्यालयो मे 8% पुरुष शिक्षक भी नियुक्त थे। ये पुरुष शिक्षक अधिकांशत: विद्या-भारती द्वारा चलाए गए विद्यालयों में कार्यरत थे।
- अधिकांशत: सभी विद्यालयो मे इस स्तर पर कक्षा-अध्यापक प्रणाली ही देखने को मिली अर्थात एक कक्षा हेतु एक ही शिक्षक पाया गया।
- सरकारी तथा 20% गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षक छात्र अनुपात 1 : 30 था, जबकि 20% गैर सरकारी विद्यालयों में 1 : 20 तथा 1 : 25, 10% विद्यालयों मे 1 : 35 और अन्य 47% विद्यालयों में यह अनुपात 1 : 40 से 1 : 60 तक भी प्राप्त हुआ।
- समस्त शिक्षकों मे से केवल 2% शिक्षक हाईस्कूल तथा 17% इन्टरमीडिएट पास थे। शेष 81% शिक्षक स्नातक, परास्नातक एवं पी. एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त थे।
- इन सभी प्रकार के विद्यालयों मे केवल 20% शिक्षक ही नर्सरी प्रशिक्षण प्राप्त थे, इनका प्रतिशत सरकारी विद्यालय मे सर्वाधिक (50%) था।
- 80% शिक्षकों मे से अधिकांश उच्च शिक्षा प्राप्त थे, किन्तु उनके पास नर्सरी शिक्षक प्रशिक्षण नहीं

था। इन 80% शिक्षकों में से 50% बी. एड 8% बी. टी. सी., 2% शिक्षक सी. टी. या अन्य कोई समकक्ष प्रशिक्षण प्राप्त थे। समस्त शिक्षकों का 20% बिना किसी प्रशिक्षण के ही कार्य कर रहा था।

- सरकारी तथा 20% मिशनरी (ईसाई धर्म द्वारा चलाए जाने वाले) विद्यालयों में शिक्षकों को 2,100/– रुपये प्रतिमाह से अधिक वेतन प्राप्त हो रहा था। साथ ही उनको अन्य सुविधाए जैसे पेशन, बीमा, प्रॉविडेण्ट फण्ड तथा आवास भत्ता आदि भी प्राप्त थे। परन्तु 30% निजी मान्यता प्राप्त तथा 30% अमान्यता प्राप्त विद्यालयो में शिक्षकों को 300/– रुपये प्रति माह से भी कम तथा 37% विद्यालयों में 600/– रुपये प्रति माह से कम वेतन प्राप्त हो रहा था तथा अन्य सुविधाओं की भी कोई व्यवस्था उपलब्ध न थी।
- केवल 56% मिशनरी विद्यालयों को छोड़कर अन्य सभी सरकारी तथा गैर–सरकारी विद्यालयो मे शिक्षकों हेतु सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की कोई व्यवस्था न थी।
- सरकारी विद्यालय में शिक्षको का 'कार्यभार प्रतिदिन 6 घन्टे का है, जबकि 73% गैर सरकारी विद्यालयो मे यह कार्यभार तीन से साढे चार घन्टे के मध्य तथा 25% मे पांच घन्टे का है।
- सरकारी तथा 19% गैर–सरकारी विद्यालयों में बच्चों के अवकाश के बाद भी शिक्षक कुछ घन्टे वहां रुककर अगले दिन के कार्यक्रमो की व्यवस्था करते हैं, परन्तु अन्य 80% विद्यालयो में इस प्रकार की कोई व्यवस्था उपलब्ध नही है।
- सरकारी तथा 69% गैर सरकारी विद्यालयों मे शिक्षको की नियुक्ति हेतु विज्ञापन तथा चयन समिति की व्यवस्था है। परन्तु 30% निजी मान्यता प्राप्त तथा 60% निजी अमान्यता प्राप्त विद्यालयों में केवल व्यक्तिगत सबंधों के आधार पर ही शिक्षकों को नियुक्त कर लिया जाता है।
- सरकारी तथा 62% गैर सरकारी विद्यालयो में शिक्षको की नियुक्ति हेतु उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है, जबकि 50% मिशनरी विद्यालयो में साक्षात्कार के साथ–साथ लिखित परीक्षा की व्यवस्था भी पाई गई। कुछ मिशनरी विद्यालयो में नियुक्ति से पूर्व बच्चो के समक्ष शिक्षण कार्य के मूल्यांकन हेतु प्रदर्शन पाठ की भी व्यवस्था पाई गई। 20% निजी मान्यता प्राप्त एव 40% निजी अमान्यता प्राप्त विद्यालयो में शिक्षकों की नियुक्ति हेतु कोई मापदण्ड नही रखा गया था।

सुझाव

पूर्व–प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों एवं शिक्षकों की स्थिति में सुधार लाने हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत है :

- पूर्व–प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापन हेतु सभी महिला शिक्षिकाएं ही नियुक्त की जानी चाहिए। महिलाएं ही उन शिशुओ को कोमल तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार प्रदान कर सकती है। साथ ही उनको गृह–समान वातावरण भी उपलब्ध करा सकती है।
- सभी शिक्षकों में से 20% शिक्षक ही शिशु प्रशिक्षण प्राप्त थे। इस स्तर पर अध्यापन करने वाली सभी शिक्षिकाए शिशु–शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त हों। साथ ही शैक्षिक योग्यता के रूप मे वे कम से कम इण्टरमीडिएट अवश्य हों। हालांकि इस स्तर पर प्रशिक्षण सस्थाओं की उपलब्धता कम है, जिसके कारण शिशु–शिक्षण मे प्रशिक्षित शिक्षको की कमी होने पर अन्य किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति कर ली जाती है। इस सन्दर्भ में यह भी सुझाव है कि शिशु–प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या बढ़ाई जाए, कुछ विश्वविद्यालयों में 'कम्प्रिहेन्सिव कालेज'' भी चलाए जाए। साथ ही जो शिक्षक पहले से ही नियुक्त है और वे शिशु शिक्षण में प्रशिक्षित नही है, उनके लिए प्रशिक्षण विद्यालयों या

विभिन्न सगठनो द्वारा सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की जाए। नए शिक्षको की नियुक्ति के समय केवल उन्ही शिक्षको को नियुक्त किया जाए, जिन्होंने इस स्तर के लिए ही प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

- पूर्व-प्राथमिक स्तर पर कार्यरत अध्यापकों के वेतन में भी काफी असमानताएं पाई गई, अतः यह सुझाव है कि सभी प्रकार के विद्यालयो मे शिक्षको को प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के समान ही वेतन तथा अन्य सुविधाएं प्रदान की जाए, जिससे कि उन्हें कुछ प्रोत्साहन तथा कार्य का सन्तोष भी प्राप्त हो सके और वे मन लगाकर कार्य कर सके।
- सभी प्रकार के विद्यालयो मे पूर्व-प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों हेतु सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था समय-समय पर की जाए जिससे सेवारत शिक्षक इस स्तर पर किए गए नवीन शोध कार्यो, नवीन शिक्षण विधियों, शिक्षण सामग्री तथा बाल-मनोविज्ञान संबधी नवीन ज्ञान से परिचित हो सके। शिक्षको की व्यावसायिक उन्नति हेतु गोष्ठियो, परिचर्चाओ, कार्य-शिविरों, प्रबोधन कार्यक्रमों, वार्ताओं तथा सम्मेलनो आदि की व्यवस्था की जाए। इन कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए बारी-बारी से सभी शिक्षको को अवसर प्रदान किया जाए।
- शिक्षको का समय बच्चों के समय से कम से कम एक घन्टा अधिक रखा जाए, जिससे कि वे प्रतिदिन बच्चों के आने से 15 मिनट पहले तथा उनके जाने के 45 मिनट बाद तक विद्यालय मे उपस्थित रह सके और बच्चो के लिए अगले कार्यक्रमो की व्यवस्था कर सके। सभी विद्यालयो में शिक्षिकाओं का समय प्रतिदिन 5 घन्टे अवश्य रखा जाए। विद्यालयों में बच्चो के लिए सप्ताह मे पाच दिन तथा शिक्षकों हेतु छः कार्य दिवसों की व्यवस्था हो, जिससे कि शनिवार के दिन शिक्षिकाए अगले सप्ताह के कार्यक्रमो जैसे डायरी भरना, बच्चों के अभिलेख तैयार करना, पाठ-योजनाए तैयार करना, सामग्री व्यवस्थित करना, नवीन सामग्रियो का निर्माण करना तथा विशेष समस्यात्मक बच्चो के घर जाना आदि सरीखे कार्य कर सके।
- छोटे बच्चो की कक्षा मे एक साथ अधिक बच्चों की सख्या होने से उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना असम्भव होता है, अतः यदि शिक्षक-छात्र अनुपात अधिक है, तो ऐसी स्थिति में एक कक्षा के अधिक विभाग खोले जाए। साथ ही शिक्षको की नियुक्ति भी की जाए या विद्यालयों में द्विपारी पद्धति की व्यवस्था की जाए किन्तु यह अनुपात 1 : 25 से अधिक न हो।
- विद्यालयो मे योग्य शिक्षकों की नियुक्ति हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षकों की नियुक्ति से संबधित कुछ मानक या मानदण्डो का निर्धारण किया जाए जैसे-शिक्षण अभिरुचि परीक्षण हेतु 40% अक, लिखित परीक्षा हेतु 40% अंक (बाल प्रशिक्षण एव बाल मनोविज्ञान सबधी ज्ञान की जाच हेतु) तथा साक्षात्कार हेतु 20% अंक निर्धारित किए जाए। इस आधार पर अक प्रदान करके वरीयताक्रम से शिक्षको का चयन किया जाए।

□□

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम	:	**शिक्षा सिद्धान्त**
लेखक	:	**डा. शालिग्राम त्रिपाठी**
प्रकाशक	:	वेकटेश प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	:	1993 (द्वितीय संस्करण)
पृष्ठ	:	265
मूल्य	:	48 रु.
समीक्षक	:	**मजीत सेन गुप्त**

शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि अंग्रेज़ी भाषा में भारतीय तथा विदेशी लेखकों द्वारा लिखे गए अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, तथापि इस क्षेत्र में हिन्दी भाषा में लिखी गई अच्छी और प्रामाणिक पुस्तको की आम तौर पर कमी महसूस की जाती है। आज जबकि हिन्दी मे शिक्षण-प्रशिक्षण पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है और विशेषकर हिन्दी भाषी राज्यों मे हिन्दी के माध्यम से पढ़ने वाले छात्रो और पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, यह आवश्यक है कि विद्वान लेखक अपनी लेखनी द्वारा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं मे उत्कृष्ट ग्रन्थो का सृजन करें। इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर डा. शालिग्राम त्रिपाठी द्वारा लिखी गई पुस्तक 'शिक्षा सिद्धान्त' अपने आप मे एक सराहनीय प्रयास है।

विषयवस्तु की दृष्टि से इस पुस्तक को सात अध्यायों मे विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है 'शिक्षा का अर्थ एव कार्य'। इस अध्याय के प्रारम्भ मे शिक्षा के अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणो से स्पष्ट किया गया है। इस प्रचेष्ठा में लेखक ने विदेशी विद्वानों के साथ-साथ भारतीय विचारकों के मतों को भी प्रमुखता से स्थान दिया है, परन्तु आगे चलकर इस अध्याय की विषयवस्तु शीर्षक के मुख्य स्तर से भटक गई है। शिक्षा के सैद्धान्तिक और क्रियात्मक पक्षों के परस्पर घुलमिल जाने के कारण शीर्षक की सार्थकता लगभग समाप्त हो गई है। कदाचित इन दोनों आयामों को भिन्न-भिन्न प्रस्तुत करने पर पाठक को शिक्षा के सप्रत्यय को समझने मे अधिक आसानी होती।

शिक्षा के उद्देश्यो को द्वितीय अध्याय मे सुसगठित रूप से प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक, व निर्गैपचारिक साधनो का वर्णन है। चतुर्थ और पचम अध्याय मे शिक्षा के सामाजिक व दार्शनिक आधारों को क्रमशः प्रस्तुत किया गया है। षष्ठम और सप्तम अध्याय जो शिक्षा की प्रवृत्तियों और भारतीय शिक्षाशास्त्रियों की शैक्षिक विचारधाराओं से सबधित है एक बार पुन. पुस्तक की मुख्यधारा से अलग-थलग दिखाई देते हैं।

पुस्तक का प्रस्तुतीकरण आकर्षक है। इसमे लेखक ने शिक्षा के पारिभाषिक शब्दों तथा प्रत्येक शीर्षक व उपशीर्षक का अग्रेजी रूपान्तरण प्रस्तुत किया है, जिसके कारण पुस्तक की बोधगम्यता मे वृद्धि हुई है। यह कदाचित हिन्दी मे शिक्षा पर लिखी गई एक ऐसी पुस्तक है जिसमें स्वतंत्र चिन्तन के साथ-साथ संस्कृत वाङ्मय से भी प्रसगानुसार अनेक उद्धरण दिए गए हैं। पूरी पुस्तक में विभिन्न शीर्षको के अतर्गत भारतीय शैक्षिक दर्शन की एक अविरल धारा बहती हुई सी प्रतीत होती है। पुस्तक की भाषा सरल है और सभी बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण क्रमानुसार प्राप्त होता है।

छात्रो, अध्यापकों तथा शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अन्य अधिकारियों के लिए एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। □□

वर्ष : 13 अंक : चतुर्थ अप्रैल 1996



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको, शैक्षिक प्रशासको तथा शोधकर्त्ताओ को एक मच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामो, जैसे–शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याए, पाठ्यक्रम एव प्राविधि सम्बन्धी नवीन विकास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यो मे शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार और विकास को बढावा देना।

इस पत्रिका की विषय-सामग्री मे विख्यात शिक्षाशास्त्रियो द्वारा लिखे गए लेख, चुनौतीपूर्ण वाद-विवाद, शैक्षिक समस्याओ की आलोचनात्मक विवेचना, शिक्षाशास्त्रियो से भेटवार्ता, नवाचार, पाठको के पत्र तथा पुस्तक-समीक्षा आदि शामिल है। लेखको के द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने है तथा ये किसी भी प्रकार परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नही करते।

प्रकाशन सहयोग

यू प्रभाकर राव *अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग*

आर एस सक्सेना *प्रभारी मुख्य सपादक*
मीरा कात *सपादक*
राजपाल *सहायक सपादक*
शिव कुमार *उत्पादन अधिकारी*
अरुण चितकारा *सहायक उत्पादन अधिकारी*
जहानलाल *उत्पादन सहायक*

मूल्य एक प्रति : 8.50 रुपये; वार्षिक : 34.00 रुपये

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष : 13 | अंक : 4 | अप्रैल 1996

विषय-सूची

प्रकृति के उपहार

प्रकृति से दूर रहने वाला बालक,
प्रकृति के भेद को कैसे जानेगा?
जगमगाती चांदनी, कलकल बहती नदी,
खेत की मिट्टी,
बाड़ी के घर, टेकरी के कंकर,
खुली हवा और
आसमान के रंग
ये सब वे उपहार हैं,
जो बालक को प्रकृति से
प्राप्त हुए हैं।
बालक को जी भर कर प्रकृति का
आनंद लूटने दीजिए।

गिजुभाई बधेका

शैक्षिक हिंदी की प्रकार्यात्मक भूमिका

हीरालाल बाछोतिया

के-40 एफ, साकेत
नई दिल्ली-110017

हिंदी भाषा आज केवल कुछ लोगों की मातृभाषा या कुछ राज्यो की राजभाषा न होंकर सम्पूर्ण भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में एक नया दायित्व संभाल रही है। ऐसे समय में जब अहिंदी भाषी व्यक्ति भी हिंदी को विचार-विनिमय का सेतु बना रहे है, प्रशासनिक कार्यो में इसका उपयोग बढ़ रहा है तथा वैज्ञानिक शब्दावली में भी यह विस्तार पा रही है तब हिदी भाषा का शिक्षण अपने को केवल साहित्यिक भाषा शिक्षण तक सीमित नहीं रख सकता। आवश्यकता है हिंदी भाषा शिक्षण में नवीन प्रयोगों की, अपारंपरिक शिक्षण विधियो की तथा नए-नए प्रकरणों की। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इसी संदर्भ में कुछ उदाहरणों द्वारा हिंदी की प्रकार्यात्मक भूमिका को उजागर करने का प्रयत्न किया है।

भाषा अध्ययन का उद्देश्य बालक-बालिकाओ और किशोर वर्ग में कौशलों का विकास माना गया है। किंतु शिक्षा के द्वारा उनमे बुद्धि और सहृदयता को भी समुन्नत बनाने की दृष्टि से क्या पढ़ाए, इस पर भी समान रूप से बल देना होगा। ''कैसे पढ़ाएं'' ही शिक्षण विधि का निष्कर्ष है जिससे कौशलों का विकास संभव होता है।

भाषा मूलत: मानव सपदा है। नेतृत्व वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा का अस्तित्व करीब दस हज़ार सालो से माना जाता है। चाम्सकी के अनुसार भाषा सीखने की सामर्थ्य मानव में आनुवाशिक विशेषता के रूप में विद्यमान है। यह सामर्थ्य किसी भाषा विशेष के लिए नहीं होती। भाषा सीखने की सामर्थ्य एक या दो भाषाए ही सीखने तक सीमित नही होती। यह एक सामान्य क्षमता है जो बच्चों मे पहले ही वर्ष से शुरू हो जाती है और दो से लेकर आठ-नौ वर्ष तक अपनी पराकाष्ठा पर होती है। द्विभाषी अथवा बहुभाषी समाजो में बच्चे बाल्यावस्था में दो या तीन भाषा आसानी से सीख लेते हैं। इसके लिए खेल और सहक्रिया कलापो का आश्रय वांछित है। इस संदर्भ में विद्यालय को प्रमुख भूमिका ही नहीं निभानी है स्वयं को बदलना भी अपेक्षित है।

मातृभाषा हिंदी

मातृभाषा उस भाषा को कहा जाता है जिसका प्रयोग माता करती है। लेकिन जब हम शैक्षिक दृष्टि से मातृभाषा के संबंध में विचार करते हैं तो संकीर्णता से ऊपर उठकर उस भाषा को मातृभाषा के रूप मे परिभाषित करते हैं जिसमे समाज के सभ्य एवं सुशिक्षित व्यक्ति परस्पर वार्तालाप, पत्र-व्यवहार तथा अन्य कार्यो का सपादन करते हैं। इस दृष्टि से हिंदी देश के चालीस प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है।

हिंदी भाषा का शिक्षण मातृभाषा के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि भाषा हमारे विचारों व भावों की अभिव्यक्ति का साधन है तो मातृभाषा सहज अभिव्यक्ति का सरलतम साधन है। बालक इसे सरलता से सुनकर या अनुकरण द्वारा केवल ग्रहण ही नहीं करता, आत्मसात भी कर लेता है।

मातृभाषा का महत्त्व इस दृष्टि से और भी अधिक है कि वह हमारे पूर्वजो से संबधित है। हमारे रक्त में घुली-मिली है। अपने पूर्वजो द्वारा प्राप्त ज्ञान को परवर्ती पीढ़ी मातृभाषा के माध्यम से साहित्य के विभिन्न रूपों में सरलता

से सीख लेती है तथा उसके संवर्द्धन के लिए भी प्रयत्नशील रहती है। इस प्रकार मातृभाषा जाति विशेष की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योग देती है।

मातृभाषा की सही दिशा के अभाव में बालक का बौद्धिक, चारित्रिक, भावात्मक एवं सामाजिक विकास संभव नहीं हो पाता जिसे आज की शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य माना जाता है।

द्वितीय/तृतीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण

द्वितीय/तृतीय/अन्य भाषा सीखने की प्रक्रिया एक आदत का निर्माण करती है और आदत को सक्रिय बनाती है। इसमे अभ्यास सर्व प्रमुख है। अभ्यास काल में सीखने वाले को नियंत्रित परिवेश तथा नियंत्रण सामग्री पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना अपेक्षित होता है। इसके लिए परिवेश को सूक्ष्म बनाना जरूरी होता है ताकि शिक्षार्थी तेजी से सीख सके। भाषा सीखने का अर्थ है उस भाषा के अंग-रूप और रचना को सीखना।

भाषा शिक्षण का क्षेत्र मुख्य रूप से विद्यालय हो सकते हैं। विद्यालयों मे हिंदी भाषा की शिक्षा के लिए उपयुक्त विधियों को अपनाना आवश्यक है। इस स्थल पर यह भी देखना आवश्यक होगा कि विद्यालय के आरम्भिक स्तर पर बालकों को हिंदी भाषा का सही शिक्षण देने के लिए कौन सी विधि अपनाई जाए। माध्यमिक तथा उच्च स्तर का जहा तक प्रश्न है यह स्पष्ट है कि विभिन्न विधाओं के शिक्षण के लिए भिन्न-भिन्न विधियां हैं, विभिन्न प्रकार की प्रणालियां हैं और फिर जब अहिंदी भाषी प्रदेशों के बालकों को शिक्षित करने अथवा अहिंदी भाषी प्रदेशों के निवासी वयस्क भारतीयो को हिंदी भाषा की शिक्षा देने का प्रश्न है, इसके लिए कुछ पद्धतिया ऐसी है जो अनिवार्य कही जा सकती हैं तथा प्रारभ में बालकों को हिंदी भाषा की शिक्षा देने के लिए काम में लाई जा रही हैं।

शैक्षिक हिंदी

भारतीय समाज वृहत्तर अर्थों मे बहुभाषी समाज ही है। किंतु संपर्क एवं भावनात्मक एकीकरण की दृष्टि से किसी एक भाषा की आवश्यकता भी अवश्यभावी है। हिंदी आज देश में इसी भूमिका का सपादन कर रही है। शैक्षिक दृष्टि से हिंदी का अध्ययन-अध्यापन मातृभाषा/प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा तथा तृतीय भाषा के रूप में हो रहा है। प्रथम भाषा/मातृ भाषा के रूप मे पढ़ाई जाने वाली हिदी का पाठ्यक्रम अत्यत पारंपरिक रहा है। आज हिंदी अनेक भूमिकाओं का संपादन कर रही है। अतः हिंदी के अकेले मातृभाषा रूप की तुलना में हिंदी के अन्य रूप अधिक प्रभावशाली तथा व्यवहार्य बन गए है। शिक्षा समाप्ति के बाद संभावित कार्यो या व्यवसायो की संप्राप्ति की दृष्टि से भी हिंदी के साहित्यिक रूप की अपेक्षा व्यावसायिक लक्ष्यो को पूरा करने वाला रूप ग्राह्य हो रहा है। अतः इस पक्ष पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है। व्यावहारिक जीवन में इसकी उपादेयता भी सिद्ध हो रही है।

प्रत्येक भाषा का एक आधारभूत व्याकरण होता है, जो विभिन्न सामाजिक संदर्भों मे समरूप दृष्टिगोचर होता है। भाषा अगर जीवत है, तो विभिन्न रूपों मे विभिन्न स्वरूप धारण करने मे भी समर्थ होती है। भाषा एक सामाजिक यथार्थ है तथा हिंदी एक जीवंत भाषा के रूप मे प्रचलित और प्रयुक्त है। अत. इसके प्रचलन और प्रयोग के अनेक रूप समाज में उपलब्ध हैं। हिंदी भाषा इस समय अनेक प्रशासनिक, वैज्ञानिक और शैक्षिक संदर्भों मे उपयोग में आ रही है।

हिंदी भाषा को आम तौर पर हिदी की साहित्यिक भाषा के रूप में ही देखा जाता रहा है। इसकी परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है तथा इसने अभिव्यक्ति की अनेक भंगिमाओं, शैलियों तथा पद्धतियो को विकसित किया है। हिंदी का यह साहित्यिक रूप बडा ही समृद्ध तथा संपन्न है। यह रूप कलात्मक, लालित्यपूर्ण, रोचक तथा शब्दशक्ति और अलंकार आदि के चमत्कारपूर्ण कौशल से भी संपन्न है। साहित्यिक हिंदी का संबंध मूलतः हृदय पक्ष या भाव पक्ष से है। महान साहित्यकारों, कलाकारों की कृतियों मे इसी का आस्वादन सुलभ होता है।

यही हिंदी शैक्षिक हिंदी की भूमिका निभाती रही है। इसमे सराहना, भावग्रहण आदि पर विशेष बल दिया जाता है। हिंदी को मातृभाषा के रूप में पढ़ने वाले विद्यार्थी के संदर्भ मे इन्ही को प्राप्त करने का उद्देश्य रहा है। किंतु

अब हिंदी का शिक्षण अन्य भाषा के रूप मे हो रहा है। इसमें चार कौशलों में दक्षता तथा संपर्क हेतु जो भाषिक आवश्यकताए हैं उन्हे केन्द्र मे रखकर चलना अपेक्षित है। भाषा का वह रूप जो जीवन मे दैनिक कार्यो के सपादन हेतु प्रयोग में आता है, साहित्यिक रूप से भिन्न होता है। यह बोलचाल तथा आवश्यकता से जुड़ा हुआ है। इसका यह रूप अभ्यास के द्वारा जीवत परिवेश में सीखा या अर्जित किया जा सकता है। भाषा को विशिष्ट कार्यों के संपादन हेतु प्रयोग करते समय उसके इस रूप को देखा जा सकता है। नि:संदेह इसका अभ्यास और अर्जन विशेष प्रयत्नों से ही साध्य है। शैक्षिक कार्यक्रम या पाठ्यक्रम मे यह प्रावधान होना चाहिए कि विद्यार्थी प्रकार्यात्मक भूमिका का अर्जन कर सके।

दैनिक कार्यों में भाषिक व्यवहार की जरूरतें अनेकानेक हैं। इन भाषिक व्यवहारों को शैक्षिक कार्यक्रम का अंग बनाकर सिखाया जाना समीचीन है। ऐसी कुछ शैक्षिक भाषायी कार्यकलापों से सबंधित प्रमुख इकाइयां इस प्रकार हो सकती है :

- भूमिका निर्वाह (एकाधिक पात्र)
- पुनर्कथन/वर्णन (नियत्रित)
- मुक्तकथन/भापण
- भाषिक खेल
- लेखन कार्यकलाप

उपरोक्त प्रमुख इकाइयों के अन्तर्गत अनेकानेक उप इकाइया या भेद हो सकते हैं। इनके अंतर्गत निम्नलिखित कार्यकलाप शामिल किए जा सकते है :

□ भूमिका निर्वाह (एकाधिक पात्र)

(क) अभिवादन/बधाई

(ख) स्वागत

(ग) परिचय

(घ) पूछताछ

(ङ) वार्तालाप (औपचारिक)

(च) वार्तालाप (अनौपचारिक)

(छ) साक्षात्कार

(ज) एकांकी मंचन

□ नियंत्रित पुनर्कथन वर्णन (एक पात्र)

(क) देखी-सुनी घटना का वर्णन

(ख) टी वी. के किसी कार्यक्रम का वर्णन

(ग) मातृभाषा की परिचित कहानी को कहलवाना

(घ) अधूरी कहानी को पूरा करना

(ङ) चित्र के आधार पर वर्णन

(च) कार्टून आदि के लिए शीर्षक या कथन पूरा करवाना

□ मुक्तकथन/भाषण

(क) वाद-विवाद प्रतियोगिता

(ख) स्वागत/परिचय/धन्यवाद ज्ञापन

(ग) कविता पाठ

(घ) चुटकुला सुनाना

(ङ) कहानी सुनाना

(च) आशु भाषण

□ भाषिक खेल

(क) शब्द खेल (अंत्याक्षरी के मॉडल पर)

(ख) अत्याक्षरी

(ग) कार्ड मैचिग

(घ) कक्षा कार्ड

(ङ) नियत्रित वाक्य-रचना खेल

□ लेखन कार्यक्रम

(क) निमंत्रण पत्र

(ख) सामान्य/व्यावसायिक पत्र

(ग) किसी घटना का लेखन

(घ) पत्र के सबोधन आदि।

द्वितीय/तृतीय भाषा/अन्य भाषा सीखने वाले के लिए उपरोक्त भाषायी कार्यकलापों का अर्जन विभिन्न स्थितियो मे ही निष्पादित हो सकता है। कक्षा मे अध्यापक ऐसी स्थितियों की कल्पना कर भाषा प्रयोग का अभ्यास करवा सकते है। नमूने के रूप मे कतिपय कार्यकलापो और तत्संबंधी भाषायी रूप यहा प्रस्तुत है। इसमे विभिन्न स्थितियो मे भूमिका निर्वाह के उदाहरण हैं। दो या तीन या जितनी भी भूमिकाएं हों उतने विद्यार्थियों को सबंधित भूमिका निर्वाह तथा सवादों के बारे में समझाकर अध्यापक अभ्यास करवाएं और भूमिका निर्वाह के लिए कहे।

भूमिका निर्वाह

स्थिति

रेलवे स्टेशन पर पूछताछ खिडकी, एक यात्री खिडकी बाबू से बात करता है।

पात्र

यात्री, खिडकी बाबू

संवाद

यात्री (परेशानी में) : बाबूजी मुझे निजामुद्दीन जाना है।

बाबू (हसकर) : निजामुद्दीन स्टेशन पर तो खडे ही हो।

यात्री (सिर पीटता है) : जी मुझे ग्वालियर जाना है।

बाबू : चले जाइए, कौन रोकता है?

यात्री : मेरा मतलब है, अब ग्वालियर के लिए गाड़ी किस समय आएगी?

बाबू : गोआ ढाई बजे जाएगी।

यात्री : बाबूजी मुझे गोआ नहीं ग्वालियर जाना है।

बाबू : अरे बाबा गोआ गाड़ी का नाम है। वह ग्वालियर होकर जाएगी।

यह नमूना है यात्री और खिड़की बाबू के बीच हुई बातों का। अध्यापक इसी प्रकार अन्य स्थितियो की कल्पना कर सकते हैं। यदि यात्री और खिड़की बाबू में ही भाषा–व्यवहार करना अपेक्षित है तो नई स्थितिया सोची जा सकती हैं। छात्रों से तदनुसार बातचीत के लिए कहा जा सकता है।

ब्लैक बोर्ड पर लिख दें–"यात्री को चंडीगढ़–जाना है।" इस शीर्षक के अन्तर्गत विद्यार्थियों के बीच होने वाली बातचीत पर चर्चा करें, अभ्यास करवाएं, फिर भूमिका निर्वाह के लिए कहें।

इसी प्रकार किसी स्थान या दृश्य का वर्णन या कामेंटरी हेतु भी भूमिका निर्वाह का भाषिक कार्यकलाप लिया जा सकता है।

दृश्य का वर्णन

स्थिति

तीन विद्यार्थी किसी पहाड़ी पर बैठे हैं। वे प्रकृति का सौन्दर्य देख रहे हैं। उनमें से एक पुष्पो की घाटी को देख रहा है। दूसरा वृक्षों को निहार रहा है और तीसरा झील मे तैरती नावें देख रहा है।

संवाद

पहला विद्यार्थी : (पुष्प घाटी का वर्णन करता है) वहां कितने रंग–बिरंगे फूल है। मेरी आखें इनकी सुंदरता में खो गई हैं। नज़र हटाता हू तो हटती ही नहीं है। लाल–पीले गुलाबो की कतारें कितनी सुन्दर दिख रही हैं। सफेद बेला और गुलदाउदी की शोभा निराली है। इन्होंने जादू कर दिया है।

दूसरा विद्यार्थी : (वृक्षों की सुंदरता का वर्णन करता है) वृक्षों की शोभा देखते ही बनती है। ये हराप्रन बांट रहे हैं। आंखों को ठंडक दे रहे हैं। यही बादलों को बुलाते हैं। यही पथिको को छाया देते है।

तीसरा विद्यार्थी : (झील का वर्णन करता है) झील का पानी कैसा नीला दिख रहा है। लगता है आसमान झील में उतर आया है। सैलानी नावों में घूम रहे हैं। कुछ पालदार नावें हैं, लगता है झील ने धारीदार टोपी पहन ली हो।

इसी तरह अन्य स्थितियो के वर्णन के लिए शिक्षक विद्यार्थियो से कह सकते हैं। ज़रूरी हो तो कुछ संकेत दे दें जिससे वे वर्णन में जीवतता ला सकें।

वर्णन/पुनर्कथन (नियंत्रित)

स्थितियां : परिवार का दृश्य। टी.वी. पर कार्यक्रम मे अश बारी–बारी से दिखाए जाएं। इनमें फिल्म, चित्रहार, धारावाहिक नाटक आदि हो सकते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों

में रामायण, महाभारत, बाइबिल आदि कहानिया हो सकती हैं। ऐतिहासिक कार्यक्रमों में टीपू सुल्तान, द ग्रेट मराठा, रजिया सुल्तान आदि। लोक कथाओं में पंचतंत्र की कहानियां, मुल्ला नसीरुद्दीन, विक्रम और बेताल, तेनालीराम आदि कार्यक्रम दिखाए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए यहां महाभारत धारावाहिक के अंतर्गत भीष्म प्रकरण पर बातचीत को लिया जा सकता है।

संवाद

अध्यापक (छात्रो से): कल तुमने भीष्म प्रतिज्ञा का पाठ पढ़ा था।

छात्र-1 : जी हां

छात्र-2 : सर! मैंने महाभारत सीरियल भी देखा। उसमें भी यही घटना थी।

अध्यापक : गणेश! क्या तुमने भी देखा था?

गणेश : सर! मेरे यहां सबने देखा था।

अध्यापक : बताओ क्या हुआ था उसमे? सभी जान सकें इसलिए थोड़ा-ऊंचा बोलो।

गणेश : सर! भीष्म बहुत वीर पुरुष थे। उनके पिता एक बार एक मछुआरे की लड़की पर मोहित हो गए। पर मछुआरे ने शर्त रखी कि मेरी बेटी का पुत्र ही राजा बने। भीष्म के पिता ऐसी शर्त मानने को तैयार न थे। पर जब भीष्म को इस बात का पता चला तो उन्होंने पिता की बात रखने के लिए प्रतिज्ञा की कि वे कभी राज सिहासन पर नहीं बैठेंगे। साथ ही आजीवन कुंआरे रहेंगे। ताकि पिता शादी ~~के बाद~~ मछुआरे की बेटी के पुत्र को राजा बना सके।

लता : सर! भीष्म प्रतिज्ञा इतनी लोकप्रिय हुई कि आज भी कठोर प्रतिज्ञा या अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने को ''भीष्म प्रतिज्ञा'' कहते हैं।

अध्यापक : अच्छा बताओ महाभारत का सबसे प्रतापी व्यक्ति कौन था?

छात्र : भीष्म।

अध्यापक : अगर भीष्म प्रतिज्ञा न लेते तो क्या होता?

गणेश : सर! भीष्म ही राजा बनते।

अध्यापक : अच्छा 'अगर भीष्म राजा बनते तो क्या होता' इस पर अपनी कल्पना शक्ति से एक लेख लिखो।

इसी तरह अन्य दृश्य दिखाकर छात्रों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति तथा उसकी शिक्षाओं पर बातचीत की जा सकती है। इससे छात्र नैतिक मूल्यो को भी आत्मसात कर सकेंगे। पुनर्कथन द्वारा न सिर्फ उनकी भाषा का संस्कार होगा अपितु शब्द भंडार में भी आशातीत वृद्धि होगी।

योग्यता विस्तार

अन्य स्थितियों के बारे मे भी सोचा जा सकता है। यदि कोई बड़ी प्रदर्शनी, मेला या उत्सव हो तो उसके बारे में भी थोड़ी सी भूमिका बनाकर अध्यापक पुनर्कथन हेतु कह सकते हैं।

स्थिति

पहले से पढ़ी या सुनी कहानी को हिंदी में सुनाना।

अध्यापक : बच्चों! आज हम कहानी सुनने-सुनाने का कार्य करेंगे तुमने कई कहानिया सुनी या पढ़ी होंगी। क्या तुम उनमें से कोई कहानी सुना सकते हो? (कई छात्र हाथ उठाते हैं।)

अध्यापक : शंकरन! तुम सुनाओ।

शंकरन (छात्र) : बहुत समय पहले की बात है। बरगद के पेड़ पर एक चिड़ियाँ ने घोंसला बनाई।

अध्यापक : चिडिया ने घोंसला बनाई नहीं. .. चिडिया ने घोसला बनाया।

शंकरन : हां, चिड़िया ने घोंसला बनाया। उसमे वह अपने बच्चों के साथ रहती थी। रोज़ सुबह चिड़िया उड़ जाती थी, शाम को खाना लेकर आती थी। एक दिन शाम को चिड़िया ने देखा, बच्चे

बड़े उदास हैं। बच्चे रोते रोते मा से बोले–मा अब हम यहा से चला जाएगा।

अध्यापक : नहीं, "हम चले जाएंगे।"

शकरन : हां बच्चों ने कहा–"मां हम यहां से चले जाएगे।" मां ने पूछा, "ऐसा क्यो?"
बच्चो ने कहा–"मा आज किसान कह रहा था, कल लोगों को बुला लाएंगे इस पेड को काटना है।"
चिड़िया ने बच्चों से बोला. .

अध्यापक : नही, चिडिया बोली ....

शंकरन : चिडिया बोली–"डरने की बात नही है। कल यह पेड़ नहीं कटेगा ." (इसी तरह कहानी आगे जारी रहती है।)

योग्यता विस्तार

इसी प्रकार अन्य कहानियां सुनाने के लिए बच्चों से कहा जा सकता है इससे रोचकता भी बनी रहती है। बच्चों को अभिव्यक्ति का मौका मिलता है तथा सही सरचना के अभ्यास का अवसर भी।

स्थिति

अधूरी कहानी को पूरा करना।

शिक्षक : कक्षा मे कल आप लोगो ने कहानी सुनाई थी। आज मैं एक कहानी सुना रहा हूं। आधी कहानी मै सुनाऊंगा उसका बाकी आप लोग पूरा करेंगे। इसमें अपनी कल्पना शक्ति का भी प्रयोग कर सकते हैं। तो शुरू करते हैं।

छात्र : हम तैयार हैं।

शिक्षक : तो सुनो दोपहर का समय था कड़ी धूप पड़ रही थी। एक कौआ उड रहा था उसे ज़ोर की प्यास लगी हुई थी। उसने देखा जमीन पर एक घड़े में पानी है। कौआ घड़े पर बैठ गया। लेकिन पानी बहुत कम था, उसकी चोच पानी तक नही पहुच सकी। बताओ, आगे क्या हुआ? सोचकर कहानी पूरी करो।

छात्र–1 : घड़े के पास ही ज़मीन पर कुछ ककड़ पड़े थे .

छात्र–2 : यह तो पुरानी कहानी हुई।

शिक्षक (छात्र–2 से) : चलो, तुम इसे पूरा करो।

छात्र–2 : कौए ने देखा, पास मे शरबत की एक दुकान है। वह उड़ा और अपनी चोंच से 'स्ट्रा' उठाकर ले आया। कौआ फिर घडे पर आकर बैठ गया। उसने "स्ट्रा" को पानी में डाला और मजे से पानी पीने लगा।

शिक्षक : बहुत बढ़िया।

योग्यता विस्तार

इसी प्रकार अन्य कोई कहानी लेकर बच्चो से कहानी पूरी करने के लिए कहा जा सकता है। इससे जहां उनकी कहानी सुनाने की कला विकसित होगी वही शब्द भडार, कल्पना शक्ति आदि का भी विकास हो सकेगा।

स्थिति

चित्रों के आधार पर कहानी कहना।

शिक्षक : इन चित्रों को देखो। (चित्र (1) में जंगल में शिकारी दाने डाल देता है। फिर जाल फैलाता है। चित्र (2) कबूतरों का उड़कर आना। चित्र (3) कबूतर दाना चुगते हैं। जाल में फस जाते है और फड़फडाते हैं। चित्र (4) शिकारी को देखकर एक कबूतर दूसरे से कुछ कहते हुए और चित्र (5) में कबूतरो का जाल के साथ उडना व शिकारी का देखते रह जाना। अब हर चित्र के बारे में तुम लोग बताओगे।

छात्र : जी हम तैयार हैं।

शिक्षक : अब एक-एक करके चित्र देखो और कहानी सुनाओ। चित्र (1) देखो और क़हानी शुरू करो।

छात्र–1 : एक शिकारी ने जंगल में कुछ दाने डाले और ऊपर से जाल फैला दिया।

शिक्षक . ठीक। अब चित्र (2) देखो और आगे बढो।

छात्र-2 · कबूतरो ने दाने देखे। उन्हे चुगने के लिए कबूतर नीचे उतर आए।

शिक्षक : चित्र (3) देखो।

छात्र-3 · सभी कबूतर दाना चुग रहे थे। उधर शिकारी ने जाल की रस्सी खींची। कबूतर जाल मे फस गए। वे पंख फडफडाने लगे।

शिक्षक : चित्र (4) के अनुसार आगे बढो।

छात्र-4 : एक कबूतर ने अपने साथियों को समझाया–''देखो, अब डरने से कोई लाभ नहीं। आओ, हम लोग मिलकर कोशिश करें। जाल को लेकर उड चलें।''

शिक्षक : बहुत अच्छा। अब चित्र (5) देखो।

छात्र-5 : शिकारी को आता देखकर सारे कबूतर जाल के साथ उड चले। शिकारी देखता रह गया।

शिक्षक : शाबाश!

भाषिक खेल

भाषा सीखने सिखाने के लिए आजकल भाषाई खेलो का चलन बहुत बढ़ गया है। ये भाषिक खेल कई तरह के हो सकते है। इनमें कार्ड मैचिग मुख्य खेल है। इसके द्वारा सही वाक्य बनाना, पर्यायवाची शब्दों का चयन, विलोम शब्द, कार्ड के वाक्यांशो को जोड कर कहानी कहना आदि अनेक भाषिक खेल हो सकते है। इस दृष्टि से नमूने के रूप मे दो स्थितियां ली जा सकती है।

स्थिति/खेल : कार्ड मैचिंग

शिक्षक . आज मैं कुछ कार्ड लेकर आया हू। इनमे दस वाक्याश है। दो कार्डो के वाक्याश जोड़ने पर पूरा वाक्य बनेगा। इसकी दो टीमे बनाई जाएगी। मेरी दाहिनी ओर अ टीम है और जो छात्र बाई ओर बैठे है वे ब टीम में माने जाएगे। अ टीम को वाक्य का पहले वाला भाग दिया गया है जबकि ब टीम को वाक्य का अतिम वाला भाग।

एक छात्र : हमे कैसे पता चलेगा कि किसके पास कौन सा कार्ड है?

शिक्षक : वही बताया जा रहा है। बारी-बारी से टीम के सदस्य खडे होंगे और अपने कार्ड पर लिखी इबारत पढ़ेंगे। पहले अ टीम का सदस्य कार्ड पढ़ेगा। ब टीम में से जिसके पास उसका जबाब हो वह अपना कार्ड दिखाएगा। (टीम अ से) रजना तुम अपना कार्ड दिखाओ और पढ़ो।

रजना (कार्ड पढती है) . 'पिताजी कल'

शिक्षक (टीम ब से) : मोहन तुम अपनी टीम ब के कार्ड देखो। किस कार्ड पर 'पिताजी कल' का जबाब है?

(सभी छात्र 'कार्डों' दो देख-पढ रहे है। तभी लता हाथ उठाती है)

शिक्षक : हा बोलो।

लता : सर, 'नही कर सकते'।

शिक्षक : दोनो वाक्य मिलाकर पढो।

लता : 'पिताजी कल नहीं कर सकते।'

शिक्षक (पूरी कक्षा से) : बताओ, क्या यह पूर्ण और सार्थक बन गया?

(कुछ छात्र हां कुछ नही-नही चिल्लाते है)

शिक्षक . शोर मत करो। टीम ब अपने कार्ड ध्यान से देखे फिर बोले।

मोहन . सर, मैं।

शिक्षक : हा, बोलो।

मोहन : दिल्ली जाएंगे।

शिक्षक : हां अब वाक्य बना 'पिताजी कल दिल्ली जाएगे।' शाबाश मोहन। शकरन तुम हर कार्ड पर लिखा वाक्य बोर्ड पर लिखो फिर दूसरा हिस्सा भी।

(शकरन एक के बाद एक वाक्य पूरा होने पर बोर्ड पर लिखता है)–

पिताजी कल	दिल्ली जाएगे
इस अवसर पर	पधारने की कृपा करे
शेर ने हिरन को	मार डाला
तुम यह काम	नहीं कर सकते
मेरी बहन	दसवीं कक्षा में पढ़ती है।

इसी प्रकार संज्ञा, विशेषण शब्दों का भी मैचिग किया जा सकता है। प्रत्ययों और उपसर्गों की मैचिंग भी करवा सकते हैं। भाषिक खेलों की मदद से भाषा शिक्षण की नीरसता दूर की जा सकती है। छात्रों की भागीदारी होने से कक्षा जीवंत बनी रह सकती है।

लेखन कार्यकलाप

हमें अनेक स्थितियों में कुछ खास तरह के लेखन की जरूरत पड़ती है। छात्रों का पत्र-लेखन, डायरी-लेखन आदि कई तरह के वर्णनों को लेखन से रोज सामना होता है। अतः छात्रों से पत्र-लेखन का विशेष अभ्यास करवाया जाना चाहिए।

(कक्षा का वातावरण शिक्षक और छात्र)

उद्देश्य : पत्र-लेखन

शिक्षक : अच्छा पत्र लिखने के लिए इसके प्रारूप को देखें। पत्र मे सबसे ऊपर दाईं ओर पत्र लिखने वाला अपना पता और दिनांक लिखता है। इसके बाद बाईं ओर पत्र पाने वाले के लिए संबोधन लिखा जाता है। छोटो या बराबरी वालों के लिए होता है–प्रिय मित्र/मेरा प्रिय रमेश, आदि। बडों के लिए सबोधन रहता है–आदरणीय चाचाजी/दादाजी या पूज्य पिताजी आदि।

पत्र की विषय वस्तु से आशय है पत्र में जो हम लिखना चाहते हैं। विषय वस्तु मे क्रम का ध्यान रखना चाहिए और बातें साफ-साफ लिखी जानी चाहिए। पत्र का समापन पत्र पाने वाले से पत्र लेखक के संबध के अनुसार होता है। बराबर वालो के लिए तुम्हारा मित्र या तुम्हारा भाई, तुम्हारी सखी, तुम्हारी ही आदि हो सकता है। अपने से बड़ों के लिए आपका, आपका ही, आपका आज्ञाकारी पुत्र या शिष्य आदि लिखते हैं।

छात्र-1 : लेकिन सर पत्र तो इस तरह के भी होते है जैसा एक मेरे पास है यह एक काव्यांश का निमत्रण पत्र है।

छात्र-2 : मेरे पास एक शादी का निमंत्रण पत्र है यह और तरह से लिखा गया है।

शिक्षक : ठीक है दोनों तरह के पत्रो की विशेषता यह है कि ये औपचारिक पत्र होते है।

छात्र-2 : तब संबोधन में महोदय या महानुभाव या मान्यवर लिखना काफी होगा। जैसा इस निमत्रण पत्र में है।

शिक्षक : अत में "भवदीय" लिखा है फिर निवेदक का नाम लिखा है। क्या किसी भी निमंत्रण में यह लिखा जा सकता है?

शिक्षक : हां औपचारिक निमंत्रण पत्र के लिए यह ठीक है।

छात्र-2 : सर मेरे पास शादी के निमत्रण पत्र के अंत मे लिखा है–'दर्शनाभिलाषी'। उसके नीचे श्रीमती एवं श्री राजशेखर का नाम है। क्या किसी भी शादी के निमंत्रण पत्र में यही लिखा जा सकता है।

शिक्षक : हां आमतौर पर 'आपके दर्शनाभिलाषी' 'विनीत' आदि लिखकर अपना नाम तथा उसके सामने बाईं ओर घर का पता भी अवश्य लिखते है।

छात्र-3 : सर शादी कहां, किसकी है, यह कहां लिखेगे।

शिक्षक : ये बातें पत्र की विषय वस्तु में शामिल की जाती हैं। किसी समारोह के कार्यक्रम में स्थान, समय, तिथि तथा मुख्य अतिथि का नाम दिया जाता है। जबकि शादी के निमंत्रण में वर-वधू के नामों का उल्लेख होता है। शादी के स्थान, तिथि, समय के उल्लेख के बिना हम पहुचेंगे कहां।

छात्र-3 : इसके अलावा मान लो पुस्तक का आर्डर देना है। कोई शिकायत करनी है। इसके लिए

भी तो पत्र लिखते है। इनके बारे मे भी बताएं।

शिक्षक : ये व्यावसायिक पत्र कहलाते है। इसी कारण इनकी भाषा व्यक्तिगत पत्रो की भाषा से अलग होती है। इसमें एक तटस्थता या दूरी बनी रहती है। कार्यालय की भाषा भी इसी प्रकार कर्तृवाच्य मे नही हुआ करती। पत्र का प्रारंभ महोदय तथा अंत भवदीय से होता है।

छात्र-4 : सर! अखबारो मे भी पत्र छपते है।

शिक्षक : सही है ये 'संपादक के नाम पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित होते हैं। अखबार का कोई भी पाठक ऐसा पत्र लिख सकता है। किसी ज्वलंत या सार्वजनिक समस्या के प्रति ध्यान आकर्षित करने के लिए ऐसे पत्र लिखे जाते हैं। कल सभी छात्र 'सपादक के नाम पत्र' अपने अखबार से काटकर लाएगे। हम उन पर चर्चा करेंगे।

'हिदी भाषा' और हिंदी की साहित्यिक शैली को एक माना जाता रहा है। अब इसमे भेद करके देखने का आग्रह बढ़ रहा है। देखा जाए तो साहित्य रचना भाषा के विविध प्रयोजनो में से ही एक है। किंतु अब अभिव्यक्ति के वृहत्तर क्षेत्र सामने है। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे भाषा को विधि, राजनीतिक कूटनीति, धर्म, अर्थशास्त्र, विज्ञान, कला, प्रशासन, सचार माध्यम आदि क्षेत्रो में भी कार्य करना है। इनमे से प्रत्येक की अभिव्यक्तिया और शैलियाँ अलग-अलग होती हैं, कुछ सामान्य भी। इनके प्रयोग में निपुणता प्राप्त करना ही हिंदी की प्रकार्यात्मक भूमिका का निष्कर्ष है। इस विचार को भी गहराई से अनुभव करने की आवश्यकता है कि अभिव्यक्ति के इन नए क्षेत्रो में निपुणता प्राप्ति के लिए शैक्षिक ससाधन दृढ़तर रूप से उपलब्ध कराए जाने चाहिए। □□

आचार्य नरेन्द्र देव के शिक्षा संबंधी विचार : वर्तमान संदर्भ

गीता सिंह

प्रवक्ता, शिक्षा शास्त्र
राजा मोहन गर्ल्स पी. जी. कालेज
फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

भारतीय शिक्षा को समय-समय पर आवश्यक मोड़ देने में कई विद्वानों, विचारकों और शिक्षाविदों का हाथ रहा है। इस संदर्भ में आचार्य नरेन्द्र देव का नाम निश्चय ही लिया जा सकता है जिनके शैक्षिक विचार न केवल उत्तर प्रदेश अपितु संपूर्ण भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक हैं। प्रस्तुत लेख में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा और जनशिक्षा के क्षेत्र में आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों का वर्तमान संदर्भ में पुनरावलोकन किया गया है।

आचार्य नरेन्द्र देव कोई स्वप्नद्रष्टा नहीं थे, अतएव उनके शैक्षिक विचार कल्पना मात्र नहीं थे। वे दो शिक्षा समितियो के अध्यक्ष थे और इन समितियो के प्रतिवेदनो से उत्तर प्रदेश की प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा गहराई से प्रभावित हुई थी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे काशी विद्यापीठ उनकी कार्यशाला थी। लखनऊ व बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयो के कुलपति के रूप में उन्होने दोनो विश्वविद्यालयो की कार्यप्रणाली पर अपनी अमिट छाप छोड़ी थी।

प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक, तकनीकी तथा जन शिक्षा के सदर्भ में भी आचार्य जी के शैक्षिक विचार अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

प्राथमिक शिक्षा

आचार्य जी बच्चों के समुचित विकास हेतु देश के सभी बच्चो के लिए कम से कम आठ वर्ष की निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा को आवश्यक मानते थे। वे मानते थे कि भारत जैसे देश में अनिवार्य शिक्षा के रास्ते में गरीबी व पिछडापन एक बडी बाधा है जिसके निवारण हेतु वे वचित वर्गों के बच्चो को छात्रवृत्ति सरीखी सुविधाएं देने के पक्षधर थे। पब्लिक स्कूलों के वे बिल्कुल विरुद्ध थे। वे देश के सभी बच्चों को सामान्य विद्यालयो में शिक्षा दिलाने के पक्षधर थे। धार्मिक व साप्रदायिक शिक्षा सस्थाओ को वे एकदम बन्द करवा कर उनके भवनों का उपयोग सामान्य विद्यालयों के लिए करना चाहते थे। प्रारम्भिक स्तर पर वे मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने को उपयोगी मानते थे तथा अनिवार्य शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थी की रुचि के अनुसार किसी कला-कौशल की शिक्षा को भी आवश्यक मानते थे। कला-कौशल के माध्यम से शिक्षा देना उनके अनुसार प्रचलित सैद्धांतिक शिक्षा से अधिक लाभप्रद था।

प्राथमिक स्तर की शिक्षा के संबध मे आचार्य जी के ये विचार आज की परिस्थितियों में सार्थक प्रतीत होते है। भारत के संविधान में यद्यपि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है परन्तु इस स्तर पर पढने योग्य शत-प्रतिशत बच्चों का अभी तक प्रवेश भी सुनिश्चित नही हो पा रहा है। इस मार्ग में सबसे बडी बाधा पब्लिक स्कूल व महंगे विद्यालय है। इन महगे विद्यालयों को बंद करके उस धन का प्रयोग सामान्य विद्यालयो में विशेष शैक्षिक वातावरण बनाने मे किया जा सकता है। इसी प्रकार का प्रयत्न विभिन्न

समुदायों द्वारा संचालित अल्पसंख्यक विद्यालयों को बंद करके भी किया जा सकता है।

शिक्षा के माध्यम के विषय में भी आचार्य जी के विचार उपयोगी हैं। आज अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों का बोलबाला है, नर्सरी स्कूलों की असाधारण वृद्धि से वातावरण दूषित हो रहा है। इस तरह समाज में दो प्रकार के नागरिक बन रहे हैं–सुविधा प्राप्त व सुविधाविहीन। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा से बच्चो का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा वे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता एव विरासत से विलग हो जाते हैं। वर्तमान मे यह महती आवश्यकता है कि इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाए और शिक्षार्थियो को भारत की विराट संस्कृति से परिचित कराया जाए। प्राथमिक स्तर पर हस्तशिल्प की शिक्षा भी अत्यन्त उपयोगी है। महात्मा गांधी ने भी बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत इसकी वकालत की थी। यह इसलिए भी आवश्यक है कि जो बच्चे प्राथमिक स्तर के बाद पढ़ाई बीच में छोड देते है वे हस्तशिल्प का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अपने रोजगार की दिशा निर्धारित कर सकते हैं। निःसंदेह बच्चो में हस्तशिल्प से कार्य के प्रति आदर की भावना पैदा होगी। फलस्वरूप वे जीवन में केवल कुर्सी पर ही बैठने वाले बुद्धिजीवी न बनकर समाज के लिए उपयोगी व उत्पादक नागरिक बन सकेगे।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा को आचार्य जी स्वतः पूर्ण बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि माध्यमिक शिक्षा के बाद विद्यार्थी यदि चाहे तो जीविकोपार्जन के लिए कोई व्यवसाय अपना सकता है। आचार्य जी ने माध्यमिक शिक्षा को दो भागो मे बाटा था–प्रथम भाग में कक्षा 6 से 8 तक की शिक्षा तथा द्वितीय भाग में कक्षा 9 से 12 तक की शिक्षा रखी थी। कक्षा 9 से 12 तक के लिए क्रमशः साहित्यिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक, व्यावसायिक व कलात्मक वर्ग के विषय लेने की वैकल्पिक व्यवस्था रखी गई थी। इसी विचारधारा के अनुरूप ही उत्तर प्रदेश में इन कक्षाओं में छात्रों के लिए विभिन्न वर्गों की सुविधा रखी गई है।

आचार्य जी हाई स्कूल तक की शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से ही देना चाहते थे तथा उसके बाद राष्ट्रभाषा में ही शिक्षा देने के पक्षधर थे। इस स्तर पर भी वे गरीब विद्यार्थियो के लिए निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था को आवश्यक मानते थे। उनका कहना था कि सरकार, समाज का संपन्न वर्ग, जिला परिषद् तथा नगरपालिका/नगर निगम आदि को मिलकर गरीब विद्यार्थियों की समुचित मदद करनी चाहिए, ताकि वे धन के अभाव में शिक्षा ग्रहण करने से वचित न रह जाए। यद्यपि आचार्य जी को आशा थी कि जब हमारा देश लोकतांत्रिक प्रणाली की शासन पद्धति को अपनाते हुए पर्याप्त समृद्ध हो जाएगा उस समय तक सम्पूर्ण शिक्षा निःशुल्क कर दी जाएगी।

विश्वविद्यालयी शिक्षा की भीड़ को समाप्त करने के लिए आचार्य जी माध्यमिक शिक्षा को व्यक्ति के भावी रोजगार हेतु तैयारी का माध्यम भी बनाना चाहते थे। उनका दृष्टिकोण था कि विद्यार्थी विभिन्न पाठ्य समूहो में से अपनी रुचि के पाठ्यक्रम का चयन करें और इस स्तर के बाद उसकी सामान्य शिक्षा समाप्त हो जाए। माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का केवल एक भाग ही ऐसा होना चाहिए जिसका रास्ता विश्वविद्यालय तक जाता हो। इस दृष्टि से आचार्य जी सभी विद्यार्थियों के लिए उच्च शिक्षा आवश्यक नहीं मानते थे।

माध्यमिक शिक्षा के सदर्भ मे आचार्य जी के विचारों का शिक्षा जगत में पर्याप्त आदर किया गया है। माध्यमिक शिक्षा को स्वतः पूर्ण बनाने के लिए उसमें विभिन्न वैकल्पिक वर्गों की व्यवस्था की गई है। यद्यपि शिक्षा के माध्यम के रूप मे राष्ट्रभाषा को अपनाने संबधी सुझाव का पालन नहीं हो पाया है तथापि यह सुझाव भी आज के परिप्रेक्ष्य मे उचित प्रतीत होता है। केवल राष्ट्र–भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाने से देश की अखण्डता, भावनात्मक एकता सुदृढ़ की जा सकेगी और देश का प्रत्येक नागरिक एक भाषा के द्वारा अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकेगा।

निर्धन विद्यार्थी के लिए माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा सुलभ कराना देश के नीति–निर्माताओं का स्वप्न जरूर रहा है परन्तु इस दिशा में ठोस प्रयास नहीं किए जा सके हैं। यद्यपि शासन की ओर से कक्षा बारह तक शुल्कमुक्ति का प्रावधान कई राज्यों में है, परन्तु पाठ्य पुस्तकों, उपकरणों

तथा अन्य लेखन सामग्री के अभाव के कारण कई विद्यार्थी बीच में ही पढ़ाई छोड देते हैं। पहली से दसवीं कक्षाओं के बीच पढ़ाई छोडने वालों का प्रतिशत 1980–81 मे 82.46 प्रतिशत था जो 1990–91 में गिरकर 71 34 प्रतिशत रह गया। पढ़ाई छोडने वालो के प्रतिशत में गिरावट यह प्रदर्शित करती है कि शिक्षा के प्रति अनुराग बढ़ रहा है और आज विद्यार्थी व अभिभावक उसका अनुसरण कर रहे है। आचार्य जी के विचारों को ध्यान मे रखते हुए शासन, समाज के धनी व्यक्तित्व एवं स्वदेशी संस्थाओ द्वारा शिक्षा पर और धन खर्च करने की आवश्यकता है।

माध्यमिक शिक्षा के लिए दो प्रकार के पाठ्यक्रम, यथा रोजगारपरक पाठ्यक्रम व विश्वविद्यालय की ओर जाने वाले पाठ्यक्रम, सबधी आचार्य जी के सुझाव भी युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं।

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार माध्यमिक शिक्षा अपने आप मे पूर्ण तथा छात्र को भावी जीवन के लिए तैयार करने योग्य होनी चाहिए। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधार भी तभी किया जा सकता है जब माध्यमिक स्तर पर ही अनावश्यक भीड को रोक लिया जाए। केवल योग्य शिक्षार्थी ही विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करें तभी उच्च शिक्षा के शोध, प्रसार जैसे उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सकता है। नई शिक्षा पद्धति में व्यवसाय को डिग्री से पृथक करने संबंधी प्रावधान उच्च शिक्षा पर अनावश्यक बोझ को समाप्त करने के लिए ही रखा गया है। शिक्षा मनीषी तथा समाज सेवी आचार्य जी के इस सुझाव पर गहन चिंतन करके माध्यमिक शिक्षा को और अधिक रोजगारपरक बना सकते हैं।

उच्च शिक्षा

अपने जीवन काल में आचार्य जी उच्च शिक्षा से अधिक समय तक जुड़े रहे। शिक्षा के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आप के विचार अधिक सुस्पष्ट हैं। आचार्य जी विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम मे विज्ञान, समाज विज्ञान, मानविकी, भाषा आदि विषयों के विभाग तो रखना ही चाहते थे साथ ही संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ कालेजों की भाति प्रत्येक विभाग के छात्रों के लिए अपने देश के विधान की रूपरेखा, प्राचीन इतिहास एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जानकारी सबधी विषय अनिवार्य किए जाने के पक्षधर थे। विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा को राष्ट्रभाषा के माध्यम से देने की वकालत आचार्य जी सदैव करते थे। उनका दृष्टिकोण था कि इस स्तर पर मातृभाषा मे शिक्षा देने से देश के समस्त विश्वविद्यालयों से आपस मे विशेषज्ञों के आदान-प्रदान में अड़चन आएगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ-साथ वे सभी भाषाओ की एक ही लिपि बनाने के विषय पर भी ज़ोर देते थे। वे यह भी चाहते थे कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक ही वैज्ञानिक शब्दावली बनाई जानी चाहिए।

विश्वविद्यालयों के लिए शोध को वे परमावश्यक मानते थे। उनका दृष्टिकोण था कि केवल परीक्षा लेने वाले विश्वविद्यालय भी अपने कालेजो में शोध की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करें। उच्च शिक्षा में वित्तीय व्यवस्था के प्रति भी आचार्य जी पूर्णत: सजग थे। विद्यार्थियों के लिए उनका कहना था कि निर्धन व योग्य छात्रो को छात्रवृत्ति तथा निर्वाह भत्ता मिलना चाहिए। वे पुस्तकालयों के प्रयोग को नि:शुल्क रखना चाहते थे तथा पुस्तकालयों से निर्धन छात्रो के लिए सभी पाठ्य पुस्तकों की नि:शुल्क व्यवस्था करवाना चाहते थे। उच्च शिक्षा की समस्त वित्तीय व्यवस्था के लिए यदि आवश्यक हो तो वे सेल्स टैक्स की तर्ज पर एजूकेशन टैक्स लगाने को बुरा नही समझते थे। आचार्य जी का यह भी विचार था कि विश्वविद्यालय अनुदान समिति मे चूकि विश्वविद्यालय के सदस्य ही रहते है, अत· उसकी सभी सिफारिशे अक्षरश: मानी जानी चाहिए।

स्पष्टत· आचार्य जी उच्च शिक्षा को देश की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक व महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनका दृष्टिकोण था कि विश्वविद्यालय अपने यहां से देश के लिए जिम्मेदार नागरिकों का निर्माण करें। उच्च शिक्षा में एक सामान्य अनिवार्य पाठ्यक्रम संबधी उनके सुझावो को शिक्षा जगत में माना जा सकता है। यद्यपि स्वतंत्रता से लेकर अब तक समय-समय पर स्नातक स्तर की शिक्षा में कभी कोई भाषा, कभी नैतिक शिक्षा, कभी भारतीय सस्कृति आदि के अनिवार्य पाठ्यक्रम चलाए गए परन्तु वे सभी मात्र प्रयोग स्तर तक ही सीमित रहे। आज का विद्यार्थी कल देश की

बागडोर संभालेगा। यदि उसे देश के इतिहास, संविधान, दार्शनिक पृष्ठभूमि, सास्कृतिक उत्कर्ष तथा अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की जानकारी होगी तब वह किताबी कीडा न बन कर देश के विकास में सक्रिय योगदान दे सकेगा तथा समाज के लिए कल्याणकारी बन कर सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया: की अवधारणा को साकार करेगा।

राष्ट्र भाषा के संदर्भ में भी आचार्य जी के विचार युक्तिसगत प्रतीत होते हैं। सखेद लिखना पड़ रहा है कि अभी तक भाषा की समस्या हमारे देश में राजनीतिक दाव-पेंच मे उलझी हुई है और राष्ट्रभाषा हिन्दी निर्वासन की पीड़ा सह रही है। राष्ट्र भाषा को उच्च शिक्षा मे प्रतिष्ठापित करने के लिए हमारे पास राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है, फलस्वरूप हमारे विश्वविद्यालयो मे अग्रेजी का बोलबाला है। एक स्वतत्र देश का अपना सविधान होता है, अपना झंडा होता है, अपनी भाषा होती है। दु:ख है कि सविधान व झडे के मामले में तो हम स्वतत्र हैं किन्तु भाषाई दासता की बेडियो से आज भी हम जकडे हुए है। राष्ट्रभाषा मे उच्च शिक्षा की व्यवस्था करके हम देश की अस्मिता की रक्षा कर सकते हैं। विश्वविद्यालयो मे शोध की व्यवस्था सबधी आचार्य जी के विचारो के अनुरूप यद्यपि हमारे देश में कार्य हो रहा है परन्तु शोध की गुणवत्ता पर पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों की शोध समितियों मे विद्वानों को मनोनीत किया जाना चाहिए अन्यथा शोध कार्यो की पुनरावृत्ति व्यापक पैमाने पर होती रहेगी और शोध उपाधि का स्तर निम्नतर होता जाएगा।

उच्च शिक्षा में धन की कमी के लिए एजूकेशन टैक्स लगाने का सुझाव ध्यान देने योग्य है। इस समय हमारे देश मे कुल खर्च का मात्र 3 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जाता है। इसमे विश्वविद्यालयो के खर्च पर व्यय की गई राशि आवश्यकता से कहीं कम है। इस प्रकार के टैक्स से शिक्षा के सभी क्षेत्रों की वित्तीय कठिनाइयां दूर की जा सकती हैं। निर्धन छात्रों के लिए आचार्य जी के विभिन्न सुझाव जैसे छात्रवृत्ति, निर्वाह भत्ता, नि:शुल्क पाठ्य पुस्तको की व्यवस्था आदि भी विचारणीय है। यद्यपि शिक्षा के सभी क्षेत्रों मे इस प्रकार की सहायता दी जा रही है परन्तु इससे सभी गरीब विद्यार्थी लाभान्वित नही हो पा रहे है। इस सुविधा में और अधिक वृद्धि की जानी चाहिए।

व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा

आचार्य जी व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व देते थे। प्राथमिक स्तर पर हस्तशिल्प की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था व माध्यमिक स्तर पर विभिन्न वैकल्पिक वर्गो की शिक्षा सबधी उनकी अवधारणा व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले हैं। उनके विचार से देश का कोई व्यवसाय किसी वर्ग या जाति की नियति नहीं है, वरन किसी व्यवसाय मे पारगत होना परम्परा एवं वैयक्तिक दक्षता दोनों पर निर्भर रहता है। अत: उनका विचार था कि विभिन्न व्यवसायो मे प्रवीण युवक-युवतियों को उस व्यवसाय का विशेष प्रशिक्षण मिलना चाहिए तथा निर्धन बालकों को इस सदर्भ मे पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिए। वे देश में पर्याप्त संख्या मे व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की सस्थाए स्थापित करने के लिए पक्षधर थे ताकि देश को हर क्षेत्र में विशेषज्ञ मिल सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनका मत था कि विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा प्रौद्योगिकी संस्थानो में पर्याप्त संख्या मे शिक्षक-प्रशिक्षण, मेडिकल, अभियांत्रिकी, यंत्र-चालन आदि की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए वे नए सिरे से संस्थाए स्थापित करने के पक्ष में भी थे।

व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की महत्ता को स्वीकार करने मे देश में किसी भी वर्ग को कोई भी संशय नहीं है। आज अपने देश मे इस प्रकार की शिक्षण सुविधाओं का जनसख्या के अनुपात से बहुत अधिक विस्तार नहीं हो सका है। साथ ही जैसा कि आचार्य जी का विचार था कि किसी व्यवसाय मे योग्य युवक-युवतियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, इस प्रकार की कोई विशेष सुविधा का विस्तार हमारी केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारें नहीं कर सकी हैं। देश के व्यावसायिक जगत को उत्तम कोटि के विशेषज्ञ व विशिष्ट श्रमिक मिल सकें इसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी दोनों प्रकार के प्रयास किए जाने चाहिए।

जन शिक्षा

जन शिक्षा या जनता की शिक्षा मे आचार्य जी की अत्यधिक रुचि थी। वे साक्षरता मात्र को जन शिक्षा नहीं मानते थे। इस प्रकार की शिक्षा के लिए सर्वप्रथम वे जनता की सास्कृतिक व शिक्षा सबंधी कमियो का निराकरण चाहते थे। वे साक्षरता को जन शिक्षा की पहली सीढी मानते थे,

जिसके लिए उन्होंने व्यवस्था दी थी कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति दो निरक्षर व्यक्तियों को साक्षर बनाए। वे एक ऐसा जन आन्दोलन चाहते थे। उनका मत था कि व्यक्ति को समाज शिक्षा के रूप मे देश की स्थिति, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक जागरण व सुसांस्कृतिक रुचियों की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि देश का न केवल पढालिखा वर्ग वरन प्रत्येक सामान्य जन भी लोकतात्रिक चेतना से युक्त हो। तभी हमारे देश में लोकतंत्र सफल हो सकता है। जनतंत्र जब तक हमारे रक्त, मांस, मज्जा का अभिन्न अंग नही बन जाता, तब तक इसकी सफलता संदिग्ध बनी रहेगी। इस कार्य के लिए सरकार को विशेष रूप से प्रयत्न करने का सुझाव आचार्य जी ने दिया है। साथ ही गैर-सरकारी प्रयत्नों को जारी रखने की बात भी उन्होने कही है। उनके विचार से ज़न शिक्षा का व्यापक प्रसार तभी हो सकता है जब इस प्रकार की शिक्षा मुहल्लो में, कार्यालयो में, हाट मे, गांव में, चौपालों में, पाठशालाओ में, व मन्दिर-मस्जिद सभी स्थानों में दी जाए। हमारे देश मे कुछ इसी प्रकार के शिक्षा कार्यक्रम प्रौढ़ शिक्षा के रूप मे चल रहे हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों मे प्रौढ़ शिक्षा संबंधी विभाग इस दिशा मे कार्य कर रहे हैं। देश में प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति भी हुई है, परन्तु प्रौढ़ शिक्षा अभी जन शिक्षा जैसे आन्दोलन मे परिवर्तित नही हो पाई है। अधिकांश प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में अक्षर ज्ञान देकर इतिश्री कर दी जाती है, जबकि इस कार्यक्रम के सांस्कृतिक चेतना जगाने वाले आयाम की ओर से उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आने चाहिए। अभी भी लोकतंत्र का मुख्य चुनाव, व्यवहार व्यक्ति विशेष की अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं है। चुनाव के समय ग्राम प्रधान, जाति-पंचायत, विभिन्न धार्मिक संगठनों के फतवे जारी करके वोटर को प्रभावित किया जाता है। जन शिक्षा का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है, जब देश का प्रत्येक नागरिक चाहे वह सुदूर रेगिस्तान में रहता हो अथवा बर्फीले पहाड़ों पर अथवा दोआब मे, स्वय की निर्णय शक्ति से परिपूर्ण हो और लोकतात्रिक व्यवहार मे किसी जोर-जबरदस्ती से प्रभावित न हो। आचार्य जी की जन शिक्षा की संकल्पना हमारा मार्गदर्शन कर सकती है और इस तरह भारत में जन शिक्षा को एक सक्रिय समर्थ आन्दोलन का जामा पहनाया जा सकता है।

यहा वर्णित शिक्षा के क्षेत्रो में आचार्य जी के शैक्षिक विचारों के निहितार्थ जानने व भावी भारत में उनकी सगति पर विचार करने के बाद इसका परिज्ञान समीचीन होगा। आचार्य जी के समक्ष देश की एकता व लक्ष्य सर्वोपरि था। इस लक्ष्य की प्राप्ति मे वे शिक्षा को ही सीढ़ी मानते थे। आज देश के सम्मुख ज्वलन्त समस्याएं हैं। उनके समाधान के लिए आचार्य जी का यह कथन देशवासियों को सही दिशा में चिंतन करने की प्रेरणा देता है–

''......सबके लिए एक ही सामाजिक और आर्थिक नीति, सभी जातियो और धर्मों के लोगों के लिए एक ही कानून, एक ही राष्ट्रभाषा और एक ही राष्ट्रलिपि, ये सब ऐसे साधन हैं जिनसे राष्ट्रीय एकता स्थापित की जा सकती है।'' □□

संदर्भ

1. गुप्ता, आशा, **सोशलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस : नरेन्द्र देवास कांट्रीब्यूशन,** नई दिल्ली, गीतांजली प्रकाशन।
2 चौबे, स. प्र., 1969, **भारत में शिक्षा का विकास**, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
3. देव, आचार्य नरेन्द, 1979, **टुवर्डस सोशलिस्ट सोसायटी**, नई दिल्ली, सेन्टर आफ अप्लाईड पालिटिक्स।
4. देव, आचार्य नरेन्द्र, सम्वत् 2006, **राष्ट्रीयता और समाजवाद**, बनारस ज्ञान मंडल लिमिटेड।
5. द्विवेदी, श्याम नारायण, 1990, **आचार्य नरेन्द्र देव के सामाजिक एवं राजनैतिक चिंतन के शैक्षिक निहितार्थ,** अप्रकाशित पी-एच.डी शोध प्रबन्ध, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
6. मोहन कमल, 1981, **भारतीय पुनर्जागरण तथा प्रमुख भारतीय शिक्षा शास्त्री**, प्रतिभा प्रकाशन केन्द्र, फैजाबाद।
7. **रिपोर्ट आफ द सेक्रेटरी एजूकेशन रिआर्गनाइजेशन कमेटी**, उ प्र. लखनऊ, सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिग एण्ड स्टेशनरी, 1953.
8. लाल, मु. वि., 1970, **आचार्य नरेन्द्र देव–युग और नेतृत्व**, आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी।

न्याय और वैशेषिक दर्शन में वर्णित सृष्टि मीमांसा

सुमन रायज़ादा

रीडर
शिक्षा संकाय
डी. ई. आई., दयालबाग, आगरा

भारतीय मान्यता के अनुसार प्राणियों की चौरासी लाख योनियां निश्चित की गई हैं जिनमें मानव योनि सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। मानव योनि में व्यक्ति अपने कर्मों के द्वारा हरेक प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त कर मुक्ति लाभ भी कर सकता है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने न्याय वैशेषिक दर्शन का प्राथमिक परिचय देते हुए इन दर्शनों में वर्णित सृष्टि मीमांसा की प्रक्रिया को दर्शाने का प्रयत्न किया है। न्याय और वैशेषिक दर्शन विश्लेषणात्मक दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें आध्यात्मिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सृष्टि का यह नित्य नियम है कि चौरासी लाख योनियों मे से किसी भी योनि मे जन्म लेकर प्राणी अधिक से अधिक सुख पाना चाहता है। उनमें से मनुष्य योनि ही ऐसी है, जिसमें उत्पन्न होकर वह प्राणी पुण्य कर्मों के द्वारा सुख-साधन का उपार्जन तथा यहां तक कि मोक्षलाभ भी प्राप्त कर सकता है। शेष समस्त योनियो में तो प्राणियों के कर्मों का क्षय मात्र ही है। इसी कारण मनुष्य योनि को मनीषियो ने सर्वश्रेष्ठ माना है ·

कदाचिल्लभते जन्म मानुष्यं पुण्यसचयात्

–मनुस्मृति

भारतीय दर्शनों का मुख्य लक्ष्य तत्व ज्ञान कराना है। भारतीय विचारधारा के अन्य दर्शन जहा मुख्यतः कल्पनापरक है, इन अर्थों मे कि वे संसार की अखण्ड रूप से विवेचना करते हैं, वहां न्याय और वैशेषिक दर्शन विश्लेषणात्मक दर्शन का प्रतिनिधित्व करते है और ऐसी विधि का प्रयोग करते हैं जो इनके अनुयायियो के अनुसार वैज्ञानिक है। इन दर्शनो का मुख्य उद्देश्य उन सशयवादी परिणामो का निराकरण करना है जो बौद्धों के प्रत्यक्ष ज्ञानवाद से निकलते हैं। इनका प्रयास परंपरागत निष्कर्षों के प्रति, अर्थात अन्तर्जगत मे जीवात्मा और बाह्य जगत मे प्रकृति के प्रति विश्वास को पुनः दृढ़ करने की ओर है। यह ऐसा केवल प्रामाण्य के आधार पर नहीं बल्कि तर्क के आधार पर करते हैं। न्याय और वैशेषिक दर्शन उन सबको सत्य मानते हैं जो तर्क की कसौटी पर खरे उतर सकते है। इन दर्शनों की विशेषता यही है कि ये आध्यात्मिक समस्याओं का आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचन करते हैं।

तत्व ज्ञान हेतु वैशेषिक दर्शन मे सात पदार्थ माने गए है जिन्हें न्याय दर्शन ने भी मान्यता दी है क्योकि वैशेषिक की सृष्टि मीमासा न्याय दर्शन के अविभाज्य अंग के रूप मे स्वीकृत हो चुकी है। ये सात पदार्थ है :

सात पदार्थ

द्रव्य | गुण | कर्म | सामान्य | विशेष | समवाय | अभाव

द्रव्य– जिसमे क्रिया व गुण हो तथा जो समवायिकारण हो, उसे द्रव्य कहते है। द्रव्य 9 प्रकार के होते हैं।

द्रव्य के प्रकार एवं विशेष गुण

पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश	काल और दिक्	आत्मा	मन
रूप	रूप	रूप	स्पर्श	शब्द	सख्या	चैतन्य	संख्या
रस	रस	स्पर्श	वायु के प्रकार		परिमाण		परिमाण
गन्ध	शीतल स्पर्श		प्राण		संयोग		सयोग
स्पर्श	द्रव्यत्व		अपान		विभाग		विभाग
	स्निग्धत्व		समान		पृथकत्व		पृथकत्व
			उदान				परत्व
			व्यान				अपरत्व
							सस्कार

पृथ्वी–जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श–ये चारों गुण विद्यमान हों वह पृथ्वी है। पृथ्वी का प्रमुख गुण गन्ध है। इसे ग्रहण करने वाली इन्द्रिय नासिका है। पृथ्वी नित्य व अनित्य दो प्रकार की है। नित्य परमाणु रूप में है और अनित्य कार्य रूप में।

जल–जिसमें रूप, रस, स्पर्श, द्रव्यत्व और स्निग्धत्व है। वह द्रव्य जल है। जल का विशेष गुण रस है। जल भी दो प्रकार का होता है। नित्य और अनित्य। जल की इन्द्रिय रसना है।

तेज (अग्नि)–जिसमे रूप और स्पर्श यह दो गुण विद्यमान हों उसे तेज कहते हैं। अग्नि का विशेष गुण ज्योतिष्मत्ता है। अग्नि का स्पर्श उष्ण और रूप भास्कर होता है। तेजस् इन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय है।

वायु–जिसमें केवल स्पर्श गुण विद्यमान हो, उसे वायु कहते हैं। वायु अदृश्य है। यह विस्तार में असीमित है और अंशों से मिलकर बनी है। वायु में गतियों के होने से यह अनुमान किया जाता है कि वायु खण्डित स्वरूप की है। यदि वायु अंशों से रहित एक पूर्ण अविच्छिन्नता होती तो उसमें गति सम्भव न होती (वैशेषिक सूत्र 2.1.14) इसे द्रव्य इसलिए कहा गया है क्योंकि इसमें गुण तथा क्रिया है। स्पर्श वायु का विशेष गुण है। त्वक् इन्द्रिय है।

आकाश–वह वस्तु जो परमाणुओं को परस्पर संयुक्त किए रहती है, यद्यपि स्वयं परमाणुओं से निर्मित नहीं है वह आकाश है। आकाश मे केवल शब्द गुण है। (न्यायसूत्र 2.2.38) आकाश एक सरल (अमिश्रित) निरन्तर स्थाई तथा अनन्त द्रव्य है। यह रग, रस, गन्ध और स्पर्श आदि गुणों से रहित है। यह निष्क्रिय है। समस्त भौतिक पदार्थ इसके साथ संयुक्त पाए जाते हैं। **सर्वसंयोग-शब्द-विभवाच्च सर्वगतम्** (न्याय सूत्र 4.2.21) अर्थात् अव्यूह, अविष्टम्भ और विभुत्व यह धर्म आकाश के हैं।

काल और दिक्–भूत, भविष्य और वर्तमान के व्यवहार का हेतु काल है। यह नित्य और सर्वव्यापी है। (तर्क संग्रह-4) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के व्यवहार का हेतु द्रव्य दिक् है। दिक् काल के समान नित्य, निरवयव व एक है किन्तु उपाधि भेद से पूर्व, पश्चिम आदि कई प्रकार के मालूम पडते हैं।

यद्यपि दोनों ही निराकार, निरवयव, नित्य और सर्वव्यापक हैं किन्तु दिक् काल से अलग पदार्थ हैं। दिक् दैशिक परत्व (दूरी) और अपरत्व (निकटता) का कारण है और काल कालिकपरत्व और अपरत्व का कारण है। दिक् का विभाग अनिश्चित है और काल के विभाग निश्चित होते हैं।

आत्मा—ज्ञान के अधिकरण को आत्मा कहते हैं। चैतन्य आत्मा का विशेष गुण है। न्याय दर्शन में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख और ज्ञान ये 6 लक्षण बताए गए हैं। ज्ञाता जिस वस्तु को सुख का कारण समझता है उसे पाने की इच्छा में प्रवृत्त होता है और जिसे दु:ख का कारण मानता है उससे निवृत्त होता है। आत्मा का ज्ञात रूप स्वभाव होने से स्मरण भी उसी का धर्म है (न्याय सूत्र-3.2.42) अत: आत्मा द्रव्य है और निरवयव होने से नित्य है।

मन—मन अणु और नित्य है। प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना मन होता है। यह ज्ञान का एक साधन मात्र है इसलिए अन्य इन्द्रियों के समान जड़ है। ज्ञान चाहे बाह्य वस्तु का हो, चाहे आन्तरिक अवस्थाओं का उसकी उत्पत्ति के लिए मन एक अनिवार्य सहायक कारण है। हर एक प्रयोजन के लिए आत्मा का वैशिष्ट्य मन के वैशिष्ट्य पर निर्भर करता है। जो आत्मा के साथ बराबर जीवन-भर रहता है। मन भी आत्मा के समान असंख्य है क्योकि वही मन जन्म-जन्मान्तर में भी बराबर आत्मा के साथ रहता है। इसलिए आत्मा के सासारिक बन्धन में पडने का मूल कारण निश्चय ही उसका मन होता है (न्याय मंजरी पृ. 499)।

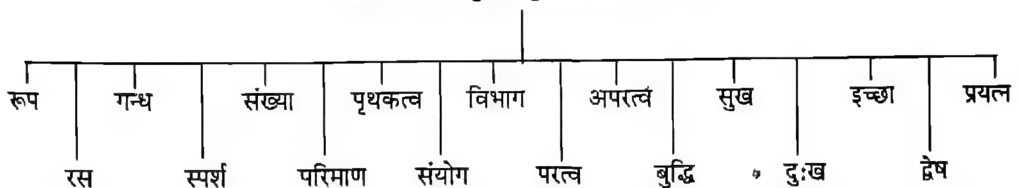
गुण—गुण वह पदार्थ है जो, द्रव्याश्रित है। यह द्रव्य के अन्दर रहता है और स्वयं अन्य गुणों को धारण नहीं करता। कणाद ने वैशेषिक सूत्र (1.1.16) में गुण की परिभाषा इस प्रकार की है—गुण वह है "जिसका अधिष्ठान द्रव्य हो जिसमे और कोई गुण न हो और जो किसी भी संयोग अथवा वियोजन का कारण न हो और न जिसका इनसे कोई सबंध हो। वैशेषिक सूत्र (1.1 6) में 17 गुण बताए गए हैं—

अक्षपाद गौतम ने अपने सूत्र में गुणों को इस प्रकार वर्णित किया है—गन्ध-रस-रूप-स्पर्श शब्दानां स्पर्शपर्यन्ता: पृथिव्या अप्-तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपाह्याऽऽकाशस्योत्तर:॥ (न्यायसूत्र 3.1.60) अर्थात गन्ध, रस, रूप, स्पर्श ये चार गुण पृथ्वी के; रस, रूप और स्पर्श ये तीन गुण जल के; रूप और स्पर्श ये दो गुण अग्नि के; स्पर्श वायु का और शब्द आकाश का गुण है।

कर्म—पदार्थो की गति (क्रिया) का नाम कर्म है। (कर्म से तात्पर्य यहां गति से है, ऐच्छिक कर्म अथवा कार्यकरण भाव के नैतिक विधान से नहीं है।) यह न तो द्रव्य है और न ही गुण है, बल्कि अपने आप में एक स्वतंत्र पदार्थ है। तमाम गतियों का द्रव्यों से उसी प्रकार संबंध है जैसे कि गुणों का है किन्तु खेद यह है कि गुण द्रव्य का स्थाई स्वरूप है जबकि क्रिया क्षणिक स्वरूप है। कणाद के अनुसार "कर्म वह है जो एक ही द्रव्य में रहता है, गुणों से रहित है तथा संयोग और विभाग का सीधा तथा तात्कालिक कारण है" (वैशेषिक सूत्र 1.1.7) गति के पांच भेद बताए गए हैं—ऊर्ध्वगति, अधोगति, संकोच, विस्तार व सामान्य गति।

सामान्य—सामान्य का अर्थ है जाति। समान धर्म और विरुद्ध धर्म से किए जाने वाले खण्डन को जाति कहा गया है। सामान्य नित्य, एक और अनेक वस्तुओं मे समान रूप से रहने वाला होता है। न्याय सूत्र 1.2.17 एवं न्याय सूत्र 2 2.68 के अनुसार जाति समान रूप से बहुत-सी वस्तुओं में रहती है। जैसे गोत्व एक जाति है वह समान रूप से

कणाद के अनुसार गुणों की संख्या-17



संसार की सभी गायों में पाई जाती है। सामान्य दो प्रकार का है–अधिक देश में रहने वाला तथा कम देश में रहने वाला।

विशेष–विशेष वह नित्य पदार्थ है जिसके कारण एक व्यक्ति संसार के सभी व्यक्तियों से अपने को पृथक करता है। प्रशस्त पादाचार्य के अनुसार विशेष का कभी नाश नहीं होता। वह नित्य द्रव्यो में शास्वत रूप से विद्यमान रहता है और उन्हें एक दूसरे से पृथक करता है (पदार्थ धर्म संग्रह पृ. 44)। जिस प्रकार परमाणु अनन्त संख्या वाले होते हैं उसी प्रकार विशेष भी अनन्त है। विशेष केवल नित्य वस्तुओ को एक दूसरे से पृथक नहीं करते बल्कि स्वयं को भी परस्पर पृथक रखते है। इसीलिए वे सर्वतोव्यावर्तक कहे जाते हैं।

समवाय–पदार्थ धर्म सग्रह में प्रशस्तपाद मे नित्य सबंध को समवाय कहा है–'नित्य सम्बन्ध: समवाय:'। प्रशस्तपाद की इस परिभाषा के अनुसार समवाय वह संबंध है जो उन वस्तुओं में रहता है जिन्हे पृथक नहीं किया जा सकता है और जो परस्पर आधार तथा आधेय के रूप में हैं तथा जो इस विचार का आधार है कि 'इसके अन्दर वह है'। कणाद (वैशेषिक दर्शन) के अनुसार समवाय का तात्पर्य उस संबंध से है जो कारण तथा कार्य के मध्य है। सामान्यत: यह सबंध दो द्रव्यो को उनके गुणो के साथ, एक पूर्ण इकाई को उनके हिस्सों के साथ, गति को गतिमान पदार्थ के साथ, व्यक्ति की विश्व के साथ, कारण को कार्य के साथ संयुक्त रखता है। समवाय संबंध है।

अभाव–भाव का निषेध ही अभाव है–''सर्वभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धे:' (न्यायसूत्र 4.1 37)। भावों में परस्पर अभाव की सिद्धि होने से सब अभाव है। अर्थात बिना भाव पदार्थ के ज्ञान के अभाव का ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि घट ज्ञान के पश्चात ही घटाभाव का ज्ञान होता है। न्याय दर्शन के अनुसार अभाव दो प्रकार का होता है। (न्याय सूत्र 2.2.12) उत्पत्ति से पहले किसी वस्तु का अभाव होता है प्रागभाव और किसी वस्तु के नष्ट होने से उत्पन्न अभाव को प्रध्वंसाभाव कहा जाता है।

कारणवाद

अक्षपाद गौतम ने कार्य और कारण का अलग–अलग अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतानुसार कारण कार्य का उत्पादक होता है जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है अत: मृत्तिका कारण है और घट कार्य है। न्याय का यह भी मत है कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण में असत् रहता है। कार्य का अस्तित्व पहले से कारण में नहीं रहता बल्कि उसका प्रागभाव रहता है। कार्य का तो नवीन आरम्भ और नई सृष्टि होती है और उत्पत्ति के अनन्तर उसका प्रागभाव नष्ट हो जाता है इसलिए इसको आरम्भवाद या असत्कार्यवाद भी कहते है।

कारण का स्वरूप

जो नियत रूप से कार्य के पूर्ववर्ती हो और अन्यथा सिद्ध से भिन्न हो, उसे कारण कहते हैं। अन्यथा सिद्धों का कार्य के साथ साक्षात संबंध नहीं होता क्योंकि इनके बिना भी कार्य की उत्पत्ति हो जाती है। जैसे घट निर्माण के समय चाक से एक ध्वनि होती है वह ध्वनि घट के नियत पूर्ववर्ती है किन्तु वह घड़े का कारण नहीं है।

कारण के तीन भेद माने गए हैं



परमाणुवाद

संसार के सभी दृश्य पदार्थ सावयव है, केवल आकाश नित्य एव विभु है, उसका अवयव नहीं होता है क्योकि यह अन्य तत्वो के साथ मिश्रित नहीं होता। पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये सावयव होते हैं। इन्हें छोटे–छोटे टुकडों में तोड़ा जा सकता है। इन टुकड़ो को तोड़ते-तोडते जब उस स्थिति में पहुंच जाते हैं जहा उनका विभाजन नहीं हो सकता, उस अविभाज्य अंश को परमाणु कहते हैं। ''पर वा त्रुटे:'' नाश से जो परम् है अर्थात परमाणु वह सूक्ष्मतम परिणाम है जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता इसीलिए उसे अविभाज्य, निरयव एवं नित्य कहा जाता है। परमाणुओं की न उत्पत्ति होती है न विनाश।

सृष्टि एवं प्रलय

न्याय–वैशेषिक दर्शनों में जगत की उत्पत्ति परमाणुओं से मानी गई है। जब ईश्वर की सृष्टि विषयक इच्छा होती है, तो सर्वप्रथम वायु के परमाणुओं से स्पन्दन होता है और दो परमाणु परस्पर मिलते है। इन परमाणुओ के संयोग से

क्रमशः द्वयणुक, चतुरणुक, पंचाणुक आदि उत्पत्ति परम्परा से महावायु उत्पन्न होती है। इसके पश्चात जलीय परमाणुओ में स्पन्दन होता है और उसी क्रम से जल 'महाभूत' की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार पार्थिव परमाणुओ के संयोग से पृथ्वी 'महाभूत' तदनन्तर तेजस् परमाणुओ के संयोग से तेज 'महाभूत' की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार चारो महाभूतो की उत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर के ध्यान मात्र से पार्थिव और तेजस् परमाणुओ से 'हिरण्यमय पिण्ड' उत्पन्न होता है इस हिरण्यगर्भ से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। उनसे बुद्धि और अहकार का जन्म हुआ, उसी को मन कहा गया है, उस चेतन परमेश्वर के संकल्प से जगत की सृष्टि होती है।

इन दर्शनों मे ईश्वर के अस्तित्व पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया गया है। ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है और अनन्त ज्ञान का आगार है। इस जगत का निर्माता, सस्थापक नियामक और संहारक सभी कुछ वही है। दिक्, काल, आकाश, मन और आत्मा तथा भौतिक परमाणुओ की सहायता से वह सृष्टि की रचना करता है। उसे विश्वकर्मा कहा जाता है। वेदान्त के सिद्धान्त की भाति ईश्वर मकडी की भांति अपने उदर से सृष्टि की रचना नहीं करता बल्कि कुम्भकार की भांति नित्य परमाणुओं के उपादानो को लेकर उसको बनाता है। जैसे घड़े की रचना कुम्हार के बिना नहीं हो सकती उसी प्रकार इतनी विशद व्यवस्थित सृष्टि की रचना का भी निमित्त कारण होना चाहिए। यह निमित्त कारण ईश्वर ही है। कुछ विद्वानो का मत है कि हम नित्य बीज के कोपलो और पत्तियों को अंकुरित होते देखते हैं। यह प्रकृति की सामान्य प्रक्रिया है। इसमें ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। इस संबंध में न्याय का उत्तर यह है कि ईश्वर परावर्ती है, सृष्टि में सारा व्यापार ईश्वर की ही इच्छा से होता है। उसकी इच्छा शक्ति ही मूल कारण है।

इस प्रकार न्याय वैशेषिक दर्शनों ने जगत की सृष्टि परमाणुओ के संयोग से मानी है किन्तु नित्य व निर्विकार, परमाणु का 'अदृष्ट' ईश्वर के अधीन है। ये ईश्वर के साथ-साथ अनेक जीवात्माओं और परमाणुओ का अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं अतः ये अनेक तत्ववादी दर्शन हैं। ये सभी प्रत्यक्ष वस्तुओ को भिन्न-भिन्न परमाणुओं के संयोग का परिणाम मानते हैं। इस प्रकार सृष्टि नैतिक आधार पर आधारित है। जीवात्माओं के अदृष्टानुसार ही उन्हें कर्मफल भोग कराने और अन्ततः अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के निमित्त ही ईश्वर सृष्टि या संहार करता है। अस्तु सृष्टि में एक भौतिक व्यवस्था दिखाई देती है जो विधाता का अस्तित्व प्रकट करती है। □□

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत शिक्षण की उपादेयता

नवल किशोर चौधरी

कनिष्ट प्रोजेक्ट फैलो
शै. अनु. और नीतिगत संदर्श विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली-16

संस्कृत साहित्य में संचित ज्ञान राशि अपने आप में बेजोड़ है। चूंकि शिक्षा का एक मूल उद्देश्य है अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखकर भावी पीढ़ी तक पहुंचाना अतः यह आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि संस्कृत भाषा शिक्षण के माध्यम से छात्रों को अपनी भारतीय संस्कृति से परिचित कराया जाए, उसमें उपलब्ध ज्ञान का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण कर जनकल्याण में लगाया जाए तथा चारित्रिक व नैतिक विकास की दृष्टि से प्रासंगिक साहित्य का उपयोग किया जाए। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इन्हीं विचारों के संदर्भ में संस्कृत शिक्षण के महत्त्व को अनेक उदाहरणों द्वारा स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

संस्कृत शब्द की निष्पत्ति समपूर्वक ''कृ'' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सम्यक्, परिमार्जित, शुद्ध और दोष रहित अर्थात जो अच्छी तरह से सस्कारित है उसे संस्कृत कहते हैं।

संस्कृत भाषा की विशेषता

सस्कृत भाषा जीव मात्र की भाषा है क्योकि उसका सबंध आत्मा से है और आत्मा वेदान्त की दृष्टि से एक है। एक ही आत्मा सभी जीवो में व्याप्त है। मन्त्रोच्चारण की ध्वनि सुनकर व्यक्ति का अन्तःकरण प्रभावित होता है। लोग हर्ष और आनन्द की अनुभूति करते हैं। मन्त्रो के अर्थबोध की दृष्टि से सामान्यजन की तो बात ही क्या, जो लोग उन मन्त्रों का उच्चारण करते हैं उनमें से 90% उच्चारणकर्ता उन मन्त्रों का स्वयं अर्थ नहीं समझते हैं। फिर भी उन मंत्रो का उच्चारण कर एक अप्रतिम आनन्द की अनुभूति करते हैं। यह संस्कृत भाषा की अलौकिक विशेषता है।

संस्कृत भाषा मे अपार ज्ञान भण्डार सुरक्षित है। समय आ गया है कि उस भण्डार में से ज्ञान राशि निकाल कर आधुनिक सस्कृति को समृद्ध किया जाए। सस्कृत भाषा की एक अन्य विशेषता यह है कि यह एक विज्ञान सम्मत भाषा है। इस भाषा का विद्वान लिखकर या बोलकर जिस आशय को प्रकट करना चाहेगा श्रोता व पाठक को उस पंक्ति को सुनकर या पढ़कर उसी अर्थ का बोध होगा। इस भाषा में भ्रम का कोई स्थान नही है। इन्हीं विशेषताओ के कारण 1985 ई. मे भाषा वैज्ञानिकों की अमेरिका में हुई एक बैठक में यह तथ्य सामने आया कि संसार मे जितनी भी भाषाएं बोली या लिखी जाती हैं उनमें से संस्कृत भाषा ही कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयोगी है। भाषा वैज्ञानिकों के इस तर्क का आधार संस्कृत भाषा का बिलक्षण व्याकरण ही था। वस्तुतः संस्कृत भाषा का व्याकरण अत्यन्त समृद्ध व सशक्त है। इसके रचयिता मुनित्रय-पाणिनि कात्यायन और पतंजलि को बार-बार नमस्कार है।

संस्कृत भाषा का अन्य भाषाओं के साथ संबंध

संस्कृत भाषा का विश्व की अन्य अनेक प्रतिष्ठित व प्राचीन भाषाओ के साथ क्या संबंध है? इस दृष्टि से विचार

करने पर यह पाया जाता है कि संस्कृत भाषा का विश्व की अनेक भाषाओं के साथ अत्यन्त गहरा व निकट का संबंध है। विश्व की अन्य अनेक प्रतिष्ठित भाषाओं मे जो व्यवहृत शब्द हैं उन शब्दों पर संस्कृत का काफी प्रभाव है। यथा चीनी, ग्रीक, लैटिन तथा अग्रेजी आदि भाषाओं के साथ संस्कृत का संबंध है। चीनी भाषा में कुछ महीनो के नाम इस प्रकार हैं–पौहुआ, माकुआ, और फालकुना इन मासवाची शब्दों को क्रमशः पौष, माघ और फाल्गुन शब्दों के साथ रखकर पढ़ें तथा विचार करें कि चीनी और संस्कृत मे कितनी साम्यता है। इसी तरह ग्रीक और लैटिन भाषाओ के साथ इस भाषा के संबंध को परखा जा सकता है। सस्कृत भाषा के "पितृ" शब्द से ही पेटर और फादर शब्द बने हैं। अंग्रेजी भाषा का ब्रदर शब्द संस्कृत भाषा के भ्रातृ शब्द से निर्मित है। अंग्रेजी के कुछ ही शब्द नहीं अपितु अनेक शब्द संस्कृत भाषा के शब्दों से प्रभावित हैं यथा–नोज, टूथ, माइण्ड, कप, हैण्ड और स्टेशन इन शब्दो का संबंध क्रमशः नस्, दन्त, मन, कुप्य, हन् और स्था शब्दों से कहीं न कही अवश्य है। अंग्रेजी के अन्य शब्द–मैड, डिवाइन, काउ संस्कृत के मत्त, दिव्य, गो, शब्दों से प्रभावित हैं।

इसी प्रकार मंगोल भाषा के शब्दों के साथ सस्कृत के शब्दो का सबंध देखा जा सकता है। मंगोल भाषा में कुछ दिनो के नाम इस प्रकार हैं–आदिया, सोमिया, बुधिया, सुकर, संचीव आदि। इसमें आदिया रविवार को कहते हैं जो आदित्य शब्द से उत्पन्न है यह सूर्य का ही एक नाम है अर्थात आदित्यवार को आदिया कहा गया है। संचीव शब्द शनिवार के लिए आया है यह संचीव शब्द शनिश्चर शब्द से संबंधित है। रूसी भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार हैं–अगोन, द्वेर, नेवा, एस्त, कुदा, तुदा, जिनानिये, निवेस्ता और प्लावानिये। इन समस्त रूसी शब्दों को संस्कृत भाषा के अग्रलिखित शब्दों के साथ रखकर पढ़िए–अग्नि, द्वार, नभ, अस्त, कुत्र, तत्र, ज्ञान, नवोढ़ा और प्लावन। तनिक विचार कर देखें परस्पर इन शब्दों में कितना साम्य है।

अरबी व फारसी भाषा का संस्कृत से कितना गहरा संबंध है यह भाषा वैज्ञानिकों के माध्यम से हम सभी जानते ही हैं। अतः यहां पृष्टपेषण की आवश्यकता नहीं है। सस्कृत भाषा से विश्व की भाषा ही प्रभावित नहीं है अपितु अनेक देशों के नाम व संस्कृति भी प्रभावित हैं। कुछ देशों के नाम इस प्रकार हैं–साइबेरिया, सिंगापुर, सुमात्रा, लाओस, जावा, पेशावर, कन्धार, काठमाण्डू इत्यादि क्रमशः शिविरदेश, सिंहपुर, स्वर्णदीप, लावदेश, यवद्वीप, पुरुषपुर, गन्धार, काष्ठमण्डप इत्यादि उपरोक्त देशो के नाम संस्कृत के इन शब्दों से प्रभावित हैं।

भारतीय एकता का सूत्र संस्कृत

भारतीय एकता का सूत्र मात्र सस्कृत है। आज बहुधा लोग अपने भाषण में या अपनी कविता या काव्य में 'अनेकता में एकता' का उल्लेख करते हुए दिखाई देते हैं जबकि भौगोलिक दृष्टि से भारत में सर्वत्र अनेकता का साम्राज्य है। खान–पान व वेश–भूषा की दृष्टि से भी कहीं एकता का आभास तक नहीं होता है। यहां भाषा और बोली भी एक नहीं है, संस्कृतियों व त्योहारों में भी भिन्नता पाई जाती है। यहा सहस्रों से अधिक तो जातिया निवास करती हैं और प्रत्येक जाति की अपनी एक अलग संस्कृति व वेश–भूषा है जो अनेकता का परिचायक है। विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों के लोग यहां निवास करते हैं फिर भी आज भारत एक है। विश्व भर मे यह एक चमत्कार ही तो है। आज विश्व के कुछ कूटनीतिज्ञों को भारतीय एकता फूटी आंख नहीं सुहाती है। वे इसको तोड़ने की जी जान से कोशिश कर रहे हैं। यह नहीं कि उनका प्रयास शत्–प्रतिशत् निष्फल ही जाता है कुछ तो हम लोग प्रभावित होते भी हैं किन्तु हम सब के सब एक ऐसे प्रबल धागे से बंधे हुए हैं जो अपनी सूक्ष्मता के कारण दिखाई तो नहीं देता किन्तु प्रबल इतना है कि आज तक कितनी भी आंधियां आईं वह उन सबको झेलते हुए भारतवासियों को अलग होने से बचाता रहा है। वह धागा भारतीय संस्कृति या भारतीय विचारधारा ही है जिससे भारतीय आत्मा प्रभावित है। यह समस्त विचार और संस्कृति सस्कृत भाषा में निबद्ध है।

भारतीय संस्कृति का आधार वेद है और वेद की भाषा संस्कृत है। वेद सर्वप्राचीन व आदि ग्रन्थ है। मानव सभ्यता का जितना विकसित रूप वेदों में मिलता है उतना विकास कदाचित् आज भी मानव का नहीं हो पाया है। यह अत्यन्त

हर्ष की बात है कि वेद का प्राकट्य भारत में ही हुआ है, यह मात्र भारतीय ही नहीं कहते अपितु समस्त विश्व इस तथ्य को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर चुका है। अतः संस्कृत भारतीय एकता का सूत्र है इसमें लेशमात्र भी संदेह नही है।

संस्कृत में उदार भावना

संस्कृत भाषा उदार भावनाओ से ओत-प्रोत है। ऐसी अनेक सूक्तिया संस्कृत में उपलब्ध हैं जिससे विश्व एकता की बात प्रमाणित होती है। यथा–'वसुधैव-कुटुम्बकम्' या 'यत्र विश्व भवत्येकनीडम्'। संस्कृत भाषा में अनेक मंत्र व प्रार्थनाए ऐसी हैं जिसमें जीव मात्र के कल्याण की बात कही गई है यथा–सर्वेभवन्तु सुखिन', सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वेभद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःख भाग भवेत्''

इस मंत्र के द्वारा जीवमात्र के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि सभी सुखी हों, सभी रोगरहित अर्थात निरोगी हो, सभी अच्छा देखें अर्थात नजर भी सबकी ठीक हो यथा किसी को बुरे दिन देखने न पड़ें, किसी को भी दुःख का भाग न मिले अर्थात कोई भी दुःखी न हो।

भारतीय संस्कृति में अपने और पराए का भेद रखने वालों को अत्यन्त बलपूर्वक धिक्कारा गया है। यथा–

''अय निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम्,
उदारचरितानातु वसुधैव कुटुम्बकम्''

और यह समस्त उत्तम विचार मूल रूप से सस्कृत मे ही सुरक्षित है।

संस्कृत में विविध तथ्य

संस्कृत भाषा के साहित्य में अनेक तथ्य सन्निहित है। यथा–अध्यात्म, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान, चिकित्सा, वास्तु, ज्योतिष, पर्यावरण, इत्यादि। इन सब विषयो के होते हुए भी भारतीय मनीषियो ने अध्यात्म के आगे सबको गौण ही समझा जिसके कारण अध्यात्म से संबधित विचारों तथा ग्रन्थों की बहुलता देखी जाती है।

राजनीति के क्षेत्र में आचार्य चाणक्य को कौन नहीं जानता। इसी प्रकार ज्योतिष के क्षेत्र में भास्कराचार्य जैसे अग्रणी आचार्य सर्वमान्य है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री तथा सर्वप्रथम समाजशास्त्री के रूप में महाराज मनु विख्यात हैं। अर्थशास्त्रीय क्षेत्र मे कौटिल्य की प्रशंसा कौन नही करता है। चिकित्सा के क्षेत्र में धन्वन्तरी प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, शल्य-चिकित्सा के मर्मज्ञ चरक को आज सभी पढ़ने लगे है। साहित्य के क्षेत्र मे कालिदास, भवभूति, भास, श्रीहर्ष, बाणभट्ट इत्यादि की यशकीर्ति का आलोक अप्रतिम है।

इस तरह हम देखते है कि संस्कृत साहित्य में अपार ज्ञानराशि निहित है किन्तु आज इस ज्ञानराशि की ओर किसी का ध्यान उस तरह नही जा पा रहा है जिस तरह जाना चाहिए।

संस्कृत और संस्कृति

सस्कृत और सस्कृति का भारतीय परिप्रेक्ष्य मे अन्योन्याश्रित सबध है। किसी भी राष्ट्र के लिए अपनी संस्कृति अपनी भाषा का होना अनिवार्य है। इन दोनों के बिना कोई भी राष्ट्र विश्व के मानचित्र मे अपना स्थान नहीं बना सकता है। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति के माध्यम से ही होती है। भारतीय संस्कृति मुख्य रूप से संस्कृत भाषा में ही निहित है। आज भी कोई अवसर हो तो पंडित आते ही हैं तथा संस्कृत के मत्रों का उच्चारण होता ही है। मन्त्रोच्चारण के बिना वह कार्य पूरा ही नहीं हो सकता। भारतीय जनता की तो बात ही क्या अन्य देशों की जनता की भी भारतीय सस्कृति व भारतीय धर्म एवं परम्परा मे गहरी आस्था है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति में भारतीय आत्मा बसती है।

संस्कृत की वर्तमान स्थिति

आज सस्कृत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। यूं तो संस्कृत में स्कूली स्तर की शिक्षा से लेकर पी. एच. डी , डी. लिट. तक की डिग्रियां प्रदान की जाती है। किन्तु सरकारी उपेक्षा के कारण संस्कृत के विद्वानों को सामाजिक उपेक्षा भी सहन करनी पड रही है। लोग इसे मात्र कर्मकांड की भाषा समझ बैठे हैं। आज का समाज इसमें निहित

ज्ञानराशि से बिल्कुल भी परिचित नहीं है। इस भाषा को संप्रदाय विशेष की भाषा मानकर मृत-भाषा घोषित कर दिया गया है जो कि इस भाषा के प्रति तथा इस भाषा के विद्वानों के प्रति घोर अन्याय है।

संस्कृत आज छठी कक्षा से लेकर आठवी कक्षा तक अनिवार्य रूप से पढ़ाई जा रही है। यह 9वी से 12वीं स्तर तक ऐच्छिक है। यदि कोई विद्यार्थी विज्ञान लेकर पढ़ना चाहता है तो संस्कृत भी पढने की उसकी लाख इच्छा रहने के बावजूद उसे संस्कृत से हाथ धोना पड़ जाता है। सस्कृत के साथ तभी न्याय हो सकता है, जब आधुनिक विज्ञान के साथ सस्कृत पढ़ाई जाए। संस्कृत तो भौतिक विज्ञान का भी उद्गम स्रोत है। उसमें आधुनिक विज्ञान की चर्चा सूत्र रूप में विद्यमान है। वेद में विज्ञान संबंधी इतनी बातें हैं जिनको वस्तुत: एक वैज्ञानिक ही समझ सकता है। अत: संस्कृत के विद्यार्थियो को विज्ञान की शिक्षा दी जाए एव विज्ञान के विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा दी जाए तभी भारत विश्व में अपना सिर ऊंचा रख सकता है। जब तक संस्कृत को विज्ञान से जोडा नहीं जाएगा तब तक न भारतीय विज्ञान ही अपना कुछ कर सकता है न ही संस्कृत के साथ उचित न्याय हो सकता है। सस्कृत भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोष रहित तो है ही साथ-साथ विज्ञान के तथ्यो से भी भरपूर है। कुछ लोगों का विचार है कि 12वीं तक संस्कृत को अनिवार्य कर देना चाहिए। इसके आगे भी यदि विश्वविद्यालय के स्तर पर विज्ञान के साथ-साथ किसी छात्र की इच्छा संस्कृत पढने की हो तो उसको हतोत्साहित न कर उसका उत्साहवर्धन किया जाना चाहिए।

संस्कृत भाषा के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है-

- सस्कृतवाङ्मय मे उपलब्ध हितोपदेश, देशभक्ति, नैतिकता तथा चारित्रिक विकास से संबधित कथाओ आदि का सकलन किया जाए।
- आकाशवाणी व दूरदर्शन के माध्यम से सस्कृत नाटको, कहानियो व महत्त्वपूर्ण रचनाओं को रोचक रूप में प्रस्तुत किया जाए।
- संस्कृत के आदिग्रन्थों के अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाए।
- फिल्मों व धारावाहिकों के माध्यम से संस्कृत के उत्कृष्ट साहित्यों को जनमानस तक पहुचाया जाए।

महिला सामाख्या : महिला साक्षरता अभियान का एक सक्षम नवाचार

सीमा सिंह

समन्वयक, बी. एड. विभाग
केन्द्रीय तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

आज शिक्षा के क्षेत्र में देश के विभिन्न राज्यों में अनेक नवाचारपरक कार्यक्रम उत्साह के साथ चलाए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों में महिला सामाख्या का नाम अग्रगण्य है। यह महिला विकास के सभी संभावित पक्षों को समेकित रूप में लेकर आगे बढ़ती है। दूसरे शब्दों में यह कार्यक्रम केवल कार्यात्मक साक्षरता एवं गणना की क्षमता तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके माध्यम से नारी चेतना को सकारात्मक आयाम देकर नारी जीवन को गुणवत्ता संपन्न बनाने का एक सक्षम अभियान जारी है।

तृतीय विश्व के अधिकाश नवोदित राष्ट्रों में मानव वर्गों के विभिन्न समूहों मे विकास की गति और दिशा भिन्न-भिन्न रही है। भारत इस सामाजिक परिस्थिति से अलग नहीं रहा है। सांस्कृतिक एव दार्शनिक मान्यताओं में नारी को देवत्व के स्तर तक महिमामण्डित किया गया है, परन्तु व्यापक जनमानस में महिला को गृहिणी के रूप तक ही सीमित रखा गया है। इसके परिणामस्वरूप समाज में इस वर्ग विशेष को न्यूनतम अधिकार एव अपेक्षित सम्मान भी नहीं मिल पाया। परिणामत: नारी को शोषण का शिकार होना पड़ा और वह 'अबला' जैसे विशेषणों से सहानुभूति की पात्र बनी। सभ्य राष्ट्रो में जहां नारी समाज को समानता एवं स्वतत्रता का पूरा अवसर सुलभ हुआ है वहीं तृतीय विश्व में महिला को निर्बल वर्ग के अन्तर्गत श्रेणीबद्ध करके विकास के विकल्प-अभिकल्पो को प्रस्तावित किया गया है। पिछले दो दशकों मे स्वैच्छिक संगठनों की सक्रिय सहभागिता के परिणामस्वरूप नारी जागृति के कारण नारीशक्ति सगठित हुई एवं इस नारीशक्ति ने विकास के नीतिगत परिप्रेक्ष्यों को स्वयं परिभाषित किया है। इस क्रम में महिला सामाख्या एक सक्षम नवाचार प्रतीत होता है जिससे नारी विकास की सम्भावनाएं बलवती हुई है।

अब तक के नारी उत्थान के अधिकाश कार्यक्रम एकागी प्रतीत होते है। इनमें व्यक्ति के विकास के किसी एक पक्ष को विकास कार्यक्रम का प्रमुख अवयव माना गया है। इसलिए जो कुछ विकास हुआ वह असतुलित अथवा एकपक्षीय रहा है। महिला विकास के सभी सम्भावित पक्षों को समेकित रूप से परखने एवं तदनुरूप एक सर्वपक्षीय नवाचार/कार्यक्रम अभिकल्पित करने की पूर्ण सम्भावना महिला सामाख्या मे है। अक्टूबर, 1988 मे भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत शिक्षा प्रभाग द्वारा 22 पृष्ठीय एक दस्तावेज प्रकाशित हुआ जिसमें इस कार्यक्रम का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रस्तावित है। इसके प्रस्तावित प्रारूप के प्रावधानों की समीक्षा करने से पूर्व इसका सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

नीतिगत रूप से यह नवाचार नारी समता को केन्द्र मानकर निरूपित किया गया है। इस नवाचार की पृष्ठभूमि में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का चिन्तन एव उसका कार्यक्रम रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मे यह माना गया है कि महिलाओं में साक्षरता का स्तर न्यून होने का कारण उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां पिछड़ी हुई हैं, इसलिए महिलाओ की विशिष्ट आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु उनके साथ हो रहे भेदभाव

को दूर करते हुए उन्हे शैक्षिक विकास के समान अवसर प्रदान करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के भाग IV में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि महिलाओ के स्तर मे मौलिक परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। अतीत की संचयी विसंगतियों को निर्मूल करने तथा उनके पक्ष मे प्रासंगिक परिस्थितियों को सुनिश्चित करने में शिक्षा समर्थ एव सक्षम है। नारी को सबल बनाने मे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक सकारात्मक तथा हस्तक्षेपात्मक भूमिका का निर्वाह करेगी, यह नए मूल्यों का सृजन करेगी तथा निरक्षरता को दूर करने के साथ-साथ प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से वंचित रहने की परिस्थितियों को बदलने का प्रयास करेगी। यह नीति नर-नारी के बीच अविभेदक प्रवृत्ति को विकसित करेगी तथा किसी भी संकीर्ण मान्यता को दूर करने का हर सम्भव प्रयास करेगी। इस प्रकार महिला सामाख्या की मूल अवधारणा के माध्यम से स्त्रियों को सबल बनाने में उन्हें सामूहिक हस्तक्षेप एवं नीति निर्धारण के लिए तैयार करना होगा जिससे उनके अन्दर जागरूकता एवं प्रतिबद्धता का विकास हो सके। नारी सबलीकरण के प्रमुख घटक हैं :

- सकारात्मक स्वत्व (आत्मबिम्ब) एवं आत्मविश्वास का निर्माण।
- समालोचनात्मक चिन्तन की अभियोग्यता का विकास।
- समूह संगठन के निर्माण के द्वारा नीति-निर्धारण एवं कार्यक्रमो में हस्तक्षेप।
- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में समान सहभागिता।
- समूह प्रत्यक्ष क्रिया के प्रोत्साहन के माध्यम से समाज मे परिवर्तन सुनिश्चित करना तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में प्रावधानो एवं परिस्थितियो पर नियंत्रण करना।

उपरोक्त नीति परिप्रेक्ष्यों के प्रति अपवंचित महिला समूहों को जागरूक बनाना इस कार्यक्रम का ध्येय है। साथ ही कार्यात्मक प्रतिमानों को यथार्थ की जमीन से जोड़ना इस कार्यक्रम के सामर्थ्य को विश्वसनीय एव प्रासंगिक बनाता है। कार्यक्रम की कार्य शैली को आन्तरिक नियोजन एवं प्रबधन की प्रक्रिया द्वारा विकसित करने की चेष्टा की गई है जो इसकी सफलता को पूर्वानुमानित करती है। यह कार्यक्रम भुक्तभोगी महिलाओं एवं उनके अग्रणी अभिकर्त्रियो द्वारा ही संचालित होता है इसलिए इसमें औपचारिकता के तत्वो की यथासम्भव न्यूनता है जो उचित है। यह नवाचार अभी भी एक पूर्ण विकसित कार्यक्रम का स्वरूप नहीं ले पाया है, परन्तु नवाचार के रूप मे ही उत्तर प्रदेश के चार जनपदो मे प्रयोगस्वरूप चलाया जा रहा है जिसका परिणाम किसी भी अन्य पूर्ववर्ती कार्यक्रम से अधिक सफलता प्राप्त कर रहा है। यह उल्लेखनीय है कि यह कार्यक्रम केवल कार्यात्मक साक्षरता एवं गणना की क्षमता देने तक ही सीमित नहीं है। यह नारी चेतना को सकारात्मक आयाम देकर नारी जीवन को गुणवत्ता सम्पन्न अस्मिता के साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चेतना प्रदान करने वाला अभियान भी है। ❑❑

प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण : विकल्पों की खोज

हरचरणलाल शर्मा

रीडर
अनौपचारिक और वैकल्पिक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

शिक्षा मानव का मूलभूत अधिकार है। किसी भी राष्ट्र की संपन्नता एवं प्रगति उसकी प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता व प्रसार पर निर्भर करती है। आज बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण हमारे अथक प्रयासो के उपरान्त भी 'सबके लिए शिक्षा' का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु कुछ विकल्पों की बात की है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य है जनसामान्य का ध्यान इन विकल्पों की ओर आकृष्ट करना।

शिक्षा मानव का मूलभूत अधिकार है। किसी भी राष्ट्र की संपन्नता एवं प्रगति की बुनियाद उस राज्य में दी जाने वाली प्राथमिक शिक्षा पर निर्भर होती है। हमारे संविधान में भी 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का निदेशन है। यह लक्ष्य सन् 1950 मे तय किया गया और 1960 तक उसे प्राप्त करने का संकल्प किया। पर कारण चाहे आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक कोई भी रहा हो, इस लक्ष्य की प्राप्ति हो नही पाई। ज्ञातव्य है कि हमारे देश में पुरुषों की साक्षरता 63.68 और महिलाओं की साक्षरता 39.42 प्रतिशत है। भारत की कुल समेकित साक्षरता 52.11 है। ऐसा नहीं है कि हमने प्रयास नहीं किए। अकथनीय प्रयास किए हैं। नवम्बर 1995 के सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार देश मे प्राथमिक स्कूलो की संख्या 5,75,135 है जिसमें 5,11,849 स्कूल ग्रामीण क्षेत्र में हैं। कक्षा 1-5 तक बच्चो की संख्या 9,77,41,438 है जिसमें 7,34,35,416 बालक हैं। प्राथमिक स्कूलों मे अध्यापको की संख्या 16,60,942 है। स्कूलों की संख्या में भी वृद्धि हुई है, अध्यापको की संख्या मे भी वृद्धि हुई है। फिर भी लाखो बालक-बालिकाए प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन के लिए अपने प्रयासों एवं विदेशी सहायता से भी कार्यक्रम चलाए गए, पर जनसंख्या रूपी सुरक्षा के कारण हिसाब ज्यों का त्यों रहा है। शैक्षिक रूप से पिछड़े दस राज्यो तथा अन्य राज्यो के शैक्षिक रूप से पिछड़े इलाकों में अनौपचारिक शिक्षा की योजना को राज्य सरकारे चला रही हैं। लगभग 528 स्वैच्छिक संस्थाए भी अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र चला रही है। इतने पर भी सभी बालक-बालिकाओ को प्राथमिक स्तर की शिक्षा सुलभ कराने का लक्ष्य अभी पूरा नही हुआ है।

अब सन् 2000 तक 'सबके लिए शिक्षा' प्राप्त करने का हमारा संकल्प है। 'सम्पूर्ण साक्षरता मिशन' तथा जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम जैसे प्रयासो की सहायता से हम 2000 तक 'सबके लिए शिक्षा' का लक्ष्य ज़रूर प्राप्त कर लेगे, यह हमारा अटल विश्वास है।

'सबके लिए शिक्षा' के अन्तर्गत बच्चों से लेकर वृद्धों तक की शिक्षा संम्मिलित है। परन्तु यह लेख 14 वर्ष तक के बालक-बालिकाओ के लिए नि:शुल्क एव अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित है। औपचारिक विधा से वाछित फल मिला नहीं अत: उसके विकल्प पर यह चर्चा केन्द्रित है।

निःशुल्क शब्द अपने आप में स्वयं स्पष्ट है। अनिवार्य शब्द भी स्पष्ट है, पर कितनी प्राथमिक शिक्षा? कितने वर्ष की शिक्षा अनिवार्य हो? इसका उत्तर ही जटिल समस्या है। दार्शनिकों के अपने-अपने मत हैं और शिक्षाविदों के अपने। लेकिन मतों का क्रियान्वयन प्रशासनिक और वित्तीय प्रावधानों से नियत्रित होता है।

भारत अभी भी कृषि प्रधान देश है और आज की तिथि में तो कहा जा सकता है कि भारत गांवों में बसता है। यदि इसकी परम्परा की ओर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होता है कि हमारे यहां शिक्षा-कार्य की परम्परा की नींव 'गुरु-कुल' व आश्रम रहे हैं। गुरुकुल मे शिक्षार्थी रहते थे, वे गुरुकुल के आचरण से बहुत कुछ सीखते थे। उनके रहने, खाने की व्यवस्था गुरुकुल स्वयं करता था। शिक्षार्थी गुरुकुल के खर्च को जुटाने में सहायता करते थे। ऐसा नहीं कि यह परम्परा बड़े गुरुकुलों-आश्रमों तक ही सीमित थी, परम्परा का स्वरूप एक ग्राम में भी देखा जा सकता था। एक शिक्षक के घर गांव टोला अथवा मौहल्ले के बच्चे पढने जाते थे। बालक-बालिकाओं के माता-पिता शिक्षक की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। वह आदर का पात्र होता था। पर समय के बदलते, परिस्थितियों के बदलते, शिक्षा को राज्य-आश्रय मिलने तथा शिक्षा के "प्रोफेशनलाईजेशन" से आज स्थिति पूर्ण रूपेण बदल गई है। ध्यान देने योग्य बात है कि गुरुकुलों में श्रम की महत्ता थी। अमीर-गरीब के बीच अन्तर नहीं था। यह स्थिति अब लौट सकेगी, इसमें संदेह है। यह शब्दकोश में असंभव शब्द का अस्तित्व है तो अतीत की स्थिति असभव हैं। पर पुरानी परम्पराओं की किसी न किसी रूप में पुनरावृत्ति तो हो ही सकती है।

प्राथमिक स्तर की शिक्षा सभी को सुलभ कराने का भारतीय प्रयास तो सन् 1937 में भी शुरू किया गया था। श्रम को मर्यादित करते हुए महात्मा गाधी ने बुनियादी तालीम (बेसिक एजुकेशन) की परिकल्पना की। लगभग पच्चीस वर्ष तक भागीरथ प्रयास किए गए। दुर्भाग्य से बुनियादी शिक्षा अपने घोषित उद्देश्यों की प्राप्ति में असमर्थ रही। डा० जाकिर हुसैन के शब्दो मे, "बुनियादी तालीम की विचारधारा असफल नहीं हुई, हम असफल रहे।" अब फिर हम बेसिक एजुकेशन की अवधारणा पर कार्य कर रहे हैं पर नए रूप में। वस्तुतः तथ्य यह है कि ग्रामीण जगत में आज भी रोज़गार के अवसर कम हैं। ग्रामों की जीवनचर्या में सभी लोग घर के काम-काज मे लगे रहते हैं। बच्चो के शिक्षा से वचित होने के कारण कई हैं, पर मुख्य कारण है आर्थिक स्थितिया। इस कष्ट के कारण भी ज्यादातर बालक-बालिकाएं स्कूल की शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते। पहले तो वह स्कूल जाते नहीं और अगर स्कूल चले भी जाएं तो अपने परिवार के आर्थिक कारणों की वजह से उन्हे जल्दी स्कूल छोड़ना पड़ता है। एक कारण हमारी औपचारिक शिक्षा पद्धति भी है। हमारी आज की मुख्य शिक्षा पद्धति स्कूलों के माध्यम से शिक्षा देने की है तथा यही पद्धति शिक्षा की उपलब्धि के प्रमाणीकरण को भी निश्चित करती है।

सबको शिक्षा न मिल पाने पर औपचारिक शिक्षा विधा के विकल्प की खीज स्वाभाविक है। वास्तव में विकल्प की चर्चा हम तभी करते हैं जब किसी प्रणाली द्वारा हमारे वांछित कार्य और अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाती। औपचारिक शिक्षा विधा का सीधा-सादा विकल्प है अनौपचारिक शिक्षा विधा।

गत 20-25 वर्षों से अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम पर एक विकल्प के रूप में कार्य हुआ है। आज जब फिर विकल्प की बात कर रहे हैं तो स्पष्ट है, अनौपचारिक शिक्षा विधा से भी काम चला नहीं। लगता है इस विधा में भी कहीं न कही कोई कमी रही है। विचारणीय प्रश्न है कि यह कमी कहां रही है।

विकल्प की धारणा का सीधा संबंध उपलब्धता के स्तर से जुड़ा हुआ है। विकल्प में भी उपलब्धता का मापदण्ड औपचारिक प्राथमिक स्कूली शिक्षा के बराबर चाहना ही संभवतः इसकी असफलता का कारण रहा हो।

दर्शनात्मक निर्णय तो लिया जा सकता है पर निर्णय वही ठीक होता है जिसे व्यवहार में उतारा जा सके। समाज जिसे मान्यता दे दे। औपचारिक प्राथमिक स्कूली शिक्षा पद्धति के विकल्पों की समीक्षा करने पर पता चलता है कि इसके कई विकल्पों पर कार्य किया गया है। उदाहरण के लिए बुनियादी तालीम, अंशकालीन विद्यालय, पहर पाठशाला, रात्रि विद्यालय, अनग्रेडेड स्कूल, ओपन स्कूल, स्वैच्छिक विद्यालय, चलता-फिरता (मोबाइल) स्कूल,

कामकाजी बच्चों के लिए स्कूल, होम स्कूलिंग, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र, संस्कार केन्द्र, चरवाहा विद्यालय, सामुदायिक स्कूल, कमाओ और पढ़ो, ईचवन टीचवन, पाठशाला आदि।

आल्टरनेटिव स्कूलिंग अर्थात् विकल्प की एक विवेचना यह भी है कि औपचारिक प्राइमरी स्कूलों तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों से लाभान्वित नहीं हो सकने वाले बालक-बालिकाओं के लिए शुरू की गई कोई अन्य शिक्षा व्यवस्था 'आल्टरनेटिव स्कूलिग', कहलाती है। 'सबके लिए शिक्षा' के संदर्भ में कोई भी नवीन पद्धति जो 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य की प्राप्ति करा सके आल्टरनेटिव स्कूलिंग के क्षेत्र में आती है।

भारत की भांति इस क्षेत्र में अन्य देशों के भी अनुभव प्राप्त हैं। बगला देश में सचालित मेहर यूनीवर्सल प्राइमरी एजुकेशन प्रोजेक्ट, पीऊपिल्स प्राइमरी स्कूल, बंगलादेश रूरल एडवांसमेण्ट कमेटी द्वारा संचालित अनौपचारिक प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम तथा पाकिस्तान के मोस्क स्कूल्स, इन्नोवेटिव प्रोग्राम ऑफ बेसिक एजुकेशन, आइक्यू आर ए पाइलट प्रोजेक्ट तथा नई रोशनी स्कूल आदि सब अनुभवों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि वही औपचारिक प्राथमिक स्कूली शिक्षा का कोई सशक्त विकल्प नहीं निकल पाया है। लगता ऐसा है कि हम औपचारिक विद्यालयी शिक्षा में विकल्प तो चाहते है पर केवल विद्यालयी शिक्षा के अग प्रत्यंगो में परिवर्तन करके ही इसे वांछित विकल्प मान लेते हैं।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि निकट भविष्य मे शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भरोसेमन्द और प्रभावशाली विकल्प का अन्वेषण आवश्यक है जो न केवल अछूते वर्गो को शिक्षा प्रसार के दायरे में ला सके, अपितु गुणवत्ता की दृष्टि से भी अपने को उत्कृष्ट सिद्ध कर सके। ◻◻

संदर्भ

1. शर्मा, एच. एल., शुक्ला, नीरजा, सिंह, नगेन्द्रः (1993) **एक्सपेरीमेण्टल नोन फार्मल एजुकेशन सेन्टर्स ऑफ दि एन.सी.ई.आर.टी.** (1978-82), सर्वे रिपोर्ट, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली-16
2. दवे, पी.एन.: (1992) **आउट ऑफ स्कूल एजुकेशन इन साउथ एशिया . ए सिनारियो,** एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली-16
3. **डी पी.ई.पी.**, मध्य प्रदेश एप्रेजल मिशन की टैक्नीकल रिपोर्ट अप्रैल (1994)
4 राजीव गांधी प्राथमिक शिक्षा मिशन एन.सी.ई.आर.टी. (1994), **नेशनल वर्कशॉप ऑन आल्टरनेटिव स्कूलिंग (22-23 अगस्त, 1994) रिपोर्ट,** स्टेट कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग, मध्य प्रदेश, भोपाल।
5. एन.सी.ई आर टी. (1995) **सिक्सथ ऑल इण्डिया एजुकेशनल सर्वे प्रोविजनल स्टैटिस्टिक्स, एन.सी.ई.आर.टी.**, नई दिल्ली-16

शैक्षणिक मन:प्रकृति के मापन हेतु मापनी का निर्माण

श्रद्धा सिंह

शोध छात्रा
शिक्षा संकाय, बी.एच.यू.
वाराणसी

प्रस्तुत शोधपत्र में शैक्षणिक मन:प्रकृति को मापने के लिए एक मापनी के निर्माण की प्रक्रिया लिपिबद्ध की गई है। इस मापनी में पदों को सम्मिलित करते समय शैक्षणिक मन:प्रकृति से संबन्धित 26 आयामों पर विचार किया गया। इस अध्ययन के लिए न्यादर्श के रूप में 350 शिक्षकों का चयन किया गया जो शिक्षा के विभिन्न स्तरों से संबन्धित थे। शोधपत्र में मापनी की वैधता, विश्वसनीयता तथा उसके अंतिम स्वरूप को भी दर्शाया गया है।

शैक्षणिक मन:प्रकृति से सम्बन्धित विभिन्न साहित्यो के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय के मापन हेतु कोई उपकरण विकसित नहीं किया गया। इसीलिए शैक्षणिक मन:प्रकृति के मापन हेतु एक मापनी का निर्माण किया गया जो शैक्षिक शोध एवं मापन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता को पूरा करती है।

शैक्षणिक मन:प्रकृति किसी भी शिक्षित व्यक्ति की वह मन:स्थिति है जो अनवरत रूप से ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर एवं जिज्ञासु रहती है। सैद्धान्तिक रूप से इस पर बहुत कुछ उल्लिखित है परन्तु किसी भी स्तर पर इस चर के मापन हेतु कोई प्रश्नावली, सूचनावली अथवा मापनी विकसित नहीं की गई थी। अब जब शैक्षणिक सस्कृतिकरण के अभियान को त्वरित रूप दिया जा रहा है यह प्रासंगिक प्रतीत होता है कि नवीन वैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित मनोवैज्ञानिक परीक्षण अथवा उपकरण विकसित किए जाएं। शैक्षणिक मन:प्रकृति मापने हेतु मनोवैज्ञानिक उपकरण की नितान्त कमी को दूर करने के लिए प्रस्तुत उपकरण "शैक्षणिक मन:प्रकृति मापनी" का विकास किया गया है।

उपकरण के निर्माण की रूपरेखा

इस उपकरण को विकसित करने हेतु सर्वप्रथम शैक्षणिकत मन:प्रकृति के स्पष्ट सम्प्रत्यय को समझने का प्रयास किया गया तथा इससे सम्बन्धित पद समुच्चय सकलन से लेकर विश्वसनीयता एवं वैधता के निर्धारण तक सभी प्रक्रियाओं को प्रणालीबद्ध ढंग से पूर्वानुमानित एवं अभिकल्पित किया गया।

शैक्षणिक मन:प्रकृति से संबन्धित संप्रत्ययों के पदों का संकलन

"एकेडेमिक टेम्पर मेजरिंग स्केल" के विकास हेतु शैक्षणिक मन:प्रकृति से सम्बन्धित निम्नलिखित आयामों को सम्मिलित किया गया है:

1. तार्किकता
2. ज्ञान पिपासा
3 अध्ययन-अध्यापन में रुचि
4. नियमितता
5 अभिव्यक्ति
6. लेखन क्षमता
7. आत्म परीक्षण
8. जागरूकता
9. मानसिक ईमानदारी
10 सौम्यता
11. सादगी
12. शोध प्रवृत्ति

13. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
14 अनुशासन प्रियता
15 चरित्रवान
16 नेतृत्व क्षमता
17 नम्रता
18 चिन्तनशीलता
19 एकान्तप्रियता
20. विद्वानों के प्रति आदर
21. अच्छी स्मृति
22. सगोष्ठी आदि में सहभागिता
23 नए विचारों से प्रेम
24 लगनशीलता
25 पुस्तक सग्रह
26 सृजनात्मकता

उपरोक्त आयामों से सम्बन्धित 100 पदो का समुच्चय संग्रहित किया गया।

उपकरण का प्रथम आलेख

शैक्षणिक मन:प्रकृति के उपरोक्त वर्णित 26 आयामों से सम्बन्धित 100 पदो को इस उपकरण के प्रथम आलेख मे सम्मिलित किया गया। इस स्तर पर भाषा की स्पष्टता एवं उपयुक्तता का पूर्ण ध्यान रखा गया। पदो के सामने उत्तरदाता के उत्तर प्राप्त करने हेतु पांच विकल्प यथा–पूर्ण सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्ण असहमत रखे गए।

उपकरण के पदों का प्रथम संपादन

एकैडेमिक टेम्पर मेजरिंग स्केल के प्रथम आलेख मे जो 100 पद रखे गए उनकी भाषा की स्पष्टता एव उपयुक्तता की जाच एव परख हेतु 10 परीक्षण विशेषज्ञों की राय मागी गई। इसके साथ ही साथ 15 शिक्षको से पदों की भाषा, स्पष्टता एवं अर्थबोध के बारे में प्रतिक्रियाए आमंत्रित की गई। विशेषज्ञो की सलाह एवं उत्तरदाता शिक्षकों की प्रतिक्रियाओ के आधार पर पदों का प्रथम सपादन पूर्ण किया गया तथा इस स्तर पर ही 14 पदों को अनुपयुक्त पाया गया। इस प्रकार अगली प्रक्रिया हेतु 86 पद ही रखे गए।

उपकरण का प्रथम प्रशासन

इस मनोवैज्ञानिक उपकरण के पदो के प्रथम सम्पादन के बाद 25 शिक्षकों पर इसका प्रशासन किया गया, जिसके आधार पर प्रशासन अवधि, उत्तरो का स्वरूप आदि का एक बार फिर अनुमान लगाया गया। इस स्तर पर कुछ पदों पर उत्तरदाताओ के उत्तर एक ही ओर अधिक झुकते प्रतीत हुए जिसके आधार पर 20 पदों को इसी स्तर पर छांट दिया गया और इस प्रकार अगले प्रशासन के लिए उपकरण में अब 66 पद ही बचे रहे।

पदों का पुन: संपादन

उपरोक्त प्रथम प्रशासन के आधार पर एक बार पुन· पदों की भाषा एव वाक्य विन्यास मे वांछित परिवर्तन किया गया।

उपकरण का प्रशासन

इस अध्ययन में न्यादर्श में 350 विश्वविद्यालयी, महाविद्यालयी व विद्यालयी शिक्षकों का चयन किया गया था। इनकी सुविधाओ का ध्यान रखते हुए उनसे व्यक्तिगत रूप से ही मिलकर उपकरण का प्रशासन करना पड़ा। औसत रूप से 66 पदो वाले इस उपकरण के सभी पदो का उत्तर देने मे शिक्षको ने लगभग 25 मिनट का समय लिया। उत्तरदाताओ से एक ही बार में उत्तर प्राप्त करने में प्राय· उत्साह की कमी पाई गई परन्तु अध्येता द्वारा अध्ययन की उपयोगिता को स्पष्ट करने एवं गोपनीयता को बनाए रखने के आश्वासन के उपरान्त उन्होने थोडी-रुचि लेकर एक ही बार में उत्तर दिया। चूकि उत्तरदाता वयस्क एवं उच्च शिक्षा

प्राप्त थे अत: उन्हें निर्देशो को स्वत: समझने में कोई कठिनाई नही हुई।

पद विश्लेषण

350 उत्तरदाताओं के उत्तरो को पद विश्लेषण हेतु व्यवस्थित किया गया। पद विश्लेषण के प्रथम चरण में यह कसौटी तय की गई की प्रत्येक उत्तर विकल्प में कुछ न कुछ उत्तरदाताओ के उत्तर अवश्य मिले हों। इस कसौटी के आधार पर उपकरण के सभी 66 पद चयनित किए गए। पद विश्लेषण की दूसरी प्रक्रिया के निमित्त 350 प्रशासित उपकरणों को उच्चतम प्राप्तांक से निम्नतम प्राप्तांक की ओर क्रमवार व्यवस्थित किया गया तथा उच्चतम 27ब शैक्षणिक मन.प्रकृति को उच्चवर्ग तथा न्यूनतम शैक्षणिक मन:प्रकृति प्राप्त करने वाले 27ब उत्तरदाताओ का निम्नवर्ग बनाया गया। इस प्रकार 350 उत्तरदाताओं में से 27ब उच्च प्राप्ताक वाले उत्तरदाताओ की संख्या 95 तथा निम्न प्राप्ताक प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओ की संख्या 95 है। पद विश्लेषण हेतु उपरोक्त दोनो समूहो के उत्तरो के आधार पर प्रत्येक पद के लिए सकाय के ही कम्प्यूटर (एक्स टी) के द्वारा टी और सी आर. निकाला गया जिसे सारणी संख्या 1 (परिशिष्ट 2) में दिखाया गया है।*

इस सारणी के आधार पर पद संख्या 16 और 52 को अस्वीकार कर दिया गया। अन्तत: उपकरण में पद विश्लेषण के बाद कुल 63 पद ही चयनित किए गए।

वैधता

'एकेडेमिक टेम्पर मेजरिंग स्केल' की विषयवस्तुगत वैधता विशेषज्ञो की राय द्वारा स्थापित प्रतीत होती है, क्योंकि उस उपकरण का प्रत्येक पद स्पष्ट रूप से शैक्षणिक मन: प्रकृति के आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार के व्यवहारों से सम्बन्धित है।

विश्वसनीयता

इस उपकरण की विश्वसनीयता स्प्लिट हाफ एवं टेस्ट री टेस्ट दोनो ही विधियों से कम्प्यूटर द्वारा निकाली गई जो ऋण 0.88 तथा 0 89 पाई गई तथा उच्च स्वीकार्य स्तर की है।

उपकरण का अंतिम स्वरूप

पद विश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाओ के बाद 'एकेडेमिक टेम्पर मेजरिंग स्केल' में 63 पद ही सम्मिलित किए गए। इसमें पद संख्या 8, 9, 10, 11, 12, 16, 17, 49, 51 तथा 52 ऋणात्मक एव शेष सकारात्मक हैं। ऋणात्मक पदों का अंकन 0, 1, 2, 3 और 4 पूर्ण सहमत से पूर्ण असहमत की ओर तथा सकारात्मक पदो के लिए 4, 3, 2, 1 और 0 क्रम से होना है। उपकरण का अन्तिम स्वरूप परिशिष्ट 1 सदृश है।

परिशिष्ट 1

1. मैं किसी राजनेता के भाषण सुनने के बजाय पुस्तकालय मे पुस्तक पढ़ना पसन्द करूगा।
2. मेरे पास यदि पैसा हो तो अच्छा कपड़ा खरीदने के बजाय पुस्तक खरीदना पसन्द करता हूं।
3 मैं अपने पुत्र को व्यवसायी बनाने के बजाय प्रोफेसर बनाना पसन्द करूगा।
4. मैं खाने-पीने में मितव्ययता करके अखबार खरीदना पसन्द करूंगा।
5. क्रिकेट देखने के बजाय मै एकान्त मे बैठकर पुस्तक पढना पसन्द करूंगा।
6. मै साहित्यकार की राजनेता से ज्यादा इज्जत करता हूं।
7. नई प्रकाशित पुस्तक को पढ़ने के लिए नाशते के पैसे को सहर्ष खर्च कर सकता हू।

8 मै कक्षा मे पढने के बजाय क्रिकेट की कमेन्ट्री देखना ज्यादा पसन्द करता हू।

9. मुझे उन लोगों पर तरस आता है जो हमेशा किताबो के पीछे दीवाने रहते हैं।

10. मैं बच्चों की उच्च शिक्षा पर पैसा खर्च करने के बजाय उन्हे व्यापार मे लगाना पसन्द करूगा।

11 उच्च शिक्षा अच्छे जीवन के लिए आवश्यक नही है।

12 मैं विद्वान होने के बजाय धनी होना ज्यादा पसन्द करूंगा।

13 विद्वानो को सर्वत्र आदर मिलता है।

14. किसी देश को अच्छे कारखानों के बजाय अच्छे विश्वविद्यालयों की अधिक आवश्यकता होती है।

15. मैं सिनेमा देखने के बजाय लब्ध-प्रतिष्ठित कहानी पढना ज्यादा पसन्द करता हूं।

16 मेरी समझ से पुराने लेखको की पुस्तकें आज के समय में अनुपयोगी है।

17. अच्छे पुस्तकालय का नाम सुनते ही वहा जाने की मेरी दिली इच्छा होती है।

18 मुझे नई पुस्तकों के प्रकाशन की सूचना मिलते ही मैं पुस्तक भण्डारों पर पुस्तक देखने तुरन्त जाना चाहता हूं।

19. मै अपने कक्ष मे पुस्तको को बार-बार सुसज्जित करता हूं।

20 मैं प्राय: नई पुस्तको को पढ़ने के अलावा उनकी समीक्षा भी करता हूं।

21 मै पुस्तकों की समीक्षा को प्रकाशित कराने के लिए तत्पर रहता हू।

22 मै दूसरे के द्वारा की गई किसी भी पुस्तक की समीक्षा को बड़े सतर्कता से पढता हूं।

23. मैं कठिन शब्दों का अर्थ जानने के लिए विभिन्न शब्द कोशों का अध्ययन करता हूं।

24 मै विभिन्न पुस्तकालयों मे प्राप्त नवीनतम शब्द-ग्रन्थों का पूर्ण अध्ययन करना चाहता हू।

25. मै अपने विषय की अधिकांश शोध-पत्रिकाओ के नवीनतम अंकों का अध्ययन करता रहता हूं।

26 मै विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित अपनी रुचि के विषय से सम्बन्धित निबन्धो को सग्रहित करता हू।

27 मैं स्थानीय स्तर पर होने वाली विचार गोष्ठियों/कार्यगोष्ठियों/विचारशालाओ मे भाग लेने के लिए तत्पर रहता हूं।

28. मै अपने विषय के गम्भीर पक्षों पर ही लिखना पसन्द करता हूं।

29 मै अपने पसन्द के लेखों को विभिन्न प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओ से एकत्र करता हूं।

30. मैं अपने विषय से सम्बन्धित शैक्षिक सगठनो का सक्रिय सदस्य बनना चाहता हू।

31. मैं अपने विषय मे होने वाली शोधो को जानने का इच्छुक रहता हू।

32. मै जिन कार्यशालाओं मे नही पहुच पाता उनका सारांश पढने का प्रयत्न करता हू।

33 मैं अपने विषय में किए गए शोधो को जानने के लिए इच्छुक रहता हू।

34. मैं विभिन्न विषयो के राष्ट्रीय विद्वानों को सुनना मेरे लिए सर्वोच्च प्राथमिकता है।

35. मै विभिन्न विषयो के विशिष्ट शिक्षको की शिक्षण शैली को उनके निकट से देखना चाहता हू।

36. मै विद्वान व्यक्तियो की अध्ययन शैली को देखना चाहता हू।

37 मैं अपने ज्ञान की अपूर्णता को ठीक से समझ जाता हूं।

38 यदि मै प्रतिदिन कुछ न कुछ लिख न लू, मुझे ठीक नही लगता है।

39. मैं किसी अध्ययन सामग्री के सबसे मौलिक स्रोत को जानने के लिए तत्पर रहता हू।

40 मै अपने लेखों को अपने वरिष्ठ व्यक्तियो को आलोचनात्मक ढंग से मूल्याकन करने के लिए प्रस्तुत करता हू।

41 मुझे लगता है कि मेर लिए पढ़ना-लिखना भोजन से भी महत्त्वपूर्ण है।

42 जब कोई मेरे विचारो को उच्च स्तर पर बताता है तो मुझे और पढने की इच्छा होती है।
43 मैं अपने जीवन की सार्थकता को क्लिष्ट अध्ययन की उपलब्धियो मे देखता हू।
44. मै अपनी पसन्द के पुरस्कृत लेखों को पढ़ना चाहता हूं।
45. अपने विषय की पुरस्कृत पुस्तको का संकलन मै यथा शक्ति करना चाहता हू।
46. मै दूसरो की शैक्षणिक योग्यता की प्रशसा करने मे हिचकिचाता नहीं हू।
47 वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना शिक्षा का परम उद्देश्य है।
48 मैं कक्षा मे प्रश्न पूछना पसन्द करता हूं।
49. कक्षा मे पढाए गए पाठ पर मैं अपने सहपाठियों के साथ विचार-विमर्श करता हू।
50 कक्षा में प्रश्न पूछना समय बर्बाद करना है।
51 पाठ पढ़ने के बाद मै आत्मदर्शन करना पसन्द करता हूं।
52. मै कठिन परिस्थितियों मे भी अपने आपको सतुलित रखता हू।
53. किसी देश का गौरव वहा के विद्वानो से आका जाता है।
54. नवीन विचारो की तरफ मै तुरन्त आकर्षित हो जाता हू।
55. मैं किसी को अपनी बात समझाने के लिये तर्क का प्रयोग करता हू।
56. दूसरे के विचारों को मैं सदा आदर की दृष्टि से देखता हू।
57 मैं नए विचारो का समर्थन कठिन परिस्थितियों में भी करता हूं।
58 मै स्वय लिखित विषयवस्तु के प्रकाशित होने पर सर्वाधिक आनन्द का अनुभव करता हूं।
59 मै अपनी सम्पूर्ण क्षमता से अपने विषय में ख्याति प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहता हू।
60 मुझे अपने विषय के किसी भी ख्याति प्राप्त व्यक्ति से मिलने मे प्रसन्नता मिलती है।
61 मै अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषय की प्रकाशित सामग्री का रुचि के साथ अध्ययन करना चाहता हूं।
62. मै अपने मस्तिष्क मे सोचे हुए ज्ञान को विभिन्न उपायो से सत्यापित करने को तत्पर रहता हू।
63. मुझे कोलाहल से अधिक शान्तिप्रिय जीवन पसन्द है।

परिशिष्ट 2

सारणी संख्या-1

प्रत्येक पद हेतु टी और सी.आर. मूल्य (पद विश्लेषण)

पद स	सख्या	माध्य	प्रा वि.	सख्या	माध्य	प्रा.वि.	टी	सी आर	सार्थकता
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1	95	3 47	0 83	95	2 63	1 16	5 71	5 71	है
2.	95	3 24	0.81	95	2.51	0.92	5.69	5.72	है
3	95	3 46	0.86	95	2 45	1 01	7.34	7.38	है
4	95	3.04	1.13	95	2 33	1.13	4 25	4.28	है
5	95	3.41	0.97	95	2.45	1 07	6.39	6.42	है
6.	95	0 66	0 74	95	2.54	1.07	8.26	8 30	है

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
7	95	2 77	1 12	95	2 16	1 12	3 72	3 74	है
8	95	2 92	1 35	95	2 18	1 18	3 97	3 99	है
9	95	2 6	1 37	95	2.07	1.21	2 77	2 78	है
10	95	3 07	1.30	95	2 29	1 29	4.10	4.12	है
11.	95	2.90	1.36	95	1 83	1 23	5.65	5 68	है
12.	95	2.97	1 33	95	2 10	1 16	4 77	4 80	है
13.	95	3 24	1 18	95	2 24	1.12	5.94	5.97	है
14.	95	3 16	1 14	95	2.05	1 22	6.44	6 47	है
15.	95	3 02	1 00	95	2.06	1 13	6 13	6.16	है
16.	95	1 77	1 25	95	2.03	1.10	1.46	1 96	नही
17.	95	2 43	1 35	95	1 90	0.94	3 08	3 10	है
18	95	3.33	0.87	95	2 4	0 97	6 91	6.94	है
19	95	3 13	0 77	95	2 23	1.05	6 71	6.75	है
20	95	3.4	0 8	95	2.22	0.99	8 94	8 99	है
21	95	3 28	0 77	95	2 01	0 94	10 08	10.14	है
22.	95	2 95	0.89	95	2 10	0.92	6.43	6 46	है
23.	95	3.23	0.80	95	2 47	0 89	6 12	6 16	है
24.	95	3 63	0 58	95	2 4	0.99	10 33	10 38	है
25	95	3.22	0 83	95	2 22	1.00	7.40	7 44	है
26	95	3 49	0 69	95	2.29	1 04	9 27	9 32	है
27.	95	3.46	0 70	95	2 23	1.03	8.81	8 86	है
28.	95	3 38	0 79	95	2 02	1.04	10.08	10 13	है
29.	95	3 47	0 76	95	2 24	1.12	8.79	8 84	है
30	95	3.13	1 00	95	2.14	1 08	6.49	6 53	है
31	95	3.47	0.75	95	2.24	1 04	9 28	9 33	है
32	95	3.90	0 76	95	2 25	1 03	9 42	9.47	है
33.	95	3 54	0 62	95	2 25	1 01	11 51	10 06	है
34.	95	3 18	0.88	95	1.96	1 11	8 29	8 33	है
35.	95	3 70	0.54	95	2.26	0 99	12 57	12 64	है
36.	95	3 53	0.22	95	2.30	1.07	9 20	9 25	है
37.	95	3 03	0.98	95	2 05	1 07	6 48	6 51	है
38.	95	3.53	0.57	95	2.30	1 04	9 98	10 04	है
39	95	3 35	0.83	95	2.01	1 10	9 41	9.46	है
40.	95	3 09	1.17	95	2 07	1 14	6 02	6 05	है

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
41	95	3 54	0.89	95	2.14	1 06	9.76	9.71	है
42.	95	3 35	0.75	95	2.31	1 02	7 92	7 96	है
43	95	3.45	0 72	95	2.24	1 03	9.31	9.35	है
44	95	3 48	0.73	95	2.30	1.06	8.81	8 85	है
45	95	3.69	0 58	95	2.41	1.08	10.14	10 19	है
46.	95	3.57	0 67	95	2 32	1.05	9.72	9.78	है
47.	95	3.70	0 54	95	2.23	1.20	6.98	7.02	है
48.	95	3 38	1.06	95	2.23	1 20	6.98	7.02	है
49.	95	3 13	1 28	95	2.24	1.13	5 04	5.07	है
50	95	3.10	1.25	95	2.26	1 07	4 93	4.96	है
51	95	3.39	1 07	95	2 34	1 14	6.43	6 47	है
52.	95	2.61	1.50	95	2.26	1.11	1.79	1.80	नहीं
53.	95	3.57	0 81	95	2 45	1.01	8.39	8 44	है
54.	95	3.45	0 77	95	2.22	0 97	9.56	9.62	है
55.	95	3.49	0.70	95	2.21	1.05	9.79	9.84	है
56	95	3.68	0.62	95	2.31	0.95	11.65	11 71	है
57.	95	3.26	0.94	95	2.16	0.92	8.03	8.07	है
58	95	3.61	0 56	95	2.12	0.98	12.74	12 81	है
59.	95	3.43	0.60	95	1 90	0 95	13.08	13 15	है
60	95	3.16	0 91	95	1.93	0 99	8 85	8.89	है
61	95	. 3 6	0 56	95	2.30	1.13	9.82	9 88	है
62	95	3.65	0 66	95	2.25	1.15	10.22	10.27	है
63.	95	3.54	0 80	95	2 53	1 00	7.61	7.61	है
64.	95	3 04	1 03	95	2.21	1.15	5.20	5 23	है
65.	95	3.74	0 66	95	2 61	1 13	8.37	8.41	है

सामाजिक अध्ययन विषयों के माध्यम से नैतिक मूल्यों का विकास

राजेन्द्र कुमार शर्मा

प्रवक्ता
पारीक टी.टी. कालेज
जयपुर, राजस्थान

वर्तमान समय में जब समाज व देश में भ्रष्टाचार, हिंसा, शोषण, असुरक्षा, असंतोष जैसी बुराइयों का बोलबाला हैं, ऐसे में नैतिकता पर बल देना आवश्यक हो जाता है। नैतिकता मानव जीवन का एक अभिन्न अंग भी है। नैतिकता से परिपूर्ण व्यक्ति ही समाज व देश के सामने एक उत्तम तथा आदर्श चरित्र स्थापित कर सकता है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने बालकों के उज्ज्वल भविष्य के लिए नैतिक शिक्षा की महत्ता पर बल देते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र जैसे विषयों के माध्यम से हम बालकों में नैतिक मूल्य विकसित कर सकते हैं।

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, असन्तोष और असुरक्षा आदि का दुष्प्रभाव हमारे बालको पर भी पड़ रहा है, जिसके कारण आज हमारे देश एव समाज के सामने अनेक समस्याएं उपस्थित हो गई हैं। इन सबके मूल मे व्याप्त एक मात्र कारण, जो गहन सोच और चिन्ता के बाद उभर कर सामने आता है, वह है नागरिको में नैतिकता अर्थात् नैतिक मूल्यो का अभाव।

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्यो की अत्यन्त आवश्यकता है और इसे पूरा करना शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी है। आज यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण है कि जिस युवा वर्ग के कन्धों पर देश का भविष्य टिका हुआ है उसके जीवन आदर्श बदल रहे है। नई पीढी के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण नैतिक मूल्यो की शिक्षा द्वारा किया जा सकता है। नैतिक मूल्यो के विकास के लिए शैक्षिक पाठयक्रम में नैतिक शिक्षा का समावेश अत्यन्त उपयोगी होगा।

नैतिक मूल्यों का अर्थ

नैतिक मूल्यो मे हम सत्य, त्याग, आदर, परोपकार, अहिसा, कर्त्तव्य आदि गुणो को ले सकते हैं। जिस व्यक्ति का नैतिक चरित्र सबल नहीं होता वह समाज के लिए हानिकारक होता है। नैतिकता वस्तुत: एक आचारसंहिता है। उसी के ज्ञान से मनुष्य कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय करके धर्म के प्रति आकृष्ट एवं अधर्म से विरत होता है।

डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि ''नैतिकता सद्गुणों का समन्वय मात्र ही नहीं बल्कि यह एक व्यापक गुण है तथा इसका प्रभाव मनुष्य के समस्त क्रियाकलापो पर होता है और संपूर्ण व्यक्तित्व इससे प्रभावित होता है।''

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के अनुसार, ''नैतिकता मनुष्य की उन्नति का आधार है। नैतिकता से रहित व्यक्ति पशुओं से भी निकृष्ट है। नैतिकता के अभाव मे कोई भी व्यक्ति, समाज या देश अवश्य ही पतनोन्मुख हो जाएगा। इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि नैतिकता हमारा व्यापक गुण है और किसी भी कीमत पर इसे नहीं छोडा जाना चाहिए।''

नैतिक मूल्यों का विकास शिक्षा के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। शिक्षा का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। यह भी एक विचारणीय तथ्य है कि सामाजिक अध्ययन विषयो के माध्यम से किस प्रकार छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

सामाजिक अध्ययन विषयों में हम दो विषय ले सकते है–इतिहास एवं नागरिक शास्त्र।

शिक्षक कक्षा में इतिहास एव नागरिक शास्त्र पढ़ाते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखे कि छात्रों को इन विषयो के माध्यम से अधिक नैतिक मूल्य प्रदान किए जा सकें। महाराणा प्रताप, गुरू गोविन्द सिंह, महावीर स्वामी एवं भगवान बुद्ध सरीखे अनेक महापुरुषों की जीवनियों, जीवन-वृत्तान्तों द्वारा नैतिक मूल्य विकसित कर सकते हैं। यदि हम कक्षा में महाराणा प्रताप का पाठ पढ़ा रहे हैं तो हम बच्चो को बता सकते हैं कि राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए उन्होंने पराधीनता के सुखो का त्याग कर किस प्रकार घास की रोटियां खाईं। किस तरह से राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए अपना राजसुख तक त्याग दिया। इसी तरह महावीर स्वामी ने सांसारिक सुखो का त्याग कर अहिसा का सदेश दिया और अहिंसा के मूल्य को विश्वव्यापी बना दिया। इसी प्रकार गौतम बुद्ध का दया और परोपकार संदेश विश्व में फैला। उपरोक्त महापुरूषों के जीवन से सम्बन्धित घटनाएं सर्वविदित हैं। इन महापुरुषों की जीवनियों, उनकी शिक्षाओं का परिचय देकर इतिहास का विषय के माध्यम से बालकों में नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

दूसरा विषय है नागरिक शास्त्र। इस विषय के द्वारा भी हम बालकों मे नैतिक मूल्यों का विकास कर सकते है। व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य मे 'नैतिकता' नैतिक मूल्य हो जाती है और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में केवल मूल्य ही कहलाती है। मूल्य अपने आप में व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत सामाजिक मूल्य भी आते हैं और नैतिक मूल्य भी। उदाहरणस्वरूप हम मूल अधिकारो का पाठ पढ़ाते समय बता सकते हैं कि देश के सभी नागरिक समान है और उनमे किसी भी तरह का भेदभाव नहीं है। उन्हें मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत सभी प्रकार की स्वतंत्रता दी गई है परन्तु अधिकारों के साथ-साथ व्यक्ति के कुछ कर्त्तव्य भी बन जाते है। व्यक्ति को व्यक्ति के प्रति, व्यक्ति का परिवार के प्रति, व्यक्ति का समाज के प्रति, व्यक्ति का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य ही नैतिकता का ज्ञान कराती हैं। वर्तमान संदर्भ में नैतिक मूल्यो के विकास में कर्त्तव्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह सही ढंग से करें तो समस्याए इतनी विकट नहीं होंगी जितनी की आज हैं। व्यक्ति को स्वतंत्रता का अधिकार है लेकिन साथ ही उसका कर्तव्य भी है कि यह देखें कि कहीं दूसरों को इसमें परेशानी तो नहीं हो रही है, दूसरो की स्वतंत्रता का मार्ग तो अवरुद्ध नहीं हो रहा।

अत में यह कहा जा सकता है कि बालकों में सामाजिक अध्ययन विषयों के माध्यम से भी नैतिक मूल्य विकसित किए जा सकते हैं। ☐☐

भाषा शिक्षण एवं सृजनात्मकता

अनुराधा जोशी

वरिष्ठ व्याख्याता
शिक्षा संस्थान
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

लेखन व भाषण में सृजनात्मकता का विकास भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपने विचारों को नवीन आयाम दे सकें तथा अपनी मौलिक सोच को सहज अभिव्यक्ति प्रदान कर सकें। सृजनात्मकता के विकास में विद्यालय के वातावरण, विद्यालय में उपलब्ध अवसर और शिक्षक के व्यवहार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने सृजनात्मकता की अवधारणा से संबन्धित तथ्यों को प्रस्तुत कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार भाषा-शिक्षण में नवीनता लाकर विद्यार्थियों में सृजनात्मकता को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना। भाषा मानव मुखोच्चारित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके सहारे विचार-विनिमय किया जाता है। भाषा द्वारा मनुष्य अपने चिन्तन को नियंत्रित कर उसे किसी विशिष्ट दिशा मे निर्दिष्ट करता है। भाषा में सृजनात्मकता होती है अर्थात् भाषा की व्यवस्था के आधार पर वक्ता या लेखक विचारो को आवश्यकतानुरूप नित्य नए आयाम प्रदान करते हैं। इस प्रकार रचनात्मकता विकास की आत्मा है तथा भाषा उसकी काया। इसीलिए भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य है-विद्यार्थियों में अभिव्यक्ति का विकास करना व विचारो मे मौलिकता उत्पन्न करना। परन्तु वर्तमान समय मे भाषा में रचनात्मकता का ह्रास हो रहा है व भाषा पाठ्यक्रम का एक विषय मात्र बनकर रह गई है।

सृजनात्मकता की परिभाषा

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। टॉरेन्स का मत है कि "सृजनात्मक चिन्तन रिक्तताओ, त्रुटियो, अप्राप्त एवं अलभ्य तत्वों को समझने, उसके विषय में धारणाएं तथा अनुमान लगाने, परीक्षण करने तथा परिणामों को दूसरे तक पहुचाने तथा धारणाओ का पुनः परीक्षण करके उसमें सुधार करने की प्रक्रिया है।"

इसी प्रकार ड्रेव्हल का कथन है, "सृजनात्मकता मानव की वह योग्यता है, जिसके द्वारा वह कोई नवीन रचना करता है।" भाषा के सन्दर्भ में मैडनिक की परिभाषा अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। मैडनिक के अनुसार, "सृजनात्मक चिन्तन साहचर्य के तत्वों के बीच नए संयोजन निर्मित करता है। ऐसे संयोजन जो किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति करते हैं या किसी प्रकार से उपयोगी हो। नए सयोजन के तत्वो के बीच जितनी दूरी होगी प्रक्रिया या समाधान उतना ही सृजनात्मक होगा।"

भाषा व सृजनात्मकता में संबंध

इन परिभाषाओं के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि सृजनात्मकता में चिन्तन आवश्यक है और चिन्तन का आधार भाषा है। भाषा भावों की अनुगामिनी है तथा सृजनात्मकता उसमें परिपक्वता लाती है। सृजनात्मकता द्वारा भाषा की त्रुटियों को दूर करके उसमे नवीन तत्वों का

समावेश किया जा सकता है। सृजनात्मकता का सम्बन्ध भाषा व भावों से है जिसका संगम कवियों की कल्पना में व रचनाओं मे देखने को मिलता है। अत: यह स्पष्ट है कि भाषा व सृजनात्मकता में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सृजनात्मकता के विभिन्न आयाम

सृजनात्मकता का शिक्षण देने वाले किसी भी शिक्षक के लिए सृजनात्मकता के विभिन्न घटको का ज्ञान आवश्यक है। गिलफोर्ड के अनुसार सृजनात्मकता के चार आयाम हैं :

- **मौलिकता** : मौलिकता से तात्पर्य है व्यक्ति द्वारा दी गई असामान्य अनुक्रियाएं।
- **धाराप्रवाहिता** : जिसका सम्बन्ध विचारों की उत्पत्ति की दर से है।
- **लचीलापन** : विचारों की दिशा परिवर्तन व अलग-अलग दिशाओं में चिन्तन।
- **विस्तार** · किसी एक दिशा में बहुत गहराई तक पहुचना विस्तार कहलाता है।

असुबेल (1903) के अनुसार सृजनात्मकता में निम्न पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करना है :

- किसी क्षेत्र में दुर्लभ व अतिविशिष्ट प्रतिमा।
- अन्तर्दृष्टि विकसित करने की अगाध शक्ति।
- कलात्मक क्रियाएं।

उक्त सभी घटक शाब्दिक व अशाब्दिक हो सकते हैं।

सृजनात्मकता के लिए शिक्षण

ओस बोर्न (1960) के अनुसार शिक्षण मौलिकता को विकसित कर सकता है अर्थात् शिक्षण द्वारा सृजनात्मकता को विकसित करना संभव है।

ओसबोर्न ने चार नियम प्रतिपादित किए :

- त्वरित निर्णय का बहिष्कार।
- अभिव्यक्ति में स्वतत्रता का स्वागत।
- अधिकाधिक विचारो का संग्रह।
- नवीन विचारो मे संयोजन पर बल।

टारेन्स (1965) के अनुसार सृजनात्मकता के लिए शिक्षण में निम्न बिन्दुओ का समावेश आवश्यक है :

- छात्रो के प्रश्नो के प्रति आदर व्यक्त करना।
- कल्पना आधारित विचारो को प्रोत्साहन देना।
- छात्रो को यह बताना कि उनके विचार अमूल्य है।
- विचारों के मूल्याकन हेतु अवसर प्रदान करना।
- मूल्याकन मे कारणो व परिणाम के बीच संयोजन स्थापित करने को प्रोत्साहन देना।

शिक्षक की भूमिका

शिक्षक को अपने शिक्षण मे ऐसे अवसर उत्पन्न करने चाहिए जहा छात्र स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त कर सके। इसके अतिरिक्त निम्न गतिविधियों को भी स्थान देना चाहिए जैसे-विषय सम्बन्धी अन्वेषक खेल, नवीन पुस्तको का पठन, सृजनात्मक लेखन, पठन, क्रासवर्ड पज़ल, कम्प्यूटर ग्राफिक्स ब्रेन स्ट्रामिंग, समस्यात्मक प्रश्नों का हल, हल को सुलझाने के पश्चात् पुन: विचार व हल में नवीनता लाने के प्रयास, किसी विशिष्ट बिन्दु पर स्वतत्रतापूर्वक चर्चा इत्यादि। तात्पर्य यह है कि कक्षा अनुदेशन की परम्परागत विधि के साथ-साथ शिक्षण में कुछ नवीनता लानी होगी, तभी सृजनात्मकता के लिए पोषक वातावरण स्थापित हो सकेगा।

कुछ शोध निष्कर्ष

शोध कार्यों का अध्ययन करने पर कुछ पक्ष उजागर होते हैं जो इस प्रकार हैं :

- वाइनर (1956) कक्षा के मुक्त वातावरण में सृजनात्मक क्रियाए परम्परागत कक्षा की अपेक्षा अधिक मात्रा मे होती है।

उपरोक्त शोध निष्कर्ष भी इस ओर इंगित करते है कि जहा एक ओर सृजनात्मकता का विकास अध्यापक के व्यक्तित्व, शिक्षण विधियों और कक्षा के वातावरण पर निर्भर

करता है वहीं दूसरी ओर छात्रों मे सृजनात्मकता को विकसित करने में भाषा शिक्षण एक सशक्त माध्यम प्रस्तुत करता है। विचारों की अभिव्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान कर, भाषा सम्प्रेषण मे विविध विधाओ का उपयोग कर तथा लेखन, पठन व भाषण में नवीनता का समावेश कर कक्षा के भीतर और बाहर छात्रों को ऐसे अनेक अवसर प्रदान किए जा सकते हैं जहां वे अपनी रचनात्मक प्रतिभाओ को उजागर कर सकें।

- एस्पाल्डिंग (1963) के अनुसार अध्यापक का व्यक्तित्व, व्यवहार एव शिक्षण विधियां सृजनात्मक शक्ति के विकास में सहायक होती हैं।
- मेनन (1980) का कहना है कि भाषा का सृजनात्मकता से सहसम्बन्ध है।
- अग्रवाल (1981) के मतानुसार सृजनात्मकता का पठन-योग्यता से सीधा सम्बन्ध है।
- अमीन (1988) के अनुसार सामूहिकवार्ता का सृजनात्मकता, विचारों में धारा-प्रवाहित और सोचने की क्षमता से सहसम्बन्ध है।
- अनवर (1989) ने पाया कि सामान्य सृजनशीलता और बुद्धि के बीच धनात्मक किन्तु अल्प सह सम्बन्ध है परन्तु यह सम्बन्ध साख्यिकीय आधार पर सार्थक नहीं है।
- जवादेचेतना (1989) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के सामान्य वर्ग के बालकों की सृजनात्मकता पर माता-पिता के व्यवहार का कोई प्रभाव नहीं पडता। ❑❑

संदर्भ

1. गोवाहन, जे०एस० (1967) **क्रीएटिविटी : इसकी शैक्षिक उपयोगिता**, वाइले इस्टर्न पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. देशमुख, एम०एन० (1984) **क्रीएटिविटी इन क्लासरूम**, एस चाद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, राम नगर, नई दिल्ली।
3. बुच, एम०बी० (1991) **एज्यूकेशनल सर्वे–4**, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
4. लाल, गुरूबक्ष (1981) **सृजनात्मक शिक्षा तथा शिक्षा में गुणात्मक सुधार**, इण्डियन बुक एजेन्सी, अम्बाला।
5. शर्मा, आर०ए० (1995) **फण्डामेंटल्स आफ एज्यूकेशनल सायकोलाजी**, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
6. त्रिपाठी, एस० (1974) **प्रतिभा और सृजनात्मकता**, मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, दिल्ली।

हमारी शिक्षा का स्वरूप

सत्यनारायण पंवार

भूतपूर्व शिक्षा अधिकारी
केन्द्रीय विद्यालय संगठन
68, गोल्फ कोर्स स्कीम, एयरफोर्स एरिया
जोधपुर–342001

शिक्षा के स्वरूप पर चर्चा एक सतत प्रक्रिया है। समय के साथ-साथ प्रत्येक प्रणाली में किसी न किसी प्रकार के दोषों का समावेश हो जाता है। शिक्षा प्रणाली में उत्पन्न ऐसी ही कुछ प्रमुख विकृतियों की ओर इंगित करते हुए प्रस्तुत लेख में अनुभवी लेखक ने शिक्षा के एक नवीन स्वरूप का चित्रण किया है जिसका अनुसरण कर विद्यालय बहुमुखी प्रतिभा वाले छात्रों का निर्माण कर सकते हैं। हालांकि ये सुझाव नितान्त नए नहीं हैं तथापि समय-समय पर इनका स्मरण कदाचित आवश्यक हो जाता है।

संसार में प्रत्येक वस्तु में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। परिवर्तन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। इस क्रिया मे कुछ 'पुरानी छोड़ना' और 'नई जोड़ना' है। शिक्षा जगत भी इस क्रिया से अछूता नहीं है। आज हम जिस मंजिल तक पहुचे हैं, उसमें कितने ही आयोगो के सुझावों का समावेश है। सरकार द्वारा गठित डा० राधाकृष्णन आयोग, डा० कोठारी आयोग और नई शिक्षा नीति के प्रस्तावों ने शिक्षा को नया स्वरूप देने की कोशिश की है। इन प्रयासों के बावजूद हम लोग आज भी आधुनिक शिक्षा पद्धति से सन्तुष्ट नही है, यह भी सही है कि विभिन्न कारणो से इन आयोगों के सुझाव सम्पूर्ण रूप से क्रियान्वित नहीं हो पाए है। अगर इन आयोगों के सुझावों को क्रियान्वित करने के लिए विशेष प्रशासनिक, शैक्षिक एवं वित्तीय सहयोग प्रदान किए जाएं तो शिक्षा का स्वरूप अवश्य ही सुधरेगा। हमारे देश के लोगो की इच्छाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के नवीन स्वरूप का एक प्रस्ताव यह भी हो सकता है :

समान शैक्षणिक संस्थाएं

आयोगों के सुझावो के बावजूद कुछ स्वार्थी लोगों ने शिक्षा को व्यापार बना लिया है। अग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलों में अमीर लोगो के बच्चो को पढ़ाकर भारी रकम वसूल की जा रही है। स्कूलों ने दुकानों का रूप धारण कर लिया है। शहर मे हर गली के मोड़ पर अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल नज़र आते हैं। साधारण लोगों के बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। ऐसा लगता है कि समाज के बच्चे दो भागों मे बंट गए हैं। एक अमीर और दूसरे साधारण। हमारी सरकार को चाहिए कि हमारे देश में एक ही प्रकार के स्कूल हों जहां अमीरों और गरीबों के बच्चे एक ही छत के नीचे बैठकर समान शिक्षा ग्रहण कर सकें। देश के सभी छात्रो को समान शिक्षा की सुविधाएं दी जाएं। ऐसी परिस्थिति मे सरकार को चाहिए कि शिक्षा के नाम पर व्यापार को बन्द करे और देश में शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व अपने हाथ मे ले। केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण देश के कोने-कोने में 750 केन्द्रीय विद्यालय खोले हैं, जिनमें एक ही प्रकार की वर्दी, समान पाठ्यक्रम और सभी समान सुविधाएं हैं। इन स्कूलों में गरीबी, अमीरी और जाति-पाति का कोई भेद-भाव नहीं है। प्रत्येक स्कूल एक छोटा भारत है जो भावनात्मक एकता का प्रतीक है। क्या केन्द्रीय सरकार सम्पूर्ण देश में केन्द्रीय विद्यालय जैसे स्कूल खोलकर सभी छात्रों को उच्च कोटि की शिक्षा नहीं दे सकती? स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा की जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी गई, जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं। प्रत्येक राज्य अपनी अलग शिक्षा प्रणाली चला रहा है और शिक्षा का स्तर गिरता

जा रहा है। देश के सभी स्कूलों मे एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम और समान सुविधाएं उपलब्ध करानी होंगी, जिससे अच्छी शिक्षा कुछ लोगो के लिए न होकर सभी लोगों तक पहुचे। इतना ही नहीं विश्वविद्यालयों और अन्य तकनीकी शिक्षा सस्थाओं में भी समान शिक्षा व्यवस्था हो, जिससे समानता को बढ़ावा मिले।

निःशुल्क शिक्षा

हमारे देश में अधिकतर लोग गरीब हैं। इनमे से कुछ लोग तो दो वक्त का भोजन कमाने में भी असमर्थ हैं। ऐसे लोग अपने बच्चो को स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के लिए नहीं भेज पाते क्योंकि उन्हें जीविका कमाने के लिए अधिक हाथ चाहिए। कुछ गरीब लोग अपने बच्चों की शिक्षा के खर्चे का बोझ उठा नहीं सकते और कुछ लोग अपने बच्चो को शिक्षा देना नहीं चाहते, क्योंकि वे लोग इसे आवश्यक नहीं समझते। ऐसी परिस्थिति में सरकार को शिक्षा के सभी स्तरों पर निःशुल्क शिक्षा देनी चाहिए। निःशुल्क शिक्षा के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को शिक्षा क्षेत्र पर ज्यादा खर्च करना होगा। हाल ही में प्रधानमंत्री ने खेद प्रकट किया कि सकल राष्ट्रीय उत्पादन का छः प्रतिशत अंश शिक्षा पर खर्च करने का संकल्प पिछली नीतियो में रखे जाने के बावजूद यह अभी तक मात्र 3.7 प्रतिशत ही है। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री शेखावत ने अनुभव किया कि राज्य के कुल बजट का एक तिहाई पैसा शिक्षा के क्षेत्र पर खर्च किया जा रहा है। इसके बावजूद शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने के प्रयासो को गति नहीं मिल रही है। उन्होंने, प्रधानमंत्री से अनुरोध किया कि केन्द्र सरकार को इसके बारे मे राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से विचार करना होगा। उन्होंने सुझाव दिया कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राज्यों के मुख्यमत्रियों की समिति का गठन किया जाए, जो इस विषय पर गम्भीर चिन्तन कर राज्यों का अपेक्षित मार्गदर्शन करे तथा "सबके लिए शिक्षा" के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यूह रचना तैयार करने में सहयोग करे। सरकार को सकल राष्ट्रीय उत्पादन में से ज्यादा पैसा खर्च करना होगा, जिससे देश की सभी शिक्षण संस्थाओं में छात्रों को निःशुल्क शिक्षा मिल सके और सरकार "सबके लिए शिक्षा" के लक्ष्य को पूरा कर सके।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम

शिक्षण संस्थाओं की प्रत्येक कक्षा से परिसंबद्ध व्यावहारिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रत्येक विषय के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तैयार करके शिक्षण संस्थाओं में उपलब्ध कराए जाए। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्यशालाएं आयोजित की जाएं, जिसमे अध्यापक और पर्यवेक्षक मिलकर विकसित सामग्री की जांच करें और उसमें आवश्यक संशोधन करके वह सामग्री और अन्य शिक्षण सस्थाओं को उपलब्ध कराएं। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का दो तिहाई हिस्सा हो। बाकी एक तिहाई पाठ्यक्रम राज्यो और स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाए। निम्नलिखित विषयो को सैकन्डरी स्तर तक पढ़ना आवश्यक हो :

- राष्ट्रभाषा–हिन्दी
- मातृभाषा या अन्य भाषा (अगर हिन्दी मातृभाषा हो)
- गणित
- विज्ञान
- सामाजिक विज्ञान
- समाजोपयोगी उत्पादन कार्य, चित्रकला तथा शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

हायर सैकेण्डरी और स्नातक स्तर पर एक भाषा और तीन वैकल्पिक विषयों को पढ़ना आवश्यक हो। राष्ट्रीय नीति के प्रत्युत्तर मे शिक्षा को प्रयोजनाबद्ध बनाने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रभाषा हिंदी

पुराना कितना ही प्रिय क्यों न हो उसे छोड़ना ही पड़ता है, और नया कितना ही कठिन क्यों न लगे, समय की

माग के आधार पर स्वीकार करना ही पडता है। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है, फिर भी कुछ राज्य इसे स्वीकारने की स्थिति मे नहीं हैं। पता नहीं हम पुरानी, विदेशी भाषा अंग्रेज़ी को क्यो नहीं छोड़ते और समय की माग के आधार पर अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी को क्यो नही स्वीकार करते? अग्रेज़ी माध्यम वाले स्कूलों की सनक बढती जा रही है, लेकिन हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी को सीखने के लिए हम तैयार नहीं है। अंग्रेज़ी माध्यम वाले स्कूलों में छात्र विषयो को रट्टा लगाकर परीक्षाओ मे लिखते है, लेकिन मातृभाषा या हिन्दी के माध्यम से विषय समझ में आने के बावजूद भी पढ़ना नहीं चाहते। इस झूठी प्रतिष्ठा को समाप्त करने के लिए सरकार को इन अग्रेजी माध्यम वाली संस्थाओं को बन्द कर देना चाहिए। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या हिन्दी हो जिसके द्वारा छात्र अपने विषय को पढ़ने में रुचि लें। अंग्रेजी भाषा को केवल एक विषय के रूप मे पढ़ाया जाना ही समीचीन होगा।

अच्छे शिक्षक

हमारा देश बढती जनसंख्या, धनाभाव, सामाजिक कुरीतियो, अनुपयुक्त पाठ्यक्रम तथा अच्छे शिक्षको की कमी की समस्याओ से घिरा हुआ है। कहा जाता है कि पढ़े-लिखे युवक को जब कही नौकरी नही मिलती तो वह अन्त में शिक्षक बन जाता है। वास्तविकता यह है कि आजकल शिक्षक बनने के लिए स्नातक या स्नातकोत्तर डिग्री के साथ-साथ एस०टी०सी०/बी०एड० करना पड़ता है। आजकल शिक्षको को अच्छे वेतन मिलने लगे है, इसलिए 60 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले योग्य युवक ही शिक्षक बन पाते हैं। हमारे देश में अफसरों और अन्य कर्मचारियों का चयन लिखित परीक्षा और साक्षात्कार मे प्राप्त अंकों के आधार पर किया जाता है, लेकिन अध्यापको का चयन डिग्रियों में प्राप्त अकों पर या साक्षात्कार मे प्राप्त अंको के आधार पर किया जाता है। अत: अध्यापकों का चयन भी अभिक्षमता (Aptitude test) के आधार पर किया जाए। अभिक्षमता परीक्षण द्वारा ऐसे अध्यापको का चयन होगा जिनमें अच्छे अध्यापक बनने के गुण हो। आजकल अच्छे शिक्षकों की कमी है इसलिए सरकार शैक्षिक स्तर को सुधारने मे असमर्थ है। आजकल के अध्यापक अपनी नौकरी को उच्च स्तर की नौकरी पाने हेतु सफलता की सीढी समझते हैं या फिर धन कमाने के लिए कक्षा में ठीक से नहीं पढाकर प्राइवेट ट्यूशन के धंधे मे लगे हुए है। ऐसे शिक्षक पवित्र शिक्षा क्षेत्र को नापाक बना रहे है। अगर प्रत्येक शिक्षक ईमानदारी और निष्ठा से अपना अध्यापन कार्य करे तो शिक्षा के क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक और राष्ट्रीय वातावरण मे भी सुधार होगा।

सीखने पर ज़्यादा ज़ोर

आजकल अध्यापक कक्षा मे पाठ्यपुस्तक के पाठ को छात्रों के सामने पढते है, या भाषण के द्वारा विषय को पढ़ाते है, लेकिन छात्रों ने क्या सीखा इसकी पुष्टि नहीं करते। आधुनिक शिक्षा शास्त्रियो का मत है कि अध्यापक पढ़ाने के बजाय छात्रो के सीखने पर ज्यादा ज़ोर दें। शिक्षा की प्रक्रिया मे सक्रिय रूप से सीखना और निष्क्रिय रहकर सीखना दो अलग-अलग पहलू होते हैं। सक्रिय सीखने मे बालक को अपने हाथ से कार्य करके सीखना होता है, जिसमे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कार्यकलापों की आवश्यकता होती है। निष्क्रिय सीखने में अध्यापक के व्याख्यान और प्रतिपादन को सुनकर सीखना पडता है। शिक्षा के सम्पूर्ण उद्देश्य को पूरा करने के लिए दोनों तरीको से सीखना आवश्यक है, लेकिन छात्रों को स्वय सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना ही श्रेयस्कर है। अध्यापक इस प्रक्रिया मे निर्देशक और समन्वयक का कार्य करे। ऐसी परिस्थिति में विद्यालय का कर्तव्य हो जाता है कि अभिमत और आधार सामग्री दिलाकर विद्यार्थियों की सीखने में मदद करे। पुस्तकालय आधार सामग्री दिलाने मे सहयोग दें। छात्रों में पढ़ने की, सूचना इकट्ठा करने की, सूचना का विश्लेषण करने की और निष्कर्ष निकालने की क्षमता का विकास करना होगा। इतना ही नहीं कम्प्यूटरो, टी वी इत्यादि को प्रयोग मे लाने की शिक्षा दी जाए। सीखना मानव के जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। अगर अध्यापक ईमानदारी और लगन के साथ पढ़ाने का काम करता है तो उसका

असर छात्रों के व्यवहार और दैनिक जीवन पर पड़ेगा। छात्रो मे स्वयं सीखने से आत्मसतोष के साथ आत्मविश्वास भी पैदा होगा।

व्यावसायीकरण

आजकल सभी शिक्षण संस्थाएं सिर्फ पाठ्यक्रमो, परीक्षाओं, प्रमाण-पत्रों और डिग्रियों से बंधी हुई है और समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं देतीं। इतना ही नहीं छात्रों की रूचियों की ओर भी ध्यान नहीं दिया जाता। आज का अभिभावक अपने बच्चे को अच्छा कारीगर नही बनाना चाहता, क्योंकि समाज कारीगर को हेय दृष्टि से देखता है। सरकार सभी अभिभावको को शिक्षित करे और व्यावसायिकता निर्देशन द्वारा छात्रों का मार्गदर्शन करे जिससे छात्र कक्षा 8 के पश्चात् व्यावसायिक पाठ्यक्रमो में भर्ती होकर अपनी रुचि का विकास कर सकें। कुछ छात्रों को कक्षा 10 के बाद व्यावसायिक धारा में आकर्षित करने के लिए उन्हे आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाए। व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे पर्यटन और यात्रा, गृह विज्ञान से सम्बन्धित पाठ्यक्रम, इलेक्ट्रोनिक्स और कम्प्यूटर संबंधित पाठ्यक्रम, जीवन बीमा, बैंकिंग आदि के कोर्स स्कूलो में रखे जाएं। ऐसे पाठ्यक्रमों के बारे में आवश्यक सूचना और अभिप्रेरणा के द्वारा छात्रों को उत्साहित किया जाए। शिक्षा एक कला है, जिसके द्वारा मानव शक्तियों का विकास कर उन्हें सामाजिक सेवाओं में प्रयुक्त किया जाता है।

पाठ्य सहगामी कार्यकलाप

शिक्षा के अन्तर्गत सिर्फ अध्यापकों द्वारा पढ़ाने और विद्यार्थियो द्वारा किताबी ज्ञान प्राप्त करने से शिक्षा के उद्देश्य पूरे नही होते। शिक्षा के द्वारा छात्रो का सर्वोन्मुखी विकास किया जाना चाहिए जिससे वे अपनी रूचि के क्षेत्र में अपनी दक्षता से असाधारण कार्य करें। आज प्रत्येक क्षेत्र मे विचारो, अधिकारो और नए प्रकरणो के द्वारा उत्कृष्ट कार्य हो रहे है। शिक्षा के द्वारा छात्रो का ऐसा व्यक्तिगत विकास किया जाए कि वे अच्छे चित्रकार, मूर्तिकार, गायक, खिलाड़ी, अभिनेता, नेता और व्यापारी बनकर राष्ट्र का नाम ऊंचा करें। इसके लिए समस्त शैक्षणिक सस्थाओ मे ऐसे अवसर पैदा किए जाए जिसमे भाग लेकर छात्र अपनी दक्षता का विकास कर सके। सभी शिक्षण सस्थाओ में पाठ्य सहगामी कार्यकलापो की सुव्यवस्था हो जिसमे साहित्यिक, सांस्कृतिक, सेवा-भावना और शारीरिक गतिविधियो का समावेश हो। इन गतिविधियों के द्वारा छात्रों को अपनी दक्षता के विकास के अलावा, भाईचारा, परोपकार, राष्ट्रीय भावना, भावनात्मक एकता और अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास करने का मौका मिले जिससे वे अपने जीवन की समस्याओं का हल ढूंढ सकें।

कोठारी आयोग की रिपोर्ट मे कहा गया है कि हमारे देश की तकदीर स्कूल की कक्षा में बनती है, क्योंकि कक्षा में पढने वाले छात्र हमारे देश के कर्णधार हैं। छात्रों को कक्षा मे तुलनीय कोटि की शिक्षा मिलने पर ही उनका अपना देश का विकास सम्भव है। शिक्षा के द्वारा ही वास्तविक जीवन और बढ़ते ज्ञान में तालमेल बनाए रखना है क्योकि यह सही तालमेल ही सभ्यता की कुजी है। शिक्षण सस्थाओं में छात्रो के शरीरों को मजबूत बनाया जाए और उनकी क्षमताओ को उभारा जाए। इतना ही नहीं शिक्षा के द्वारा छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाए और उन्हें उच्च कोटि की राष्ट्रीय भावनाओं की नसीयत दी जाए जिससे वे अपने और राष्ट्र के विकास मे सक्रिय भाग ले सके। हमारे देश मे लोकतत्र को सुरक्षित रखने के लिए सम्पूर्ण जनता का शिक्षित होना आवश्यक है अन्यथा लोकतंत्र खतरे में पड़ सकता है। ❑❑

संस्कृत विश्वविद्यालय और पारंपरिक विषय

पीयूषकान्त दीक्षित

वरिष्ठ अध्यापक
न्याय विभाग
लाल बहादुर शास्त्री रा.सं.वि.
नई दिल्ली–110016

आज के कप्यूटर युग में भी महर्षि पाणिनी का संस्कृत-व्याकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं सूक्ष्मता के लिए विश्वविदित है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में संस्कृत के पठन-पाठन को सुलभ बनाने के लिए राष्ट्रीय व प्रांतीय दोनों ही स्तरों पर अनेक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की गई है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इन सुविधाओं की चर्चा करते हुए संस्कृत अध्ययन-अध्यापन के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया है। साथ ही शास्त्रीय या पारंपरिक विषयों को विभिन्न परीक्षाओं में समाहित करने की भी सिफारिश की है।

विश्व में संस्कृत-भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान आज भी सुरक्षित है। वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत भाषा का गौरव अप्रतिम तो है ही, इस भाषा में निबद्ध विशाल एवं अनुपम संस्कृत वाङ्मय का वैशिष्ट्य भी किसी से छिपा नहीं है। सम्भवत: यही कारण है कि विश्व के प्रखर चिन्तक चाहे वे पाश्चात्य सस्कृति से ही सम्बद्ध क्यों न रहे हों, हमारे उत्कृष्ट संस्कृत साहित्य से प्रभावित अवश्य हुए। संस्कृत साहित्य का प्रतिपाद्य देश, वर्ग, जाति, काल आदि संकीर्ण परिधियो से घिरा नहीं है। यही कारण है कि यह आज भी सजीव एवं विश्वजनीन है।

इस वैज्ञानिक प्रधान युग में जहा आधुनिक भाषाएं एवं आधुनिक साहित्य अपनी प्रासगिकता के लिए संघर्षरत हैं वहीं विश्व की यह प्राचीनतम सस्कृत भाषा तथा इसका साहित्य अपनी प्रासंगिकता एव उपयोगिता के सदर्भ में अत्यन्त आश्वस्त है। आज का युग कम्प्यूटर युग के रूप मे विख्यात हो रहा है। गहन अनुसंधान के पश्चात् वैज्ञानिक यह निर्धारित कर चुके हैं कि संस्कृत भाषा कम्प्यूटर के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इसी प्रकार वैज्ञानिको ने पारम्परिक विषय नव्य--न्याय को भी कम्प्यूटर के लिए सर्वथा उपयोगी स्वीकार किया है। महर्षि पाणिनी का संस्कृत-व्याकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं सूक्ष्मता के लिए विश्वविदित है। आजकल भारत मे भी विभिन्न संस्कृत विश्वविद्यालयों मे संस्कृत व्याकरण के कम्प्यूटर मे सन्निवेश का कार्य तीव्र गति से प्रगति कर रहा है। वाराणसी स्थित सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय में इस महत्त्वपूर्ण कार्य का शुभारम्भ हिन्दी के प्रख्यात विद्वान तथा विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डा. विद्यानिवास मिश्र की सत्प्रेरणा से हुआ। कानपुर आई.आई.टी. मे भी इसी प्रकार का कार्य सम्पन्न हो रहा है। इसी प्रकार का ठीक ऐसा ही कार्य राजधानी में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ में भी यहां के कुलपति डा. मण्डन मिश्र के नेतृत्व मे जारी है। इस प्रकार संस्कृत एवं इस भाषा में निबद्ध पारपरिक विषयो की प्रासंगिकता भी अत्यन्त स्पष्ट है।

यद्यपि सस्कृत भाषा अपनी ओजस्विता एवं माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है तथापि इस भाषा का महत्त्व उन पारंपरिक विषयों के कारण और बढ जाता है जिन विषयों मे भारतीय विज्ञान कूट-कूट कर भरा है। इन पारंपरिक विषयों के अध्ययन-अध्यापन की अत्यन्त वैज्ञानिक परंपरा हमारे देश मे अनादि काल से चली आ रही है। प्राचीन भारत में इन विषयों का अध्ययन-अध्यापन जहां गुरुकुल मे गुरु-शिष्य परपरा से होता था वहां आज इनका अध्ययन तथा अध्यापन आधुनिक ढग से संस्कृत विश्वविद्यालयों में चल रहा है। हमारे देश में सप्रति पांच संस्कृत विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित

हैं। इनमें तीन प्रान्तीय विश्वविद्यालय हैं तथा दो केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं।

दो वर्ष पूर्व केन्द्रीय सरकार ने श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली एव राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश) को अभिमत केन्द्रीय सस्कृत विश्वविद्यालय के रूप मे मान्यता प्रदान की है। सम्भवत: हमारे देश का प्राचीनतम संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी स्थित 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व यह विश्वविद्यालय 'राजकीय संस्कृत महाविद्यालय' के रूप मे जाना जाता था। उत्तर प्रदेश के प्रथम मुख्य मन्त्री डा. सम्पूर्णानन्द के व्यक्तिगत प्रयासो से यह राजकीय महाविद्यालय 'वाराणसेय सस्कृत-विश्वविद्यालय' के रूप में परिणत हुआ तथा बाद में इसी का नाम 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' हो गया। कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय बिहार प्रदेश के दरभंगा नगर में स्थित है। श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय उडीसा राज्य के पवित्र नगर पुरी में है। इन तीनो प्रान्तीय विश्वविद्यालयो में भी शास्त्रीय या पारंपरिक विषयों का गहन अध्ययन परंपरा प्राप्त पद्धति से आज इस आधुनिक युग में भी यथावत हो रहा है।

पं. मदन मोहन मालवीय द्वारा संस्थापित 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की गणना विश्व के प्रसिद्धतम विश्वविद्यालयों मे होती है। बहुत कम लोगो को यह ज्ञात है कि पं. मदन मोहन मालवीय ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना इन पारपरिक विषयों के संस्कृत माध्यम से अध्ययन-अध्यापन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही की थी। इन विषयों के अध्यापकों की नियुक्ति स्वयं मालवीय जी ने अत्यन्त रोचक पद्धति से की थी यह भी प्रसिद्ध है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि मालवीय जी जैसे प्रखर एवं प्रगतिशील चिन्तक भी शास्त्रीय विषयों के पारंपरिक अध्ययन के प्रति कितने जागरूक एवं सचेष्ट थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एकमात्र ऐसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय है जहाँ संस्कृत माध्यम से पारंपरिक विषयों के अध्ययन-अध्यापन के लिए अलग से एक सकाय स्थापित है। इस 'प्राच्यविद्या-धर्म-विज्ञान-संकाय' मे संस्कृत में प्राय: सभी शास्त्रीय या पारंपरिक विषयो का अध्ययन-अध्यापन एव उच्च-कोटि का अनुसधान सस्कृत विश्वविद्यालयो की तरह ही संपन्न हो रहा है। यह सकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक सर्वसुविधा सम्पन्न संस्कृत विश्वविद्यालय है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं हो सकती।

विश्वविद्यालय स्तरीय संस्कृत का पठन-पाठन दिल्ली स्थित स्वायत्तशासी सस्था-'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' के माध्यम से भी देश भर मे हो रहा है। इस संस्थान को आर्थिक सहायता विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से नहीं प्राप्त होती है, अपितु केन्द्रीय मानव ससाधन विकास मन्त्रालय से सीधे इस सस्थान को आर्थिक सहयोग प्राप्त होता है। इस संस्थान से सम्बद्ध 'श्री रणवीर केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ' जम्मू-कश्मीर प्रदेश के जम्मू नगर में स्थित है। उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर मे इससे सम्बद्ध 'गंगानाथ झा केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ' है जहा उच्च कोटि का शोध एवं प्रकाशन कार्य प्रगति पर है। इसी प्रदेश के लक्ष्मणपुर (लखनऊ) नगर में भी एक 'केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' कार्यरत है। उड़ीसा राज्य के पुरी नगर में 'श्री सदाशिव केन्द्रीय-सस्कृत-विद्यापीठ' संस्कृत के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। राजस्थान की राजधानी जयपुर मे भी एक 'केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' कार्य कर रहा है। 'श्री राजीव गांधी केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' इसी संस्थान के अन्तर्गत शृंगेरी में स्वर्गीय राजीव गांधी की स्मृति मे स्थापित हुआ है तथा पिछले वर्ष से कार्यरत है। केरल प्रदेश के गुरुवायूर नगर में भी 'केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' शास्त्रीय विषयों के अध्ययन को आगे बढ़ाने में सतत संलग्न है। संस्कृत विश्वविद्यालयो से सम्बद्ध अनेक सस्कृत महाविद्यालय भी इस पुनीत कार्य में लगे है।

संस्कृत के अध्ययन एवं अध्यापन की एक सरल पद्धति भी आज स्वतन्त्र भारत के आधुनिक विश्वविद्यालयों में प्रचलित है। हमारे देश के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों मे सस्कृत विभाग एवं दर्शन विभाग उन विद्यार्थियों को हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति एवं पारंपरिक विषयों का सामान्य परिचय करवा रहे है जो इन विषयों में गहन रुचि तो रखते हैं परन्तु सस्कृत भाषा में, शास्त्रीय-विषयो के गम्भीर अध्ययन मे सर्वथा असमर्थ हैं। ये विभाग विश्व में संस्कृत भाषा एवं पारंपरिक विषयों के गहन अध्ययन की भूमिका या पूर्वपीठिका के सफल सर्जक हैं, यह हम मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते है। अनेक

प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान इन विभागो के माध्यम से शास्त्रो का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त किसी एक विशिष्ट शास्त्रीय विषय को लेकर संस्कृत विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए उत्सुक दीख रहे हैं। इस तरह बडे व्यापक स्तर पर आज भी संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध पारंपरिक विषयों का पठन-पाठन एव अनुसधान चल रहा है।

आज भारत का प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक भारतीय आधुनिक समाज में त्वरित गति से हो रहे नैतिक-ह्रास एव पाश्चात्य-अन्धानुकरण को लेकर चिन्तित है। हमारे देश के कर्णधार तीव्र गति से हो रहे नैतिक पतन को रोकने के लिए आजकल नैतिक शिक्षा की दुहाई दे रहे हैं। नैतिक शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति का परिचय प्रामाणिक रूप से सस्कृत भाषा एवं इसमें लिखित शास्त्रीय विषयों के अध्ययन से ही सम्भव है, यह भी सर्वमान्य तथ्य है। आज देश की दुरावस्था को दूर करने के लिए चाणक्य एव चाणक्य-नीति की आवश्यकता है। परन्तु यह असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि हम सस्कृत के पारंपरिक अध्येताओं को प्रशासन की देहली तक भी नहीं पहुंचने दे रहे है।

विचार कीजिए, शास्त्रीय या पारंपरिक विषयों (व्याकरण, साहित्य, न्याय, मीमासा, वेदान्त, वैशेषिक, साख्य, योग, ज्योतिष, आयुर्वेद, वेद, भारतीय-राजनीति, भारतीय-अर्थशास्त्र, तन्त्र आदि) का गम्भीर अध्ययन इतने व्यापक स्तर पर चल रहा है फिर भी इन पारंपरिक विषयों को भारतीय प्रशासनिक परीक्षाओं (आई ए एस.) में स्थान नहीं दिया गया है। प्रान्तीय स्तर की जो अन्य प्रशासनिक-परीक्षाए हमारे देश में ली जाती हैं वहां भी इन विषयो का कोई स्थान नहीं है। इन परीक्षाओ में मात्र आधुनिक विश्वविद्यालयो में पढ़ाए जाने वाले संस्कृत एवं दर्शन के पाठ्यक्रम को आधार बनाकर सामान्य सस्कृत एवं सामान्य दर्शन को ही स्थान प्राप्त है। यह कहना कि पारंपरिक विषय इन दो विषयों में ही समाहित हो जाते हैं, अत्यन्त उपेक्षणीय है। संस्कृत विश्वविद्यालयों मे पढ़ाए जा रहे पारंपरिक विषयों का पाठ्यक्रम आधुनिक विश्व विद्यालयों मे पढ़ाए जा रहे पाठ्यक्रम से मौलिक रूप में कितना भिन्न है यह सामान्य दृष्टि वाला व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है। यदि इन परीक्षाओं में भाग लेने के लिए वे सभी विद्यार्थी हैं जो स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं तो स्नातक परीक्षाओं में निर्धारित पारंपरिक विषयों की प्रशासनिक-परीक्षाओं मे हो रही घोर उपेक्षा का रहस्य समझ मे नही आता है। सम्भवतः यह ज्वलन्त विषय अधिकारियो की दृष्टि मे अब तक नहीं आ सका है। देश हित को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक भारतीय का विशेष कर पारंपरिक विषयो के अध्ययन-अध्यापन से जुडे सभी बुद्धिजीवियों का यह पावन कर्त्तव्य है कि वे इस दिशा मे प्रशासन को प्रेरित करें।

एक पारपरिक विषय का विद्यार्थी स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के फलस्वरूप प्रशासनिक परीक्षाओं की आरम्भिक-परीक्षा में प्रविष्ट तो हो जाता है, पर पाठ्यक्रम से प्रायः अपरिचित होने के कारण इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित, आदि आधुनिक विषयों के अध्येताओं की तरह सरलता से सफल नही हो पाता है। पारपरिक विषयों के कुछ अध्येता जो सफल होते है उन्हें अतिरिक्त एवं कठिन परिश्रम का आश्रय लेना पड़ रहा है। यदि देश के विभिन्न-क्षेत्रों में सेवा के लिए निर्धारित परीक्षाओं मे पारंपरिक विषयों का न्याय-प्राप्त समावेश हो जाए तो देश के लाखों पारंपरिक विषयों के छात्र-युवाओं का मार्ग प्रशस्त होने के साथ-साथ इन विषयो की सार्थकता एवं महत्ता स्वतः सिद्ध हो सकेगी। आज सामान्यतः पारंपरिक विषयो के अध्ययन को, जो कुछ सीमित उद्देश्यों की पूर्ति मात्र के लिए समझा जा रहा है, हम एक विस्तृत आयाम दे सकेंगे। ऐसा हुआ तो समाज के प्रत्येक वर्ग में इन पारपरिक-विषयों के प्रति एक विशेष आकर्षण उत्पन्न होगा तथा इन विषयों को लेकर अज्ञानता के कारण जो एक उपहास की या उपेक्षा की दृष्टि उच्चवर्ग के युवाओं में देखी जा रही है उसका भी अन्त अवश्य होगा।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जिस प्रकार आयोग की अनुसंधानार्थ छात्रवृत्ति एव प्राध्यापक पद की अर्हता परीक्षा में इन पारपरिक विषयों को स्थान दिया है उसी प्रकार यदि सघ लोक सेवा आयोग आदि सस्थाओं के द्वारा ली जा रही परीक्षाओ में भी इन विषयों को उचित स्थान दिया जाए तो लाखों विद्यार्थियो के भविष्य को सुरक्षा प्रदान की जा सकेगी। ❑❑

पुस्तक समीक्षा

1

पुस्तक का नाम	:	**शैक्षिक मनोविज्ञान**
लेखक	:	**डा. शालिग्राम त्रिपाठी**
प्रकाशक	:	वेंकटेश प्रकाशन, दिल्ली
सस्करण	:	द्वितीय
प्रकाशन वर्ष	:	1993
पृष्ठ	.	388
मूल्य	:	50 रुपये
समीक्षक	.	**सुरक्षा पाल**

शैक्षिक मनोविज्ञान विषय पर उपलब्ध पुस्तकों की शृंखला में डा. शालिग्राम त्रिपाठी द्वारा इसी विषय पर लिखित पुस्तक वस्तुत: एक सराहनीय बौद्धिक प्रयास है। पुस्तक के आकार व स्वरूप को देखने मात्र से ही पुस्तक की गुणवत्ता अभिव्यंजित हो जाती है। इस पुस्तक की नियोजना अध्यापक शिक्षण व मनोविज्ञान शिक्षण के लिए विभिन्न स्तरों पर सस्तुत पाठ्यक्रम के अनुसार की गई है।

प्रथमत: जो गुण अधिक प्रभावित कर पाया है वह है पुस्तक मे संग्रहित विषयवस्तु की भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की गई व्याख्याएं। यह विशेषता इस पुस्तक को अन्य पुस्तको से भिन्न सन्दर्भ में प्रतिष्ठित करती है।

नि:सन्देह पुस्तक में शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाले सभी पक्षों को सम्मिलित किया गया है। विषयवस्तु को पर्याप्त विस्तार प्रदान किया गया है तथा विषय के स्पष्टीकरण हेतु जन सामान्य के अनुभवों का प्रयोग किया गया है। पुस्तक विभिन्न प्रत्ययों का सैद्धान्तिक आधार ही प्रस्तुत नहीं करती वरन् शिक्षा के अध्यापकों एवं शिक्षा तथा मनोविज्ञान के विद्यार्थियो के लिए विषय का व्यावहारिक निरूपण भी प्रस्तुत करती है। मनोविज्ञान के विभिन्न प्रत्ययो को शिक्षा, शिक्षण व अधिगम के संदर्भ मे सविस्तार उल्लिखित किया गया है। अध्यापकों के लिए इसकी उपादेयता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

विषय के नियोजन के लिए क्रमिक, वैज्ञानिक एवं बोधगम्य शैली का प्रयोग किया गया है। बी.एड. व एम.एड. कक्षाओ के विद्यार्थियों के लिए तथा इन विभागों में शिक्षणरत अध्यापकों के लिए भी यह पुस्तक पर्याप्त विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक अपने पाठकों के भावी अर्थपूर्ण चिन्तन के लिए धरातल प्रदान करने में सक्षम है। यूं इस विषय पर पर्याप्त पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनमें इस विषय के विभिन्न पक्षों पर गहराई से विचार प्रस्तुत किए गए हैं पर कभी-कभी इस प्रकार का विश्लेषण एव विवेचन अधिक बुद्धि स्तर के विद्यार्थियो के लिए तो उपयुक्त हो जाता है परन्तु सामान्य स्तर के विद्यार्थियों को उलझा देता है। विचार एव भाषा की जटिलताओं से युक्त अभिव्यक्ति प्रत्ययों के अर्थ का सम्प्रेषण प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाती। इस पुस्तक की भाषा शैली इसमें संकलित बौद्धिक उद्दीपन के अनुरूप ही है। इसलिए प्रत्ययों के अर्थग्रहण व स्पष्टीकरण में कोई अवरोध निर्मित नहीं हो पाता।

इस पुस्तक में जटिल प्रत्ययों को बड़ी सहजता व सरलता से ऐसी भाषा में व्यक्त किया गया है कि पढ़ने वाले के मस्तिष्क में एक मानसिक चित्र बन जाता है जो स्मृति में काफी समय तक स्थाई रहता है। विषय के विश्लेषण में लेखक की अन्तर्दृष्टि व सूझबूझ का तो परिचय

प्राप्त होता है तथापि कभी-कभी ऐसा बोध होता है कि विषय से संबंधित चिन्तन को अधिक सैद्धान्तिक दृष्टि से जो गम्भीरता व व्यापकता प्रदान की जानी चाहिए थी उसका अभाव है।

शैक्षिक मनोविज्ञान की इस पुस्तक में स्मृति स्तर के ज्ञान की ही प्रमुखता अधिक प्रतिध्वनित होती है, अमूर्त व समस्यात्मक चिन्तन के विकास के लिए विषयवस्तु का आधार पाठक को उपलब्ध नहीं हो पाता है। निश्चित रूप से यह पुस्तक बी.एड. स्तर के विद्यार्थियों के लिए तो बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है परन्तु उच्च अध्यापक-शिक्षा के स्तरों के लिए इसमें विषयवस्तु का वांछनीय विवेचन व व्याख्या नहीं की गई है। मनोविज्ञान के कुछ विषय तो इतने जटिल हैं कि जब तक उन्हें सम्यक प्रकार से स्पष्ट न किया जाए दुरूह ही बने रहते हैं। बी.एड. व बी.ए. स्तर पर शिक्षणरत अध्यापकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य स्तरों पर अध्यापनरत शिक्षकों के लिए पुस्तक में प्रस्तुत विषय सामग्री की प्रकृति एवं उसका विश्लेषण अपर्याप्त प्रतीत होगा। इसकी विषयवस्तु सूचनात्मक अधिक है, संश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक कम। शोध प्रक्रिया में इस प्रकार का विषय विश्लेषण अधिक पुनर्बलनात्मक नहीं होता। विषय का विवरणात्मक बृहद् संग्रह किया गया है।

लेखक जिस परिप्रेक्ष्य को मस्तिष्क में रखकर लेखन कार्य करता है वही परिप्रेक्ष्य विषय के अर्थापन एवं प्रस्तुतीकरण में एकीकृत हो जाता है। हो सकता है लेखक के अभीष्ट के अनुरूप पुस्तक का बाह्य व आन्तरिक पक्ष संगठित हो गया हो। पुस्तक का बाह्य स्वरूप बड़ा अर्थपूर्ण एवं आकर्षक है। टंकण भी स्पष्ट है, परन्तु कहीं-कहीं टंकण प्रक्रिया विशृंखलित हो गई है।

लेखक का यह प्रयास वास्तव में प्रशंसनीय है। बी.एड. के स्तर पर जहां आगे के चिन्तन के लिए आधार निर्मित किया जाता है वहां हिन्दी में अच्छी पुस्तकों का जिनमें अपनी सस्कृति बोध का संयोजन हुआ हो, अभी बहुत अभाव है। इस दिशा मे लेखक की 'शैक्षिक मनोविज्ञान' नामक पुस्तक विद्यार्थियों, शिक्षा अध्यापकों एवं मनोविज्ञान के पाठकों के मध्य अपने स्वतन्त्र सरक्षण के लिए प्रतिष्ठित हो पाएगी। ❑❑

2

पुस्तक का नाम	:	**बच्चों के लिए एक सही शुरुआत : विकासशील देशों में शिशु विकास एवं देखभाल के लिए कार्यक्रम**
लेखक	:	**राबर्ट जी. मेयर्स**
हिन्दी अनुवाद	:	**सुशील जोशी**
प्रकाशक	:	यूनेस्को एवं नेशनल बुक ट्रस्ट
प्रकाशन वर्ष	:	1994
पृष्ठ	:	92
समीक्षक	:	**जी.सी. उपाध्याय**

शिशु एवं पारिवारिक वातावरण परियोजना के अन्तर्गत लिखी गई यह पुस्तक विकासशील देशों में शिशु विकास एवं देखभाल के कार्यक्रमों को अपनाने के लिए एक समग्र रूपरेखा प्रस्तुत करती है तथा बाल जीवन रक्षा, बाल विकास एवं मनो-सामाजिक खुशहाली को साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाओं के रूप में विश्लेषित एवं प्रतिष्ठित करती है।

शिशु विकास एवं देखभाल में परिवार की सर्वोपरि भूमिका है। स्कूल पूर्व के वर्ष बच्चों के भविष्य के निर्धारण में निर्णायक सिद्ध होते हैं। यदि बच्चों को स्कूल के लिए

सही शुरूआत देनी हो तो पारिवारिक वातावरण का सम्वर्धनात्मक होना आवश्यक है। इसलिए परिवार का बाल विकास कार्यक्रमों का हिस्सा बनना नितान्त आवश्यक है। लेकिन अज्ञानता, अशिक्षा, रुग्णता, कुपोषण, गरीबी एव संसाधनों का अभाव उपर्युक्त पारिवारिक वातावरण के निर्माण में रुकावट डालते हैं। इसलिए ऐसे कार्यक्रमो की रणनीति निर्धारित करना जो शिशु विकास एव देखभाल में परिवारो को सहारा दें अति आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक विकासशील देशों में व्याप्त विभिन्न समस्याओ से निपटने की दृष्टि के अनुरूप ऐसे संस्थागत एव पारिवारिक कार्यक्रमो की रूपरेखा प्रदान करती है जिनसे बच्चो को स्कूल मे प्रवेश से पूर्व तक पोषण, आतमसम्मान, पूर्व साक्षरता एवं गणितीय कौशल के साथ एक सही शुरूआत प्रदान की जा सकें।

पुस्तक के आमुख में यूनेस्को के महानिदेशक लोगों को ऐसे ज्ञान से सम्पन्न करने की आवश्यकता पर बल देते है, जिसके द्वारा वे आधुनिक एवं परम्परागत दोनो तरह के संसाधनो का प्रयोग कर अपने बच्चो की देखभाल व संरक्षण करने तथा उन्हें अच्छी शुरूआत देने में समर्थ हो सके।

पुस्तक के पहले अध्याय 'भूमिका' में लेखक बाल जीवन रक्षा–दर में वृद्धि के आंकडे प्रस्तुत कर खुशी तो अनुभव करता है लेकिन साथ ही यह चेतावनी भी देता है कि इन आंकड़ों से विकास को नापना उचित नहीं है। उनके अनुसार जो बच्चे जिन्दा रह गए हैं, जब तक उनके जीवन को खुशहाल नहीं बनाया जाता, विकास को परिभाषित नही किया जा सकता। जो बच्चे बच गए यदि वे तनाव व गरीबी की उन्हीं परिस्थितियों में जीते रहे जिनसे उनकी जीवन रक्षा खतरे में थी अथवा यदि वें अकर्मण्य, अनुत्पादक एवं निष्फल जीवन जीने को विवश रहे तो जीवन रक्षा दर की वृद्धि की खुशी टिक नहीं पाएगी। 'न मरना' ही जीवन रक्षा नहीं है। 'जीना' एक प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य सामाजिक, मानसिक एवं शारीरिक खुशहाली है, इसलिए बाल विकास का प्रमाण मृत्यु–दर में कमी नहीं बल्कि ऐसी जीवन रक्षा है जो सर्वांगीण विकास के लिए अच्छी शुरूआत की प्रक्रिया निश्चित करती है।

दूसरे अध्याय 'उनका आशय क्या है हम क्या जानते हैं' में बाल विकास के बारे में व्याप्त संकुचित दृष्टिकोणों एवं गलत धारणाओं को स्पष्ट करते हुए समग्र कार्यक्रमों की आवश्यकता पर बल दिया है। बाल विकास की प्रक्रिया की अपर्याप्त एवं अपूर्ण जानकारी के अभाव में कई कार्यक्रम आशिक महत्त्व के रह जाते हैं। जैसे कुछ लोग डॉक्टरी जांच कराना ही बाल विकास के लिए पर्याप्त मानते हैं तो कुछ लोग समय पर भोजन दे देना मात्र, इसी प्रकार कुछ का मत है कि विद्यालय पूर्व शालाओ में रंगीन ब्लाको से खेलना ही बाल विकास के लिए पर्याप्त है, लेकिन ऐसे एकांगी कार्यक्रम अपूर्ण है जो बाल–विकास के सभी पक्षों मे तालमेल नहीं रखते। बाल विकास कार्यक्रमो तथा बाल–विकास को बढ़ावा देने के तरीको मे पोषण, स्वास्थ्य व शिक्षा कार्यक्रमों के लिए माता–पिता एव समुदाय के साथ कार्य करना भी सम्मिलित है। एक तनाव ग्रस्त बालक के लिए उपलब्ध पोषण या भोजन तब तक लाभप्रद नहीं हो सकता जब तक वह तनाव मुक्त न हो। इसलिए मनो–सामाजिक खुशहाली बाल विकास के लिए आवश्यक शर्त है। लेखक के अनुसार बाल विकास के समग्र कार्यक्रम के लिए कुछ बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है :

- बाल विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे बच्चा गति, एहसास तथा अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क के जटिलतम स्तरों से निपटना सीखता है। इस प्रकार **यह बहुआयामी होता है।**
- बाल विकास **अखण्डित** होता है यानी सभी विकास के पक्ष एक–दूसरे से जुडे होते हैं।
- बाल विकास **निरंतर** होता है।
- बाल विकास जैविक, भौतिक एवं सामाजिक परिवेश के प्रति **अंतर्क्रिया** के दौरान होता है।
- बाल विकास का एक **ढर्रा (पैटर्न)** होता है परन्तु इसमें **अनूठापन** भी होता है।

तीसरे अध्याय 'बाल विकास में निवेश क्यों करें' के अन्तर्गत कई दलीलें देकर यह प्रतिष्ठित करने का प्रयास है कि बाल विकास में निवेश आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। नीति निर्धारण के स्तर पर प्राय: शंकाएं उठाई जाती हैं कि बाल विकास तो मां का काम है, या प्यार देने के काम को कार्यक्रम में कैसे साध सकते हैं या बाल विकास कार्यक्रम में निवेश लाभकारी कैसे है पर लाभ की दर क्या है आदि। इन शकाओ की निरर्थकता को दर्शाते हुए कुछ दलीलें देकर बाल विकास में निवेश के लिए ठोस आधार निर्माण किया गया है :

- ❑ मानव अधिकार एवं बालक की मूलभूत अधिकार की दलील
- ❑ नैतिक मूल्यों की दलील—नैतिक, सामाजिक मूल्यों की निरन्तरता बच्चों में ही निश्चित की जा सकती है।
- ❑ आर्थिक दलील—बाल विकास में निवेश से भावी उत्पादकता मे वृद्धि
- ❑ सामाजिक एकता की दलील
- ❑ राजनैतिक दलील—बच्चे राजनैतिक कार्यक्रम का केन्द्र बिंदु बन कर एकता एवं एकजुटता बढाने में सहायक।
- ❑ वैज्ञानिक दलील—अनुसधानों से स्पष्ट है कि बाल विकास में निवेश वैयक्तिक विकास के दूरगामी परिणाम देता है।
- ❑ बदलती सामाजिक परिस्थितिया—शहरीकरण, कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि से बाल विकास एव देखभाल के कार्यक्रम आवश्यक।

ये दलीलें अकाट्य प्रतीत होती हैं तथा उन लोगों में वैचारिक परिवर्तन लाने में प्रभावी हो सकती हैं, जो बाल विकास एवं विद्यालय-पूर्व शिक्षा मे निवेश के समर्थक नहीं है।

अगले अध्याय 'हम कहां हैं, जहां है वहां कैसे पहुंचे' के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के महत्त्व व प्रभाव से बाल विकास की गतिविधियों में विकासशील देशों मे आए सकारात्मक परिवर्तनों की विवेचना करते हुए यूनीसेफ व विश्व स्वास्थ्य संगठन के योगदान का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। एक ओर यह प्रदर्शित किया गया है कि बाल विकास कार्यक्रमो की प्रगति आशातीत रही है वही इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि बाल विकास कार्यक्रमो को गुणात्मक स्वरूप प्रदान करने एवं उनके विस्तार की दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है। कितना विस्तार किया जाना बाकी है इसका अनुमान निम्न आंकड़े देते हैं :

- ❑ चीन में 24 प्रतिशत बच्चे विद्यालय पूर्व शिक्षा में हैं।
- ❑ श्रीलंका में 0–5 वर्ष 15 प्रतिशत बच्चे ही लाभान्वित हैं।
- ❑ फिलीपीन्स में 24 प्रतिशत बच्चे लाभान्वित है,।
- ❑ वियतनाम में 24 प्रतिशत बच्चे औपचारिक दिवस देखभाल कार्यक्रमों में हैं।
- ❑ भारत मे 35 प्रतिशत बच्चे समेकित बाल विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभान्वित हो रहे हैं।

स्पष्ट है कि विस्तार की दिशा में अभी काफी कुछ किया जाना शेष है, साथ ही गुणवत्ता एवं कार्यक्रम की समग्रता के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि बाल विकास कार्यक्रमो में यूनीसेफ एव विश्व स्वास्थ्य सगठन द्वारा दिए गए टीकाकरण बच्चों के जन्म मे दूरी, मां का दूध, परिवार कल्याण शिक्षा के तत्वों का समावेश हो आदि। साथ ही स्कूल में प्रवेश से तत्काल पूर्व (5–6 वर्ष) की आयु के बच्चों के लिए प्रयुक्त मापदण्ड पोषण, रूग्णता, पूर्व साक्षरता अथवा गणितीय कौशल, आत्म-सम्मान व पालकीय अपेक्षाओं के सूचकांकों पर आधारित हो। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय कार्यक्रमो में इन सूचकांकों एवं तत्वों के समावेश की दिशा में काफी कुछ किया जाना अपेक्षित है।

पांचवे अध्याय 'कार्यक्रम निर्धारण की रणनीति' के अन्तर्गत बाल विकास की विविध स्थितियों—गर्भावस्था, शैशव, लडखडाकर चलने की अवस्था, विद्यालय-पूर्व की अवधि तथा घर से निकल कर स्कूल व व्यापक संसार में कदम रखने की अवधि के अनुरुप कार्यक्रमों का निर्धारण करने की आवश्यकता उजागर की गई है। हर अवधि की अपनी-अपनी जरूरते हैं तथा अपना-अपना विशिष्ट महत्त्व भी, इन विविध विकास की स्थितियों के कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिए पूरक तरीको को प्रयोग में लाना वाछित है जैसे केन्द्र आधारित कार्यक्रम, परिवार केन्द्रित कार्यक्रम, सस्थागत कार्यक्रम, सामुदायिक परिवेश पर आधारित कार्यक्रम एवं सास्कृतिक परिवेश पर केन्द्रित कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों को चलाने में जिन दिशा निदेशक सिद्धांतों को उपयोग में लाने की आवश्यकता है वे हैं—जोखिम ग्रस्त बालकों के लिए कार्यक्रम, वित्तीय रूप से लागत क्षम्य कार्यक्रम, सामुदायिक भागीदारी एव तौर-तरीकों पर आधारित कार्यक्रम। इन उपरोक्त तत्वों एवं आयामों के समावेश की दिशा में व बाल विकास कार्यक्रम की समग्रता की दिशा में काफी कुछ किया जाना शेष है।

पुस्तक के अनुसार विकासशील देशों मे बाल-विकास के मौजूदा कार्यक्रमों में इन उपरोक्त तत्वों, आयामों एवं विविधता का कितना समावेश है उसे परखने की आवश्यकता

है ताकि समग्र रणनीति के तहत बाल विकास के कार्यक्रमो को अधिक प्रभावी व गुणवत्ता पूर्ण बनाया जा सके। विकासशील देशो में चलाए जा रहे कार्यक्रमो में जो विविधता है उसे दर्शाते हुए शायद इस बात पर बल दिया गया है कि समग्र रणनीति के आवश्यक तत्वों में कुछ अंश, एक तरह के कार्यक्रम में सर्वोपरि परिलक्षित होते है तो वहीं कुछ अंश अन्य कार्यक्रमो में, विकासशील देशों में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हैं–भारत का "समेकित बाल विकास कार्यक्रम", पेरु का "प्रारम्भिक शिक्षा का औपचारिक कार्यक्रम", कोलम्बिया का "खुशहाली घर" नेपाल का प्रोजेक्ट "इंटरी पोइंट" और ब्राजील का "स्कूल पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रम"। साथ ही माता-पिता की शिक्षा एवं सहारा देने वाले कार्यक्रमो में इंडोनेशिया के दो उपक्रम "बीकेजी" एवं "पंडाई" परियोजना, चीन की "माता-पिता शालाएं", जमैका की "चाइल्ड-टु-चाइल्ड", तथा चिली की "माता-पिता व बालक शिक्षा कार्यक्रम" भी प्रमुख हैं।

अंत में 'क्या किया जाए' अध्याय के अंतर्गत नए रवैये अपनाने की आवश्यकता को दर्शाते हुए लेखक कुछ प्राथमिकताएं तय करते हैं :

- बाल विकास के कार्यक्रम जितनी जल्दी शुरू हों उतना ही उत्तम है।
- माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों को शिक्षा एवं सहारा देने के कार्यक्रम चलाए जाएं।
- कामकाजी महिलाओं एवं केवल माता या पिता की परिस्थितियों के लिए बच्चों की देखभाल के विशेष कार्यक्रम चलाए जाएं।

पुस्तक की विषयवस्तु सारगम्य, समीचीन होने के साथ-साथ राष्ट्रीय संस्थाओं, स्वयंसेवी संगठनों में बाल विकास में रुचि रखने वालों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है। भारत जैसे देश के लिए यह विचार प्रेरणादायक लगता है कि स्कूल-पूर्व शिक्षा एवं कक्षा 2 तक की शिक्षा एक साथ कर दी जाए। इससे प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की दिशा में आशातीत सफलता मिल सकती है। लेखक का यह आह्वान भी प्रेरणा-स्रोत प्रतीत होता है कि 2000 ई. में प्राइमरी स्कूल में जाने वाले बच्चे पैदा हो चुके हैं तथा उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार किया जा रहा है। अतः इस दिशा में आज ही सकारात्मक कदम उठाए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि यही बच्चे 21वीं सदी के स्वप्नद्रष्टा एव निर्माता होंगे। □□

लेखकों से निवेदन

लेखको से निवेदन है कि रचनाए डबल स्पेस मे टाईप की हुई हो तथा रचनाओ की दो हस्ताक्षरित प्रतिया भेजे। साथ ही यह अवश्य सूचित करे कि प्रेषित रचना अप्रकाशित/अप्रसारित है।

पुस्तक-समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतिया भेजना आवश्यक है। पत्रिका में प्रकाशित पांडुलिपि का कापीराइट परिषद् के अधीन रहेगा और परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना कोई भी अश पुन प्रकाशित नहीं किया जा सकेगा।

रचनाएं कृपया इस पते पर भेजे—अकादमिक संपादक, **भारतीय आधुनिक शिक्षा**, शैक्षिक अनुसधान और नीतिगत सदर्श विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली – 110016

Platinum	...	Pt	[illegible]
Potassium (Kalium)	...	K	39
Radium	..	Ra.	225
Silicon	..	Si.	28
Silver (Argentum)	...	Ag.	108
Sodium (Natrium)	..	Na.	23
Sulphur	...	S.	32
Tin (Stannum)	.	Su.	119
Zinc	...	Zn.	65

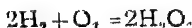
Formula By writing chemical symbols alongside each other we can easily express what elements any given compound contains In fact a formula is a group of symbols which stands for one molecule of a substance and expresses its atomic composition. The number of atoms of an element present in a molecule of a substance is expressed by a small figure written just after the symbol. Thus H_2O stands for a molecule of water which is made up of two atoms of hydrogen, and one atom of oxygen. Similarly one molecule of nitric acid HNO_2 contains one atom of hydrogen. The chemical formulae of the chief compounds used in this book are given in the following table :—

Acids.	Hydrochloric acid	HCl
	Sulphuric acid	H_2SO_4
	Nitric acid	HNO_3
Alkalies.	Caustic soda	$NaOH$
	Ammonium Hydroxide	NH_4OH
	Caustic Potash	KOH
	Calcium Hydroxide	$Ca(OH)_2$

Gases.	Ammonia	NH_3
	Sulphur dioxide	SO_2
	Sulphur trioxide	SO_3
	Carbon dioxide	CO_2
	Carbon Monoxide	CO
Oxides.	Manganese dioxide	$Mn O_2$
	Phosphorous pentoxide	P_2O_5
	Calcium Oxide	$Ca O_2$
	Iron Oxide	$Fe O_2$
	Copper Oxide	$Cu O$
	Zinc Oxide	$Zn O$
	Mercury Oxide	$Hg O$
Chlorides.	Sodium Chloride	$Na Cl$
	Ammonium Chloride	$NH_4 Cl$
	Potassium Chloride	$K Cl$
	Silver Chloride	$Ag Cl$
	Barium Chloride	$Ba Cl$
	Mercurous Chloride	$Hg Cl$
	Mercuric Chloride	$Hg Cl_2$
Nitrates.	Silver Nitrate	$Ag NO_3$
	Cupric Nitrate	$Cu (NO_3)_2$
	Sodium Nitrate	$Na NO_3$
	Barium Nitrate	$Ba (NO_3)_2$
	Potassium Nitrate	$K NO_3$
Sulphates.	Sodium Sulphate	Na_2SO_4
	Barium Sulphate	$Ba SO_4$
	Magnesium Sulphate	$Mg SO_4$
	Copper Sulphate	$Cu SO_4$
	Calcium Sulphate	$Ca SO_4$
	Zinc Sulphate	$Zn SO_4$

Carbonates	Calcium Carbonate (Chalk)	$Ca\ CO_3$
	Magnesium Carbonate	$Mg\ CO_3$
	Sodium Carbonate	$Na_2\ CO_3$
	Sodium Bicarbonate	$Na_2\ HCO_3$
	Ammonium Carbonate	$(NH_3)_2\ CO_3$

Chemical Equations. Chemical changes are represented by what are known as chemical equations. The substances taking part in a chemical reaction are placed on the left hand side and the products of the reaction are placed on the right hand side, the various substances on each side being connected by the sign +. Thus water is formed by the combination of oxygen and hydrogen, and this is represented by the equation.



$$2H_2 + O_2 = 2H_2O.$$

The above equation denotes that two molecules of hydrogen combine with one molecule of oxygen to form two molecules of water.

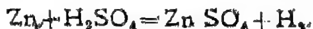
The following chemical reaction further illustrates the use of chemical equations.

Potassium chlorate when heated produces potassium chloride and oxygen.



$$2K\ Clo_3 = 2K\ Cl + 3O_2.$$

The preparation of hydrogen is represented by the equation,



$$Zn + H_2SO_4 = Zn\ SO_4 + H_2.$$

Again the action of sodium on water is represented by $2Na + 2H_2O = 2Na\ OH + H_2$.



The neutralization of sodium hydroxide (caustic soda) by hydrochloric acid is expressed as

$$Na\ OH + H\ Cl. = Na\ Cl + H_2O$$

A chemical equation must be correct both chemically and arithmetically.

In other words a chemical equation must express the nature and the composition of the substances taking part in a chemical reaction and also denote their amounts Thus the equation $Zn + 2\ H\ Cl. = Zn\ Cl_2 + H_2$ tells us two things.

(*i*) The nature of each substance taking part in the ractions ; and

(*ii*) 65 parts by weight of zinc react with 72 parts by weight of hydrochloric acid to produce 135 parts by weight of zinc chloride and two parts by weight of hydrogen.

There are a few points to be remembered about the use of figures in connection with chemical symbols. The formula Co_2 denotes 44 parts of carbon dioxide. Suppose we wish to write a formula denoting 132 parts of carbon dioxide. This may be done in two ways (*i*) C_3O_6 or (*ii*) 3 CO_2, the number prefixed to the formula applying to all the symbols in it. The second method is always used because it keeps the formula as simple as possible. Again the formula $H_2\ O$ stands for 18 parts of water ; 2 H_2O stands for 36 parts, $3H_2O$ for 54 parts, and so on It must be remembered that fractional numbers are never used in chemical formulae and equations.

APPENDIX B

SCIENTIFIC HOBBIES.

Of late a good deal of stress has been laid on the subject of vocational training in schools and colleges. Several subjects have been suggested with their syllabus by various authors. At present it is not possible for any one school to take up more than a few hobbies. Scientific hobbies on a small scale can be successfully carried on in a school laboratory, as they require simple apparatus, little capital and recurring expenses. These hobbies beside effecting some saving in our daily expenses, are sure to inculcate in us an interest and enthusiasm for small scale industries. A brief outline of some of the simple, cheap, useful and interesting hobbies is given below.

1.—INK MAKING.

1. *Blue Black Fountain pen ink* :—

Galls (Maju) ..	.. ½ seer.
Iron Sulphate (Hira kasis)	.. ⅛ seer.
Gum Arabic (Gond Kekar)	.. ⅛ seer.
Soluble Blue T. ..	.. ¼ lb.
Water ..	. 12½ seers.
Carbolic acid ..	.. ½ oz.

Process.—Soak the crushed galls in 2 seers of water and let them ferment for a fortnight. Decant

[redacted] process twice with the [redacted] Gall extract in a big jar. Dissolve powdered Gum Arabic and Iron sulphate separately in a seer of water, filter and then add the solutions to the gall extract.

Now add soluble Blue T, stir well and make up the solution to 12½ seers. Leave it for a day or two filter and then add to it carbolic acid.

Blue Black Ink Powder or Tablets—

Logwood extract	..	. 100 parts
Potassium Chromate (*Lal Kahi*)		.. 1 part.
Gum	..	... 20 parts.
Indigo Carmine (*Nil*)	..	... 20 parts

Powder and Mix—For tablets press under a tablet making machine.

2. *Red Ink.*—

Gall extract (weak)	.	.. 4 seers
R. R. R. Red Colour		.. 2 chhatanks.
Gum Arabic	.	... 2 chhatanks.

Process.—Dissolve the Dye and Gum Arabic in weak solution of gall extract filter and bottle.

3. *Green Fountain Pen Ink.*—

Eosin	...	... 2 oz.
Gum	...	... 2 oz.
Spirit	...	... 20 oz.
Distilled water	...	.. 100 oz.

Dissolve the colour in the spirit with the aid of gentle heat Then in a separate vessel dissolve the gum in water and filter. Finally heat the gum solution and as soon as it begins to boil pour in the colour solution in a thin stream with continuous stirring.

Reference Book.—Manufacture of Ink—By Industry Book Depot, Calcutta.

2 Soap making

(a) *Washing Soap*—This can be prepared by the following cold process—

Mohua Oil (Mowa ka tel)	1 part
Cocoanut oil (Naryal ka tel)	1 part.
Tilli ka Tel	1 part.
Wheat Starch—Maida	1 part.
Soda lye (35°)	2 parts.
Water	1¼ part.
Salt	¼ part.

Procedure.—Melt and mix well the oils and wheat starch. Prepare the caustic soda lye by dissolving caustic soda in water and allow it to cool. Add salt to water and mix it with soda lye. Add soda lye salt mixture to the oil mixture. Stir the mass well with a wooden rod, till it forms a uniform pastry mass. Do not stir too long or the mixture will separate again. Now pour off the pasty soap in wooden moulds and allow it to cool overnight, then remove and cut it into cakes of desired sizes.

N.B.—One seer caustic soda of 77° in 2½ seers of water makes soda lye of 35°.

Half process.—

Cocoa-nut oil	16 seers.
Mohua oil	12 seers
Castor oil	$2\frac{1}{2}$ seers
Caustic soda lye $37\frac{1}{2}^{\circ}$	15 seers
Water	5 seers

Heat the oils in an iron vessel of sufficient capacity to a point when it produces smart cracking sounds on putting a few drops of water into it, and a little sprinkling of water produces foam. Now mix the lye slowly and stir it thoroughly. Put out the fire. If the oils were properly heated the mixture will boil in a few minutes. When it calms down add to it 5 seers of water and stir it thoroughly. It will remove all defects from the soap. To impart a pale yellowish tint like that of sunlight soap add a bit of brown colour into the oil before the addition of the lye. Now frame, cool and then cut into bars

(*b*) *Toilet Soap.*—

Mohua oil	$2\frac{3}{4}$ seers.
Cocoa-nut oil	$2\frac{3}{4}$ seers.
Caustic soda lye 38°	3 seers
(One seer of caustic soda in $2\frac{1}{2}$ seers of water).	
Water	3 chhataks

Heat the oils to a point when the mixture produces smart crackling sound on putting a few drops of water into it. Now mix the lye slowly and stir it thoroughly. Then put out the fire. If the oil is properly heated it will boil in a few minutes. When it calms down add to it 6 chhataks of water and stir it thoroughly. Now

add the desired colour, perfume and then pour it into frames to cool.

Precautions.—Caustic soda should not be touched with hand as it is corrosive. Its solution should be prepared in iron vessels.

For full information regarding various kinds of soaps the reader is advised to read the following books.—

1 Soap making by the cold process—published by the Government Printing Works, Madras.

2 Manufacture of Soap—published by the Industry Book Depot, Calcutta.

3 Soap making (saban sazi) in Vernacular—Published by Bharat Soap Company, Lahore.

3:—Washing & Stain Removing:

1. *Washing*—Our fine fabric clothes are often spoiled by washer-men due to their ignorance or carelesseness The charges of dry cleaning are so high that everybody cannot afford to get his clothes dry-cleaned, however, these clothes can be cleaned at home without much labour and cost.

Silk garments—Take some Lux or sunlight soap and dissolve it in about a seer of hot water in an enamelled 'chilimchi'. Add sufficient water to soak the cloth in it and rub it well. Repeat this process again and then wash the cloth in cold water, squeeze and dry.

Silken clothes can also be washed like above in a solution containing a teaspoonful of citric acid and gum solution. To give lustre the clothes are ironed in semi dry condition.

Woollen clothes.—1. Shake some powdered soap nuts (retha) in sufficient hot water. Wet the woollen cloth with ordinary water and then wash it well in soap nut solution. If some spots are left then repeat the process with fresh solution. Now wash it with cold water, squeeze, dry and iron

2. Prepare soap jelly, by dissolving 1 part of sunlight or any neutral soap in 3 parts of water. Take a cupfull of this jelly and add to it ¼ oz. of liquor ammonia. Dissolve this in sufficient warm water and then wash in it the wet woollen cloth. If some spots are left then add more of soap jelly and work it well. Now wash it with cold water and in a weak solution of acetic acid or citric acid. Wash again with ordinary water. Squeeze, dry in shade and iron.

The following recipes of Dry cleaning fluids will be found useful in washing silk and woollen clothes.

Carbon tetrachloride ..	.. 3 gals.
Deodorized cleaner's naphtha	.. 1¾ ,,
Benzol ..	.. 24 oz.
Chloroform ..	.. 2 ,,

Or

Diglycol oleate ..	.. 1 oz.
Water ..	.. 1 oz.

This solution is then dissolved in a solution of

Butyl cellosolve ..	.. 1 oz.
Isopropyl alcohol ..	.. 10 oz.
Carbon tetrachloride ..	.. 14 oz.

[redacted]

Soap	3 parts.
Ammonia	2 ,,
Glycerine	1 ,,
Methylated spirit	2 ,,
Water	50 ,,

Dissolve weighed quantity of soap in boiling water, cool and then add the ingredients. Keep the mixture in stoppered bottles and use for washing after removing the stains from the garments.

Stain Removing.—Stains can be readily removed when fresh. On drying it becomes sometimes impossible to remove them without injury to the fabrics.

While removing a stain make the stained spot of the cloth in a hoop and place immediately under it a pad of blotting paper or muslin. Mark the boundary line of the stain with the reagent and then rub the stain with a little quantity of the reagent. Repeat the process on both sides of the garment till the stain disappears, and then dry the cloth. Avoid the use of water unless absolutely necessary

Reagents for Common Stains.

1. *Oil.*—From cotton—Wash with 10% solution of soda ash or soap solution.

From silk.—Wash with cold solution of ammonia.

From wool. Wash with hot solution of ammonia or Benzene.

2. *Grease*.—Rub the spot well with carbon tetrachloride or turpentine oil. Use the hot liquid if the stain persists. Then wash with soap and ammonia solution. To remove vaseline or machinery grease treat the stain with petrol and proceed as above

3. *Ink* (*Blue Black*).—Cotton.—Treat the spot with 4% oxalic acid solution, squeeze and then treat with 5% of Sodium hydrosulphite. If stain persists use hot solutions

Silk—First boil with 4% oxalic acid solution and then treat with 5% sodium sulpho-oxalate solution Repeat the process till stain is removed.

4 *Turmeric*.—Cotton.—Wash with hot solution of soda ash or soap.

Silk.—Wash with dilute ammonia and then with water. Now treat it with 1% potassium permanganate solution squeeze and then put it in 8% sodium sulphite solution. Wash with water and allow to dry.

5. *Blood*. Wash the stain with 5% oxalic acid solution, then with 1% potassium permanganate solution and finally with 8% sodium bisulphate solution. Blood stains on silk garments are difficult to remove.

6. *Betel* (*Pan*) *Stains*.—Wash with mustard (kanjee) water.

7. *Paint or varnish*.—Wash with turpentine oil or spirit, or week solution of sodium bisulphite.

8. *Boot Polish Stain.*—[illegible] of Turpentine oil.

9. *Iron Rust*—Rub the stain with 5% hot solution of oxalic acid, then treat it with 1% solution of bleaching powder and acetic acid. Wash with water and dry. In case of silk or wool garments wash the stain in oxalic acid and 5% sodium bisulphite solutions.

10. *Fruit Juices.*—Wash with water and then proceed as in 9 above.

11. *Iodine.*—Remove with spirit or 5% Sodium thiosulphate (Hypo) solution.

12. *Silver nitrate*—Wash with 5% Potassium cyanide solution, then with soap water.

13. *Tea, Coffee or Milk.*—Work the stain in 5% borax solution

4 Scented & Medicated Hair Oils.

Note—(*Names are in vernacular.*)

'Mendhi' Leaves	2	chhataks.
'Kali Chaie'	1	,,
Tej Pat	1	,,
Hau Ber	1	,,
Panri	½	,,
Sandal Powder	2	,,
Brahmi Buti	1	Tola.
Triphla (Harar, Behera & Anwala	6	chhataks.
Oil (Tilli oil or Sesame oil)	2	seers.
Water	1	seer.

[illegible] from the above ingredients [illegible] over night. Now add the [illegible] devoid of water. Filter oil and add [illegible] green for anwala hair oil or ratan [illegible] oil. Then add to it chyper, anwala, rose or moulsari scents as required.

5. Cosmetics.

Vanishing Cream.—

Stearic acid	...	...	8 oz.
Water	...	...	56 oz.
Borax (Sohaga)	...	...	1 oz.
Potassium hydroxide (Caustic potash)			½ oz.
Glycerine	...	...	2 oz.

Melt stearic acid in 40 oz. of warm water. Dissolve borax and coustic potash in 16 oz. of water, warm and then mix in it stearic acid water. Stir the mixture well and then add to it glycerine and the required scent.

Cold Cream.—

White Wax ...	...	...	½ oz.
Spermaceti ...	...	...	1 oz.
Oil of almonds (Badamon ka tel)		...	8 oz.
Rose water ...	...	...	4 oz.

Melt the wax, spermaceti and oil of almonds in an earthen vessel and when nearly cold stir in gradually 4oz. of rose water.

Brilliantine.—

White vaseline		[redacted]
Olive oil (Tel zeton)	...	2 dr.
Yellow vasline	...	1 dr.
Hard paraffine	...	1 dr.
Scent rose	...	6 masha

Melt vaseline, paraffin and oil, add scent and bottle.

Pomade.—

Spermaceti	...	2 oz.
Castor oil	...	4 oz.
Alcohol	...	4 oz.
Oil of bergamotte	...	1 dr.
Oil of neroli	...	30 mins.
Oil of cloves	...	10 mins.

Melt the spermaceti, add the castor oil and then the alcohol in which the essential oils have been previously dissolved. Fill in pots and allow to cool without stirring.

Face Powder.—

Zinc white (jist)	...	100 grams.
Talc (soap stone)	...	200 ,,
Violet root powder	...	200 ,,
Rice Starch ...	...	500 ,,
Extract of jasmine	...	15 ,,
Bergamotte oil	...	0·5 ,,
Rose oil ...	...	0·6 ,,
Ylang-ylang ..	...	1·0 ,,
Musk tincture	...	5 ,,

Q. 5. (a) How may metals be distinguished from non-metals ?

(b) What is an alloy and in what respects does it differ from the metals of which it is formed ? Name three alloys and the metals of which each is composed.

Q. 6. (a) Describe an ordinary voltaic cell. (b) Explain clearly why such a cell gives a weaker current than a Bunsen's cell ; (c) Is it absolutely necessary to use a zinc plate in all kinds of cells ?

Write an essay on the uses of an electric current

Q. 7 (a) State the important properties of a magnet.

(b) Can a copper wire behave like a magnet ? If so, under what condition ?

1938

Q. 1 What do you understand by the terms "Chemical combination", "Chemical decomposition" and "Chemical affinity ?" Give examples to illustrate your answer

Or

(a) Distinguish between organic and inorganic compounds.

(b) What is allotropy ? Illustrate your answer with reference to the allotropic modifications of carbon.

Q. 2. Describe with full practical details, the preparation of hydrochloric acid in the laboratory. What is the action of this acid on :—(a) Common salt, (b) Manganese dioxide, (c) Sodium carbonate and (d) Copper ?

Three beakers contain solutions of :—(a) copper sulphate, (b) sodium chloride and (c) potassium nitrate respectively. What experiments would you perform to determine the contents of each beaker ?

Q. 3. Describe what happens when roll sulphur is heated in a test tube. What different varieties of sulphur exist, how are they prepared and what are their properties ?

Or

How may sulphur dioxide be prepared ? Describe its important properties and uses

Q. 4 Describe what happens and name the product or products formed when :—

(*a*) Excess of carbon dioxide is passed through lime water

(*b*) Hydrochloric acid is added to a solution of caustic soda.

(*c*) Iron is dissolved in dilute sulphuric acid.

(*d*) Concentrated sulphuric acid acts on phosphorus pentoxide

Or

Give the composition, properties and uses of the following :—

(*a*) Gypsum : (*b*) Limestone, (*c*) Glauber's salt, (*d*) Nitre.

Q. 5 Enumerate the important properties and uses of any *three* of the following :—mercury ; zinc ; lead ; tin ; and iron.

Or

Describe the preparation, on a large scale, properties and uses of caustic soda.

Q. 6. What is Mariner's Compass? Explain briefly the construction and use of this instrument.

Q. 7. (*a*) Explain what is meant by :—(*i*) electric induction, and (*ii*) electric attraction and repulsion

(*b*) What are conductors and insulators?

To which class do the following belong :— Human body; glass rod: and metal; and wood.

1939.

1. Describe the following processes and give examples of their uses :—

(*a*) crystallization, (*b*) sublimation, and (*c*) distillation.

Or,

Draw a diagram of a candle flame. Describe its different parts. Show the hottest zone.

What is the effect of blowing air into the flame through a blow-pipe?

II. (*a*) Describe, with full practical details, the preparation of nitric acid in the laboratory.

(*b*) What is the chemical action of sulphuric acid on :—(*i*) zinc, (*ii*) copper, (*iii*) sodium chloride and (*iv*) sugar?

Or,

There are four beakers containing solutions of :— (*a*) caustic soda; (*b*) calcium hydroxide; (*c*) hydro-

chloric acid ; and (*d*) nitric acid. What experiments would you perform to determine the contents of each beaker ?

III. Name the usual impurities in the following : (*a*) rain water (*b*) mineral water ; (*c*) hard water ; and (*d*) sea water.

Describe the electrolysis of water.

Or,

How may chlorine be prepared ? Give its important properties and uses.

IV. Describe the chemical action of —(*a*) sodium on water ; (*b*) nitric acid on copper ; (*c*) lime on a solution of sodium carbonate ; (*d*) hydrochloric acid on marble

Or,

Give the composition, uses and properties of the following –

(*a*) potassium chlorate, (*b*) slaked lime ; (*c*) ammonia and (*d*) sulphur dioxide.

V. What do you understand by an element, a mixture, and a chemical compound ? How would you classify the following :—diamond ; ice cream ; chalk ; sulphur ; gunpowder ; and brass ? Give reasons for your answer.

Or,

Write a short essay on the different forms of carbon and their uses.

VI. Describe the various methods of making magnets.

VII. (*a*) Describe the action of electrophorus.
(*b*) How would you set up a Daniell cell ?

University Syllabus on Chemistry—1941-42

Physical and chemical changes. Elements, compounds, and mixtures, metals and non-metals. Chemical combination and decomposition.

Solution, decantation, filtration, evaporation, distillation, Saturated Solution, Crystals, Crystallization, Sublimation, Composition of air, Oxygen. Nitrogen, Impurities of air, Deliquescent bodies, Air a mixture.

Chemical affinity, preparation of Oxygen, its properties and uses. Oxidation, reduction, combustion, Parts of a candle flame.

Hydrogen, its preparation and properties.

Water, its properties and composition by electrolysis. Rain, spring, mineral, and sea-waters ; hard and soft waters. Softening of hard waters

Organic and inorganic compounds. Allotropic forms of Carbon. Coal, breathing. Burning of a candle. Action of plants on CO_2.

CO_2, its preparation, properties and uses. Limestone. Lime and slaked lime. Forms of Calcium Carbonate and Calcium Sulphate.

HCl, its preparation and properties, Chlorides. Sulphur. Its varieties, effects of heat upon it in a closed vessel and air, SO_2, and its properties. Sulphuric Acid, its properties and action on metals. Sulphates, Phosphorus—red and yellow, matches.

Nitric acid, its preparation, properties and uses Nitrates, Distinction between HCl, H_2SO_4 and HNO_3. Ammonia and its Properties.

Ores and Metals. Alloys and Amalgams. The more important salts of Sodium and Potassium.

Properties of the following metals: Copper, Mercury, Silver, Zinc, Lead, Tin, Iron and Aluminium.

Practical Chemistry.—Acquaintance with simple chemical manipulation, as solution, filtration, decantation, crystallization, distillation.

To fit up an apparatus to demonstrate the combination of oxygen of the atmosphere with iron.

Cork boring; cutting, bending and drawing out of glass tubing and glass rod.

The preparation and properties of oxygen and hydrogen

The distinction between acids and alkalies.

To neutralize an acid with an alkali *vice versa.*

A study of the zones in a candle flame.

The products of combustion as illustrated by the burning of a candle.

To distinguish between hard and soft waters and to soften hard water.

The action of heat on coal to show the production of coal gas.

The preparation and properties of carbon dioxide, hydrochloric acid and nitric acid.

Test for hydrochloric acid, sulphuric acid and nitric acid.

The action of heat on sulphur.

To prepare monoclinic and plastic forms of sulphur.

1910

I. Describe the preparation, the properties and the uses of oxygen.

Or

Write what you know of the oxygen cycle in nature, and explain oxidation and reduction ?

II. How is carbon dioxide prepared ? What are its properties and uses ?

Or

What is the difference between :—

(*a*) Limestone. (*b*) Chalk, (*c*) Lime, (*d*) Slaked lime, (*e*) Gypsum, (*f*) Plaster of Paris, (*g*) Precipitated chalk, and (*h*) Mortar ?

III. Describe the preparation, the properties, and the uses of HCl

Or

What is the action of HCl on :—

(*a*) Zinc carbonate, (*b*) potassium permanganate, (*c*) sodium sulphite, (*d*) iron filings ?

IV. Describe at least four chemical properties of :—(*a*) Zinc, (*b*) Aluminium.

Or

What is the difference between :—

(*a*) A physical and a chemical change, (*b*) metals and non-metals, (*c*) amorphous and crystalline, (*d*) red and yellow phosphorus ?

V. Write a short essay on coal, describing its uses and the products obtained from it.

Or

(*a*) How is lead obtained from its ore ?

(*b*) Give the uses of lead

VI. Write a short essay on sulphur and its varieties, and describe the effect of heat on it in air, and in a closed vessel

VII Describe the chemical action of :—

(*a*) Lime on ammonium chloride

(*b*) Potassium on water

(*c*) Manganese dioxide on HCl.

(*d*) Copper filings on concentrated sulphuric acid

(*e*) Sodium carbonate solution on zinc chloride solution.

(*f*) HCl on sodium sulphite.

(*g*) Caustic Soda on zinc

(*h*) Conc. sulphuric acid on sodium chloride